वृन्दावनलाल वर्मा
व्यक्तित्व और कृतित्व

लेखक

डाक्टर पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

एम० ए०, पी-एच० डी०

हिन्दी विभाग, आगरा कालिज, आगरा

बंसल एण्ड कम्पनी

२४ दरियागंज, दिल्ली ६

प्रथम संस्करण १९५८—२२००
द्वितीय संस्करण १९६०—५६००

सैन्ट्रल लायब्रेरी कमेटी, पञ्जाब चण्डीगढ़
द्वारा स्वीकृत
Circular Letter No. P. R. Lib. 61366/—dated 22-11-58

डायरेक्टर पब्लिक इन्स्ट्रक्शन्स पञ्जाब, चण्डीगढ़
द्वारा स्वीकृत
Circular Letter No. 3/12—59 B. 7285 dated 27-2-59

मूल्य : पाँच रुपये
प्रकाशक : सर्वोदय प्रकाशन मन्दिर
२४, दरियागंज, दिल्ली-६.
मुद्रक : नूतन प्रेस
चाँदनी चौक, दिल्ली

श्रम और साधना की साकार मूर्ति
भाई श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' को

दो शब्द

डॉक्टर पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' से कई वर्ष हुए तब पहली बार मिला था। ऐसे स्वस्थ, स्वच्छ युवक को देखकर मेरा मन प्रसन्न हुआ। उस समय यह पी-एच० डा० नहीं हुए थे। जब मैंने इनका इतिहास कुछ मित्रों से सुना तो मैं आश्चर्यचकित हो गया। किस परिश्रम से इस युवक ने जीवन की घोर कठिनाइयों का सामना करके अपना इष्ट मार्ग बनाया है। बात मन में रख ली।

फिर यह मुझे जब-तब मिलते रहे। एक दिन इनकी चिट्ठी आई कि मुझ पर कुछ लिखने के हेतु भेंट (इंटरव्यू) के लिये आयँगे। मैंने तुरन्त स्वीकार किया, क्योंकि मैं स्वयं इन पर कुछ लिखने की सोचता रहा हूँ।

यह आये। बिना फोटो-कैमरे के आये, यानी बिना ऐसे कैमरे के, जो आँख या हाथ की पकड़ में आ जाता है। इनका कैमरा इनकी कलम की नोंक में है। इन्होंने भिन्न-भिन्न रंगों से मेरे फोटो लिये हैं। कैमरे वाला ऐसे कोण से भी चित्र खींच सकता है कि कुरूप सुरूप दिखने लगे, और सुरूप कुरूप, क्योंकि संसार में न तो कोई उत्कृष्ट है, और न कोई अत्यन्त निकृष्ट। अपना चित्र सबको प्यारा लगता है। मैंने एक बिल्ली को आइने के सामने बैठे नाना प्रकार की मुद्राएँ व्यक्त करते देखा है। वह अपना प्रतिबिम्ब शीशे में देखकर प्रसन्न भी हो रही थी और खीझ भी जाती थी, क्योंकि प्रतिबिम्ब उस बिल्ली से बोल नहीं रहा था। मुझे भी अपना चित्र, यदि वह आकर्षक दृष्टि से खींचा गया हो, तो अच्छा लगता है। डॉ० कमलेश ने मेरे और मेरी कृतियों के जो चित्र खींचे हैं, वे मुझे बहुत अच्छे लगे। कुछ और लोगों ने भी

खींचे हैं, परन्तु इतने निकट से किसी ने नहीं खींचे। फिल्मों की भाषा में जिन्हें 'क्लोज़-अप' कहते हैं, ये तो वे हैं।

डॉ० कमलेश को सौदा शायद कुछ महँगा पड़ेगा। वह जानते हैं कि मैं कथक्कड़ हूँ। उनके जीवन की अनेक घटनाएँ इतनी अनोखी और आकर्षक हैं कि मैं अपने एक उपन्यास में उन्हें किसी-न-किसी रूप में लाये बिना न रहूँगा। फिर देखूँगा कि उनकी कलम का कैमरा क्या करता है ?

—वृन्दावनलाल वर्मा

मेरी बात

सन् १९५०-५१ की बात है। मैंने 'हिन्दी-गद्य-काव्य' विषय पर अनुसन्धान-कार्य आरम्भ किया था। विषय अछूता था और इधर-उधर पत्र-पत्रिकाओं में साधारण लेखों के अतिरिक्त कुछ मिलता नहीं था। हार कर मैंने अपने विषय के लेखकों के ग्रन्थों और गद्य-काव्य-सम्बन्धी उनकी धारणाओं को आधार बनाकर चलने का निश्चय किया। लगभग सभी प्रमुख गद्य-काव्य-लेखकों से मिला या पत्र-व्यवहार किया। श्रद्धेय वर्माजी ने भी 'हृदय की की हिलोर' नाम से इस विषय पर एक पुस्तक लिखी थी। अतः उनको भी पत्र लिखा। उस पत्र का दूसरे ही दिन उत्तर मिला। उसी समय इण्टरव्यू पर मेरी दो पुस्तकें 'मैं इनसे मिला' नाम से निकलीं। सम्मत्यर्थ आपके पास भी वे पुस्तकें गई थीं। उन पर तीन-चार दिन के बाद ही आपकी उत्साह-प्रद सम्मति मिली। तब से बराबर मैं उनका इण्टरव्यू लेने की सोचता रहा, लेकिन घर-बाहर के कामों ने यह सुयोग उपस्थित न होने दिया। वैसे मैं तब से अब तक अनेक बार उनसे मिला और उनकी आत्मीयता प्राप्त की। ज्यों-ज्यों उनसे परिचय बढ़ता गया, त्यों-त्यों वे मुझे अधिकाधिक महान् लगने लगे। परिचय के आरम्भ से अब तक प्रकाशित रचनाओं को भी पढ़ने का अवसर मिलता रहा। 'गढ़ कुण्डार' और 'विराटा की पद्मिनी' तो बहुत पहले से ही मेरी रुचि की रचनाएँ रही थीं।

सौभाग्य से इस वर्ष उनके यहाँ जाकर दो दिन ठहरा। उनके साहित्य को पढ़कर गया था, इसलिए इण्टरव्यू लेने में दो दिन दस-दस घंटे अनवरत उनके अनुभव सुनने को मिले। उनकी अप्रकाशित 'अपनी कहानी' के पन्ने भी उलट गया। इस भेंट में वर्माजी ने अपने जीवन की ऐसी-ऐसी घटनाएँ मुझे बताई कि यदि वे लिख दी जायें तो पाठकों को उतना ही कौतूहल और रोमांच हो,

जितना प्रेम और युद्ध में संलग्न उनके पात्रों के त्याग और बलिदान को देखकर होता है। वे घटनाएँ उनकी साहित्यिक कृतियों में विद्यमान हैं और उनको इस रूप में देखकर उनकी कला का स्वरूप समझने में सुविधा होती है। उनसे मिलने के बाद मैंने यह सोचा कि उनके जीवन और साहित्य पर एक ऐसी पुस्तक लिखी जाय, जिसमें उनकी साहित्य-साधना का पूरा स्वरूप स्पष्ट हो सके। उसीका फल प्रस्तुत पुस्तक है।

अब तक वर्माजी पर जो पुस्तकें निकली है, उनमें से एक-दो को मैंने देखा तो उनसे वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप तक का ही पूरा परिचय न मिला। इसलिए मैंने उनका सहारा छोड़कर वर्माजी की अब तक प्रकाशित सभी रचनाओं को पुनः पढ़ा और जो धारणाएँ बनीं उनको इस पुस्तक में रख दिया। इस दृष्टि से यह वर्माजी पर लिखी गई अपने ढंग की पहली ही पुस्तक है। लेकिन इस पुस्तक का कलेवर इतना छोटा है कि वर्माजी के विशाल साहित्य की झाँकी देने में गागर में सागर भरने की प्रणाली को ही अपनाना पड़ा है। पुस्तक के अध्यायों के वर्गीकरण से यह विदित हो जायगा कि वर्माजी ने जो-कुछ लिखा है, उस सबका समावेश इसमें हो गया है। जिन लोगों ने वर्माजी को केवल ऐतिहासिक उपन्यासकार समझा है, उनको इस पुस्तक को पढ़कर पता चल जायगा कि वर्माजी ने सामाजिक उपन्यासों और नाटकों की दिशा में भी पर्याप्त सफलता प्राप्त की है और उनकी ऐतिहासिक उपन्यासेतर रचनाओं की चर्चा न करना अध्ययन-दरिद्रता और दृष्टि-संकीर्णता का सूचक है। इस पुस्तक में उनकी ऐतिहासिक उपन्यासेतर रचनाओं की विशेष चर्चा की गई है।

श्रद्धेय वर्माजी ने इस पुस्तक के लिए आशीर्वाद-स्वरूप दो शब्द लिख देने की जो असीम अनुकम्पा की है, उसमें भी यद्यपि उनका कथाकार ही प्रमुख है तथापि मुझे जिस स्नेह से उन्होंने स्मरण किया है उसे मैं जीवन-भर अकिंचन के धन की भाँति सँभालकर रखूँगा। उनके हाथों बिकने से बड़ा सौभाग्य मेरा दूसरा नहीं हो सकता। रही सौदे में मँहगे पड़ने की बात, सो जब बिकना ही है तो फिर मँहगे मोल ही क्यों न बिका जाय?

पुस्तक लिखने के लिए वर्माजी के प्रकाशित-अप्रकाशित और प्राप्य-अप्राप्य समस्त साहित्य को सुलभ करके मयूर प्रकाशन के संचालक स्नेही भाई श्री सत्यदेव वर्मा ने जो उपकार किया है, उसके लिए धन्यवादार्थ मेरे पास शब्द नहीं हैं। इतनी शीघ्र पुस्तक लिखी गई, इसका समस्त श्रेय मेरे मित्र और सर्वोदय प्रकाशन मन्दिर के कर्णधार श्री रघुवीरशरण बंसल को है, जिन्होंने इतनी सुविधाएँ दीं, जितनी किसी प्रकाशक से मिलनी प्रायः कठिन होती हैं। दस-पन्द्रह दिन में इस पुस्तक को इतने सुन्दर ढंग से छापने के लिए नवीन प्रेस के व्यवस्थापक श्री गोपीनाथ सेठ का आभार न मानूँ तो प्रेत-बाधा का भय है; अतः उन्हें भी हार्दिक धन्यवाद !

अन्त में इतना ही कहना चाहता हूँ कि यदि इस पुस्तक से वर्माजी के व्यक्तित्व और कृतित्व का अनुमान-भर हो सके, तो मेरा श्रम सार्थक है। विद्वानों की सुझावात्मक और सहानुभूतिपूर्ण आलोचना का अधिकार तो मेरी अपनी वस्तु है ही। इससे अधिक और क्या कहूँ ?

आगरा कालिज, आगरा

३१ मई १९५८

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

क्रम



श्री वृन्दावन लाल वर्मा

१. जीवन और व्यक्तित्व

श्री वृन्दावनलाल वर्मा का जन्म मऊरानीपुर (झाँसी) में ६ जनवरी, सन् १८८९ को एक सामान्य कायस्थ-कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री अयोध्याप्रसाद और माता का नाम श्रीमती सबरानी था। पिता झाँसी के तहसीलदार के दफ़्तर में रजिस्ट्रार कानूनगो थे। माता वैष्णव थीं, और वे पुत्र को पिता से कहीं अधिक प्यार करती थीं। उन्हीं की वात्सल्य और ममतामयी गोद में वर्माजी का जीवन बीता। वर्माजी को अपनी परदादी का भी अपार प्यार मिला था। उनकी परदादी उन्हें झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के जो किस्से सुनाया करती थीं, उनमें से अनेक ऐसे भी होते थे जो शिशु के मन में कौतूहल जगा जाते थे। अधिकांश किस्से सत्य होते थे। उनको प्यार करने वाले तीसरे व्यक्ति उनके चाचा थे, जो ललितपुर में ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट के अहलमद थे। उन्हें साहित्य का बेहद शौक था। माता की वैष्णव-भावना यदि रामायण की कथा, महाभारत के पारायण, भागवत के अनुशीलन के रूप में व्यक्त होती थी, तो चाचा की साहित्यिकता नित्य नई पुस्तकों के मँगाने और साहित्य-सृजन में प्रकट होती थी। ऐसे साहित्यिक और वैष्णव-परिवार में वर्माजी का शैशव बीता।

वे जब चार वर्ष के थे तब स्वर्गीय पं० विद्याधर दीक्षित से उनका अक्षरारम्भ हुआ और सात वर्ष की उम्र में ही उन्होंने पढ़ना-लिखना सीख लिया। पढ़ने-लिखने का शौक वर्माजी को बचपन से ही है। उनके

चाचा के पास बँगला से अनूदित 'अश्रुमती' नाटक आया। उसमें अश्रुमती को जहाँ राणा प्रताप की बेटी लिखा था वहाँ यह भी लिखा था कि जब अकबर द्वारा राणा प्रताप से लड़ने के लिए भेजा हुआ सलीम मेवाड़ गया तो वह उस पर आसक्त हो गई। वर्माजी को यह बहुत खटका और उन्होंने अपनी शंका चाचा को बताई। चाचा ने कहा कि यह कभी नहीं हो सकता; क्योंकि तब तक या तो सलीम पैदा ही न हुआ होगा और यदि हुआ भी होगा तो वह बच्चा होगा। वर्माजी के मन में पुस्तकों में लिखी झूठी बातों के प्रति घृणा का बीज तभी से जमा। दूसरी पुस्तक ई० मार्सडन नामक लेखक की 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' थी, जिसने वर्माजी को इतिहास के सत्य आधार की खोज के लिए विवश किया। उस पुस्तक में लिखा था कि हिन्स्दुतान गर्म मुल्क है, इसलिए जो भी आक्रमण-कारी लोग यहाँ आये उनसे यह बराबर हारा और पद-दलित होता रहा। अब चूँकि सर्द मुल्क के रहने वाले अंग्रेज आगए हैं, अतः यह किसी से नहीं हारेगा। वर्माजी ने इसका अर्थ यह समझा कि हिन्दुस्तान गुलामी से शायद ही मुक्त हो। लेकिन रामायण और महाभारत के राम, कृष्ण और भीम की जब इन्हें याद आई तो उन्हें इस पुस्तक से अंग्रेजों की नीचता का आभास हुआ। उन्होंने गुस्से में पहले तो उस पृष्ठ पर थूका और फिर पेंसिल से इतना काटा कि वह फट गया। चाचा ने पूछा तो पहले तो चुप्पी साधी; पर अन्त में अपराध स्वीकार करना पड़ा। चाचा ने इनकी भावना को समझ कर जब अंग्रेजों की निन्दा की तो वर्माजी ने कहा कि मैं सच्ची बातें लिखूँगा। चाचा ने कहा कि सच्ची बातें लिखने के लिए खूब पढ़ना बहुत ही आवश्यक है। फलतः वर्माजी तभी से पढ़ने में डूब गए।

बारह वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने 'चन्द्रकान्ता सन्तति' पढ़ डाली थी। जिन चाचा के पास ये पढ़ते थे उनके पास एक ही लालटेन

थी, जो रात को बुझा दी जाती थी। ये चुपचाप उठते और मिट्टी के तेल की कुप्पी जलाकर एकान्त में 'चन्द्रकान्ता सन्तति' पढ़ते। उन दिनों वे पाँचवें दर्जे में थे। छठे दर्जे में आये तो 'गुलीवर्स ट्रैवल' और 'रोबिन्सन क्रूसो' नामक दो पुस्तकें पढ़ीं, जो उन्हें इनाम में मिली थीं। इसी समय उनके मन में यह भावना भी जगी कि तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' का गद्य में सार लिखा जाय। पन्द्रह-सोलह सफे लिखे भी; पर फिर वह ठप हो गया। आठवें दर्जे में उनके हाथ जार्ज-विलियम रेनाल्ड्स-कृत 'सोल्जर्स वाइफ' पुस्तक लगी, जो उन्हें बहुत पसन्द आई। उनके मन में आया कि बुन्देलखण्ड में डाकू बहुत हुए हैं, क्यों न किसी डाकू की बीबी का ऐसा ही किस्सा लिखा जाय। ललितपुर में ही जर्मन कवि गेटे का 'फाउस्ट' और 'मुद्राराक्षस' तथा 'शकुन्तला' के अनुवाद भी पढ़ने को मिले। उसी समय 'अनूठे देवेश' उपन्यास भी थोड़ा-सा लिखा, पर बोर्डिङ्ग में गड़बड़ी मचने के कारण वह भी पूरा न हो सका।

ललितपुर से वे झाँसी जाकर पढ़ने लगे। नवें दर्जे में थे कि सुन्दर लायब्रेरी में उनको पुस्तकें पढ़ने की सुविधा मिली। वहीं पर शेक्सपीयर की 'मर्चेण्ट आफ़ वेनिस', 'टेम्पेस्ट, 'मेकबेथ', 'हेमलेट' और 'ऑथलो' आदि कृतियों को उन्होंने कसकर पढ़ा। एक दिन मन में उनका हिन्दी-अनुवाद करने की भी सोची। यहीं उनको 'एलफिन्स्टन हिस्टरी ऑफ इण्डिया' पुस्तक मिली। उसमें लिखा था कि खैबर के दर्रे से आने वाले महमूद ग़ज़नवी को घक्करों से मोर्चा लेना पड़ा। घक्कर लोग नंगे पैर थे और शरीर पर कपड़ा भी नहीं था। फिर वे लड़े भी तलवार से। महमूद के घोड़ों पर सवार जिरह-बख्तर वाले सिपाहियों ने उन्हें पल-भर में समाप्त कर दिया। मार्सडन की पुस्तक से उनके मन में अंग्रेजों के प्रति जो घृणा जमी थी वह और भी गहरी हो गई। लेकिन जब इन्हें मेक्समूलर की 'India and what it can teach us' नामक पुस्तक मिली तो कुछ राहत मिली और निश्चय

किया कि यदि अंग्रेजों के भय का पर्दाफाश कर सका तो जीवन सफल है।

मैट्रिक के बाद इनको मुहर्रिरी करनी पड़ी। उसमें कुछ रिश्वत का काम था, जो इन्हें पसन्द नहीं आया। इसे छोड़कर वे जंगल विभाग में नौकरी करने लगे। पढ़ने का शौक तो था ही। एक दिन पढ़ रहे थे कि आफिस के एक बाबू ने उनसे कहा कि यह दफ़्तर है, यहाँ दफ़्तर का ही काम होना चाहिए। उन्होंने तो प्यार से कहा था, पर वर्माजी ने जितने दिन पढ़ा था उतने दिन खड़े रहकर दफ़्तर की मेज पर काम किया और इस प्रकार कर्तव्य-विस्मरण का प्रायश्चित्त किया। एक दिन उन्होंने एक वकील को देखा। वह गाड़ी पर कहीं जा रहा था। उसे देखकर इनके मन में भी वकील बनने की अभिलाषा जगी। तभी सेम्युअल स्माइल्स की 'सैल्प हैल्फ' और 'कैरैक्टर' नामक पुस्तकें पढ़ने को मिलीं। मन में विद्रोह जगा। क्रान्तिकारी विचारों का युवक और नौकरी! तत्काल इस्तीफा दिया और माँ के पास आये। माँ ने अपने गहने बेचकर पढ़ाने का वचन दिया और इन्होंने विक्टोरिया कालिज, ग्वालियर में प्रवेश पाया।

विक्टोरिया कालिज में इन्होंने फ़ेवियन सोसाइटी के पेपर्स का अध्ययन किया। मार्क्स पढ़ा, डार्विन पढ़ा, ग्रीक, रोम, इंगलैण्ड और भारत के इतिहास पर उपलब्ध सभी पुस्तकों का पारायण किया। वकिल की 'इंगलैण्ड की सभ्यता का इतिहास' का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा। यहीं प्रो० आर० के० कुलकर्णी के आदेश से सेवा-भावना और डायरी लिखने का व्रत लिया। स्काट, ह्यूगो, ड्यूमा, अप्टन सिक्लेयर की रचनाओं को इन्होंने बार-बार पढ़ा और मनन किया। इसके अतिरिक्त मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण शास्त्र, विज्ञान और दर्शन पर आधुनिकतम मनीषियों के सिद्धान्तों से परिचय प्राप्त किया। भारतीय संस्कृति के आधारभूत ग्रन्थों का भी अध्ययन चलता रहा।

एक बार तो आप घोर नास्तिक हो गए, परन्तु सन् १९१४ में माँ के देहान्त के बाद फिर आस्तिक हो गये।

१९१३ में आगरा कालिज, आगरा में एल-एल० बी० की पढ़ाई के लिये दाखिला कराया। छात्रावास के बन्धन उन्हें पसन्द न थे, अतः चार-पाँच लड़कों के साथ राजामण्डी में एक मकान किराये पर लेकर रहने लगे। छुआ-छूत का बन्धन समाप्त हो ही चुका था। परिश्रमी छात्रों की भाँति आगरा में उन्होंने ट्यूशन करके अपनी पढ़ाई जारी रखी। मुफीद आम हाई स्कूल में तीस रुपये की नौकरी भी तीन सप्ताह तक की। एल-एल० बी० में वे एक साल फेल भी हुए। लेकिन माँ ने धीरज दिया—"एक ही बार तो फेल हुए हो, कोई बात नहीं। हिम्मत न हारो, राम को मन में रखो, कोई विघ्न-बाधा तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगी।" ये फिर कमर कसकर तैयार हो गए और सफलतापूर्वक एल-एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

अगस्त सन् १९१६ में वकालत आरम्भ की। पहले महीने पाँच रुपये और दूसरे में सात रुपये आये। अक्तूबर में कुछ भी नहीं। नवम्बर में बानवे रुपये कमाये। दिसम्बर में लखनऊ-कांग्रेस में गये। उसके बाद जनवरी में फिर पाँच रुपये और फरवरी में साफ। हारकर काशी के श्री गौरीशंकर प्रसाद की कृपा से नेपाल के राजगुरु को हिन्दी पढ़ाने के लिए जाने का निश्चय किया; लेकिन पिता ने नहीं जाने दिया। मार्च १९१७ से वकालत चली तो ऐसी चली कि दूसरों को मुकदमे देने पड़े। कभी जब कचहरी से समय मिलता तब क्लब की लायब्रेरी में चले जाते और बेल्जियम के कवि और नाटककार मेटरलिंक, अनातोले फ्रांस, मौलियर, मोपासाँ, ताल्स्ताय और पुश्किन की कृतियों में रम जाते। इमर्सन तो उनका अत्यन्त प्रिय लेखक हो ही चुका था। नृतत्व-विज्ञान में उनको सबसे अधिक रस मिलता था।

वर्माजी आरम्भ से ही मस्तिष्क की भाँति शरीर के निर्माण पर

ध्यान देते आये हैं। सशक्त शरीर में ही सशक्त मन रहता है, इसके वे जीते-जागते उदाहरण हैं। जब ललितपुर के बोर्डिङ्ग हाउस में रहते थे तब वे इतनी कसरत करते थे कि इन्हें जाड़ों में ऊनी कपड़ों की जरूरत नहीं पड़ती थी। इन्हें कुश्ती का भी शौक था। झाँसी में तो अखाड़ा उनके दैनिक जीवन का एक प्रमुख अंग था। अपने साथी पं० तुलसीदास के साथ वे ३।।-४ बजे के लगभग लंगोट और लाठी सँभालकर लखीरी नदी में नहाने चल देते थे। सूर्योदय होते ही अखाड़े में जम जाते। पाँच-सात सौ दण्ड और दो-ढाई सौ बैठकें निकालते। इसके बाद जोर होता। लौटते तो माँ चार-पाँच घी-भरे अंगे (अंगारों में सिकी हाथ से बनी मोटी रोटी) और डेढ़-दो सेर दूध पीने को देकर कहती—"जोई साथ जैहै।"

कालेज-जीवन में आप क्रिकेट के कप्तान थे। हाकी-फुटबाल की मुख्य टीम के सदस्य होने के साथ-साथ आप डिबेटिंग सोसाइटी के अध्यक्ष भी थे। आगरा के संगीताचार्य उस्ताद निसार हुसेन ने उनके शरीर के गठन को देखकर उनसे दोस्ती-सी जोड़ ली थी। जब वे कॉलिज के बोर्डिङ्ग हाउस में रहते थे तब सौ-सवा सौ बालटी पानी अपने हाथ से खींचकर नहाते थे। एक बार देवगढ़ की यात्रा की तो साढ़े पाँच सेर दूध और पाव-डेढ़ पाव जलेबियाँ खा गए थे. जिसके लिये मन्दिर के मुनीम ने रसीद ले ली थी, इसलिए कि अधिकारी इस बात पर विश्वास ही नहीं करते थे। स्वय बातचीत के सिलसिले में उन्होंने मुझसे कहा था कि वे अधिक-से-अधिक सवा सौ सन्तरे और ढाई सौ आम एक बार में खा चुके हैं। आज सत्तर साल की उम्र में भी वे कसरत अवश्य करते हैं और उनमें अपार बल है।

कसरत के अतिरिक्त वर्माजी घुमक्कड़ प्रकृति के हैं। बुन्देलखण्ड और मध्य प्रदेश के पहाड़ों-नदियों, झीलों-तालाबों, मन्दिरों-मठों, जंगलों-मैदानों के एक-एक कण से वे परिचित हैं। इस घूमने का एक

बड़ा कारण शिकार का शौक भी है। वर्षों उनके जीवन का क्रम ही यह रहा है कि शनिवार को कचहरी का काम समाप्त किया और साइकिल पर बन्दूक बाँधकर जा बैठे १८-२० मील दूर जंगल में। रात-रात भर गुजार दी—निस्तब्ध गगन और शांत-प्रकृति के अंचल में। जागते-जागते कर दिया सवेरा। उनके पिता मुन्शी नवाबअली पर टोपीदार बन्दूक का लायसेन्स था, जिससे उन्होंने बन्दूक चलाना सीखा। यह सन् १९०९-१० की बात है। लाठी चलाना वे जानते ही थे। तलवार चलाना इन्होंने गरौठा में अपने चाचा के पास सीखा था। मुसलमानों में ताज़िये जब निकलते हैं तब आगे-आगे लोग तलवार फिराते चलते हैं। वर्माजी ने सन् १९०८ से झाँसी में मृत वृद्ध स्त्री-पुरुषों के विमान के आगे इसी प्रकार तलवार फिराते चले जाने की प्रथा चालू की, जो आज तक कायम है।

प्रकृति के प्रति वर्माजी का अनुराग अभूतपूर्व है। बुन्देलखण्ड की भूमि, उसके नदी-नाले, पर्वत-पठार, पेड़ पौधे और ऋतु के अनकूल दिन-रात के अनेक समयों का जैसा सूक्ष्म ज्ञान वर्माजी को है उतना कम लोगों को होगा। इस सबका कारण उनका बुन्देलखण्ड के प्रति प्रेम है। इस प्रेम का भी एक कारण है। वर्माजी ने मुझे एक भेंट में बताया था कि एक बार झाँसी में उन्होंने बुन्देलखण्डिय की बुराई सुनी। उस समय उनके मन को बड़ी चोट लगी और उन्होंने बुन्देलखण्ड का इतिहास और परम्परा अपने अध्ययन के विषय बना लिये। सर वाल्टर स्काट के पठन-पाठन से भी उनके मन में बुन्देलखण्ड को गौरवपूर्ण ढंग से चित्रित करने की प्रेरणा मिली। अपनी अप्रकाशित आत्म-कथा 'अपनी कहानी' में बुन्देलखण्ड के वातावरण पर विचार करते हुए उन्होंने लिखा है—"ये मेले, उत्सव और अवसर बिना किसी उपदेश के ही शक्ति-सचय करने का संदेश देते हैं, नसों में ताज़गी का संचार करते हैं, फिर मैं क्यों न कुछ इसी प्रकार का ढंग अपनाऊँ।"

इस अपने निश्चय को मूर्त्त रूप देने के लिए ही उन्होंने बुन्देलखण्ड को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया।

इतिहास, साहित्य, मनोविज्ञान, नृतत्त्व-विज्ञान, प्राणि-विज्ञान आदि द्वारा मानसिक शक्ति प्राप्त करना तथा कुश्ती, कसरत, शिकार-भ्रमण आदि द्वारा साहसी जीवन बिताकर अपने शरीर को पुष्ट करना ही वर्माजी का कार्य नहीं रहा; वे संगीत, चित्र और नृत्य-कला तथा पुरातत्त्व के भी ज्ञाता हैं। सितार तो वे स्वयं बजाते भी रहे हैं। यद्यपि वे उसकी अपेक्षा इसराज कहीं अच्छा बजाते हैं। बात यह है कि उनके पिता और चाचा दोनों सितार बजाते थे। जब वर्माजी ने होश सँभाला तो 'कानून सितार' नामक नागरी अक्षरों में लीथो की छपाई की पुस्तक उनके हाथ लगी। उसकी भूमिका पढ़ी, तो कहानी का-सा मज़ा आया। उसीसे सितार सीखने की रुचि हुई। झाँसी में वकालत करते हुए वे नित्य अपने प्रिय मित्र संगीत-मर्मज्ञ उस्ताद आदिलखाँ को लेकर सितार बजाया करते थे। शनिवार और रविवार शिकार, तो शेष पाँच दिन सितार; यों शिकार और सितार साथ-साथ चलते थे।

संगीत को वे विशेष महत्त्व देते हैं। उनका कहना है—"गीत जीवन का रस है। एक-मात्र हिन्दू ही संसार में ऐसा है, जिसने इसका पूरा-पूरा आनन्द उठाया है। मृत्यु का रूप हिन्दू शास्त्रों में बारह वर्ष की कन्या-जैसा माना गया है। हमारा अत्यन्त प्रिय देवता श्रीकृष्ण नटनागर है, जो बाँसुरी बजा रहा है।" इसी प्रकार नृत्य को वे तृप्ति का परिणाम मानते हैं। मन्दिरों और मठों में मूर्तियों को देखने की लालसा और उनकी कलात्मक विशेषताओं के अन्तरंग का साक्षात्कार करने की इच्छा ने उनको मूर्ति-कला की ओर भी अग्रसर किया। यह कला-प्रेम उनका जन्म-जात है। संगीत-प्रेम के बारे में उनके जीवन की साधना बड़े महत्व की है। वे तब कोई साढ़े चार या

पाँच वर्ष के होंगे कि बाजार से तम्बाकू लेने के लिए भेजे गए। वहाँ कोई हारमोनियम बजाकर कुछ माँग रहा था। उसके चारों ओर भीड़ जमा थी। ये भी खड़े हो गए। तम्बाकू लाना भूल गए। घण्टों हो गए तो घर में चाचा को चिन्ता हुई। बेचारे खोजने निकले। भीड़ में जाकर पकड़ा; और घर लाये।

इस प्रकार बौद्धिक, शारीरिक और कलात्मक दृष्टि से वर्माजी में सभी का अद्भुत समन्वय है।

अब उनकी साहित्य-सृजन की प्रवृत्ति पर विचार करें। जैसा कि कहा जा चुका है, परिवार में साहित्यिक वातावरण के बीज पहले से ही मौजूद थे—विशेष रूप से उनके चाचा साहित्यिक और कवि थे। इनके चाचा ने 'रामवनवास' नामक नाटक अधूरा छोड़ा था। पन्द्रह वर्ष की उम्र में इन्होंने उसे पूरा करने की प्रतिज्ञा की। उसी समय 'नारान्तक वध' नाम का एक नाटक लिखा, जिसे उन्होंने दूर के घर की एक अटारी में धोतियाँ और चादर बाँधकर खेला था। सन् १९०८ में उन्होंने महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित्र लिखा था और शेक्सपीयर के 'टैम्पेस्ट' का अनुवाद किया था। महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित आगरा के राजपूत प्रेस के मालिक कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी ने छापा था, जिसकी भूमिका में वर्माजी ने भविष्य में हिन्दी के राष्ट्र-भाषा होने की बात लिखी थी। 'टैम्पेस्ट' का अनुवाद राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को दे दिया, जो उनसे खो-खा गया। उससे भी पहले सन् १९०५ में इन्होंने तीन नाटक लिखकर इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद को भेजे थे और ५०) पुरस्कार पाया था। सन् १९०९ में इन्होंने 'राखीबन्द भाई' और 'राजपूत की तलवार' नामक दो कहानियाँ 'लिखीं, जो 'सरस्वती' में छपीं। १९१० में 'सफ़ेजिस्ट की पत्नी' नामक तीसरी कहानी भी 'सरस्वती' में ही छपी। उसी वर्ष 'सेना-पति ऊदल' नामक उनका एक नाटक छपा, जिसे गवर्नमेंट ने ज़ब्त कर लिया। दो साल तक पुलिस भी उन्हें परेशान करती रही। उसके

बाद वे पढ़ते तो खूब रहे, पर लिख न सके। हाँ, जब आगरा में पढ़ते थे तब रघुवंशीजी के 'स्वदेश बान्धव' में वे चातकराय नाम से लिखा करते थे। श्री माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'प्रभा' में भी जब-तब लिख देते थे। उन्होंने जिझौतिया जाति के 'जय जिझौति' नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन भी किया था। तब वे कविता करने लगे थे, जो 'जय जिझौति' में छपी थी। 'वेंकटेश्वर समाचार' में भी लिखा करते थे।

सन् १९१७ में जब उनकी वकालात धड़ल्ले से चलने लगी, उनके मन में संघर्ष उठ खड़ा हुआ। अंग्रेजों द्वारा लिखित इतिहास का खण्डन करने का बचपन का संकल्प आँखों के सामने आया, बुन्देलखंड के गौरव को मूर्त्त करने की लालसा प्रबल हुई और उन्होंने सन् १९२१ में 'स्वाधीन' साप्ताहिक का प्रकाशन आरम्भ किया। स्वाधीन प्रेस भी स्थापित हुआ। वर्माजी की ईमानदारी का सबूत इसी से मिलता है कि आपने अपने अखबार के ग्राहकों के लिए यह नियम बना रखा था कि जब तक नियमित अखबार न निकले, किसी से चन्दा वसूल न किया जाय। उस समय इन्होंने कुछ गद्य-काव्यात्मक निबन्ध लिखे, जो बाद में 'हृदय की हिलोर' नाम से छपे। इस प्रकार 'स्वाधीन' के सहारे लेखनी चलती रही।

लेकिन १६ अप्रैल, १९२७ का दिन वर्माजी के साहित्यिक जीवन का मंगल-प्रभात माना जायगा। शिकार के लिए वर्माजी जंगल में एक गड्ढे में बैठे हुए थे। साथ में दुर्जन कुम्हार और करामत खाँ भी थे। शाम से ही शिकार की तलाश थी। सोचा कि रात को जब पानी पीने के लिए साँभर, या सूअर आयँगे तो निशानेबाजी का मज़ा लेंगे। परन्तु वर्माजी ने ऊपर दृष्टि की तो कुण्डार का किला दिखाई दिया। मौर्य-काल से लेकर आज तक के उसके जीवन की स्थितियाँ मानस-नेत्रों के समक्ष प्रत्यक्ष हो गईं। देखते ही-देखते सवेरे के ४॥ बज गए।

दिन निकला तो सूअर के पैरों के निशान दिखाई दिये। पर जो कुण्डार के किले के साथ एकाकार हो गया हो वह सूअर पर क्या निशाना लगाता? 'आए थे हरि भजन को, ओटने लगे कपास' के अनुसार शिकार की जगह कुण्डार के किले पर लिखने का निश्चय किया और उसी दिन गाँव में पहुँचकर १७ फुलस्केप लिख डाले। उसके बाद तो यह हुआ कि कचहरी में जब गवाहों के बयान से छुट्टी मिलती कि जुट जाते 'गढ़ कुण्डार' पर। इधर जिरह हो रही है और उधर 'गढ़ कुण्डार' भी चल रहा है। इसका अधिकांश तो जंगल के उस गड्ढे में लिखा गया। होते-होते १७ जून को 'गढ़ कुण्डार' पूरा हो गया। १८ जून को गड्ढे में पहुँचे जहाँ लिखने की प्रेरणा मिली थी। फूल लाये गए। शिकारी साथी अयोध्याप्रसाद शर्मा भी साथ थे। पुस्तक पर फूल चढ़ाकर प्रतिज्ञा की कि मरते दम तक लिखूँगा। लौटे और 'लगन' लिखा— कुछ झाँसी में तो कुछ गड्ढे में। सगम' और 'प्रत्यागत' भी तभी लिखे गये। वर्माजी जंगल में टार्च की रोशनी में लिखा करते थे।

स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी कहा करते थे कि वर्मा का गाउन जला दिया जाय तो ठीक है। अभिप्राय यह है कि वकालत की वजह से लिखना नहीं हो पाता। लेकिन 'गढ़ कुण्डार' की पाण्डुलिपि जब विद्यार्थीजी को मिली तो वे सीधे झाँसी आये और कहा—"अब तुम्हारा गाउन जलाने की जरूरत न पड़ेगी।" लेकिन विद्यार्थीजी ने ही उसे गंगा पुस्तकमाला से प्रकाशित कराया और उनको हिन्दी के वाल्टर स्कॉट की उपाधि दी। 'लगन', 'संगम' और 'प्रत्यागत' अपने प्रेस में ही छपे। सन् १९२८ मे 'कुण्डली चक्र' और 'प्रेम की भेंट' लिखे गए। उसी समय इनका परिचय श्री फूलचन्द पुरोहित के चाचा से हुआ, जो कहानी कहने में इतने निपुण थे कि हफ्तों सुनाते रहें और न थकें। उन्होंने इनको 'विराटा की पद्मिनी' की कहानी सुनाई। ये उस कहानी को सुनने के बाद विराटा गाँव देखने गये। वहाँ विराटा की पद्मिनी के चरण-चिन्ह बने हुए हैं। गजेटियर पढ़ा। मन्दिर का

भी निरीक्षण किया। निश्चय किया कि एक ऐसा चरित्र गढ़ा जाय जो आधा दैवी और आधा मानुषी हो। फलस्वरूप २९-३० में 'विराटा की पद्मिनो' की सृष्टि हुई, जो वर्माजी को स्वय बेहद पसन्द है।

'विराटा की पद्मिनी' के बाद वर्माजी के जीवन में साहित्यिक दृष्टि से शून्यता आ गई। हुआ यह कि उनके एक-मात्र पुत्र श्री सत्य-देव वर्माकी बचपन से आँखें खराब होने से उन्हें उसके भविष्य की चिन्ता हुई और उन्होंने ५०-६० हजार अपनी कमाई के तथा ६० हजार कर्ज के रुपये एक फार्म बनाने में लगा दिए। पथरीली और ऊसर जमीन में ७ कुएँ खोदे, डायनामाइट तैयार करके पहाड़ तोड़े, इंजन से पानी निकालने की कोशिश की। पपीते के १० हजार पेड़ लगाये और देश के श्रेष्ठतम आमों के १४०० पेड़ लगाये। लेकिन फार्म हरा-भरा न हुआ। साइन्स न जानते हुए भी पपीते से उन्होंने 'पपेन' नामक रासा-यनिक द्रव बनाया, जिसकी विदेशों तक में प्रशंसा हुई। लेकिन फार्म चलाने में वर्माजी असफल हो गए।

धीरे-धीरे 'नाटक' और कभी-न-कभी' उपन्यास अवश्य इस बीच लिखे, पर १०-१२ वर्ष का बहुमूल्य समय जो इस प्रयोग में गया उससे हिन्दी भाषा की जो क्षति हुई है उसका लेखा-जोखा नहीं दिया जा सकता। अच्छा हुआ कि भाई सत्यदेव ने उस फार्म को ३० हजार में बेचकर मयूर प्रकाशन का आरम्भ कर दिया और अपने बलबूते पर वर्माजी को ऋण-मुक्त करके साहित्य-सृजन के लिए निश्चिन्त बना दिया। सन् १९४० के लगभग टीकमगढ़-नरेश ने वर्माजी को कुण्डार-गढ़ के पास ह जमीन दे दी। जमीन तो फार्म के लिए थी, पर वर्माजी ने वहाँ एक गाँव बसा दिया, जहाँ सन् ४२ ४३ से ५४-५५ तक १४-१४ घण्टे रोज लिखकर वर्माजी ने दर्जनों उपन्याम और सैकड़ों कहानियों की रचना की और पूर्णतया साहित्यिक जीवन बिताने लगे। सन् ४२-४३ के बाद वर्माजी ने जो रचनाएँ दीं काल-क्रमानुसार उनकी सूची इस प्रकार है—

सन् १९४३ १. मुसाहिब जू (ऐतिहासिक उपन्यास)
२. कलाकार का दण्ड (कहानी-संग्रह)
१९४६ ३. झाँसी की रानी (ऐतिहासिक उपन्यास)
१९४७ ४. कचनार (ऐतिहासिक उपन्यास)
५. ग्रचल मेरा कोई (सामाजिक उपन्यास)
६. झाँसी की रानी (ऐतिहासिक नाटक)
७. राखी की लाज (सामाजिक नाटक)
८. काश्मीर का काँटा (ऐतिहासिक नाटक)
१९४९ ९. माधवजी सिंधिया (ऐतिहासिक उपन्यास)
१० टूटे काँटे (ऐतिहासिक उपन्यास)
१९५० ११. मृगनयनी (ऐतिहासिक उपन्यास)
१२. सोना (सामाजिक उपन्यास)
१३ हंस मयूर (ऐतिहासिक नाटक)
१४. बाँस की फाँस (सामाजिक नाटक)
१५. पीले हाथ (सामाजिक नाटक)
१६. लो भाई पंचो लो (एकांकी)
१७. तोषी (कहानी-संग्रह)
१९५१ १८. पूर्व की ग्रोर (ऐतिहासिक नाटक)
१९. केवट (सामाजिक नाटक)
२०. नील कण्ठ (सामाजिक नाटक)
२१. फूलों की बोली (ऐतिहासिक नाटक)
२२. कनेर (एकांकी संग्रह)
२३. सगुन (सामाजिक नाटक)
२४. जहाँदारशाह (ऐतिहासिक नाटक)
१९५२ २५. ग्रमर बेल (सामाजिक उपन्यास)
२६. मंगल सूत्र (सामाजिक नाटक)
२७. खिलौने की खोज (सामाजिक नाटक)

१९५३ २८. बीरबल (ऐतिहासिक नाटक)
२९. ललितविक्रम (एतिहासिक नाटक)
१९५४ ३०. भुवनविक्रम (ऐतिहासिक उपन्यास)
१९५५ ३१. अहिल्याबाई (ऐतिहासिक उपन्यास)
३२. शरणागत (कहानी-संग्रह)
१९५६ ३३. निस्ता (सामाजिक नाटक)
३४. देखादेखी (सामाजिक नाटक)
१९५७ ३५. दबे पाँव (आपबीती शिकारी कहानियाँ)
३६ अँगूठी का दाम कहानी-संग्रह)
३७. अकबरपुर के अमर वीर (ऐतिहासिक कहानियाँ)
३८. ऐतिहासिक कहानियाँ (कहानी-संग्रह)
३९. मेंढकों का ब्याह (व्यंगात्मक कहानियाँ)
४०. बुन्देलखण्ड के लोक-गीत

'शबनम', 'आहत' और 'लाल कमल' उनकी अप्रकाशित रचनाएँ हैं। 'झाँसी की रानी' पर १९५४ में उनको भारत-सरकार का २०००) का पुरस्कार मिला था। 'मृगनयनी' पर तो अनगिनती पुरस्कार मिले हैं।

इस विपुल साहित्य को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वर्माजी ने यदि वे दस साल फार्म के चक्कर में न खोये होते तो वे कम-से-कम २० पुस्तकें अवश्य ही और दे देते।

इस साहित्य-सृजन के साथ-साथ वर्माजी सक्रिय रूप से जन-सेवा के कार्यों में भी बराबर भाग लेते रहे हैं। सन् १९२४ में १८२) से उन्होंने एक कोआपरेटिव बैंक की स्थापना की थी, ६० हजार की तो आज जिसकी इमारत-ही-इमारत है। उसके अन्तर्गत ९०० समितियाँ हैं, जिनमें २८ लाख रुपया लगा हुआ है। इस बैंक के वे मैनेजिंग डायरेक्टर हैं। दलगत राजनीति से वे दूर रहते हैं। वैसे वे बारह वर्ष तक डिस्ट्रिक्टबोर्ड के चेयरमैन रहे हैं। आरम्भ में उनका सम्बन्ध आतंक-

वादियों से रहा। उस बीच वे बराबर क्रान्तिकारियों की रुपये से सहायता करते रहे। अहिंसा को पहले भी वे एक तरकीब मानते थे और आज भी ऐसा ही मानते हैं। उनका कहना है—"गाँधीजी के अहिंसात्मक आन्दोलन ने जनता को निर्भीक तो बनाया, परन्तु हमें सन् १८५७, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, तिलक, गोखले, दादाभाई नौरोजी इत्यादि और अन्य आतंकवादियों के कार्यों को सामूहिक रूप से ध्यान में रखना चाहिए। सुभाष बोस और आजाद हिन्द फौज तथा इंडियन नेवी के विद्रोह को भी नहीं भूलना चाहिए।" वस्तुत: वे जनता के शौर्य और पराक्रम में विश्वास रखते हैं, अतः उन की दृष्टि बड़ी व्यापक है। उन्होंने लिबरल दल, कांग्रेस और अन्य पार्टियों की स्थिति का स्वत: अनुभव करके अपने को राजनीति से अलग कर लिया है। यह अच्छा ही है। साहित्यिक को राजनीतिक दल-दल में फँसकर निराशा का ही सामना करना पड़ता है।

वर्माजी को मानव-स्वभाव का बड़ा ही अच्छा ज्ञान है। मनोविज्ञान तथा नृतत्त्व-विज्ञान से कहीं अधिक वकालत के पेशे ने उनको मानव-जीवन के अध्ययन का अवसर दिया है। 'अपनी कहानी' में उन्होंने लिखा है—"मुकदमों के दौरान में तरह-तरह के नर-नारी मेरे अनुभव में आये : सच्चरित्र दुश्चरित्र, ईमानदार-बेईमान, पीड़ित-शोषक, नम्र-अहंकारी, ऊँचे-नीचे, परिश्रमी-मुफ़्तखोरे, हँसने-हँसाने वाले, रोनी-सूरत वाले इत्यादि। आगे चलकर मैंने उनमें से अधिकांश का उपयोग अपने उपन्यास, नाटकों और कहानियों में किया है।"

वे स्वभाव से सरल विनम्र और संयमी हैं। अत्यन्त नियमित जीवन बिताते हैं। सामान्य जनता की शक्ति में उनका अटूट विश्वास है। शिकार आदि के सिलसिले में उनका अनुभव यह हुआ कि जिन्हें हम अपढ़ गँवार कहते हैं उनमें मानवता का दिव्य रूप छिपा रहता है। अपनी रचनाओं में इसीलिए निम्न वर्ग के प्रति उनकी गहरी

सहानुभूति है। व्यक्तिगत जीवन में भी वे अपने साथियों को बड़े-से-बड़े आदमियों से ऊँचा मानने हैं फिर चाहे वे गायनाचार्य उस्ताद आदिल खाँ हों, या गाड़ीवान विंदेश्वरी ; शिकार का साथी दुर्जन कुम्हार हो या फार्म का चौकीदार चन्दू। अपने घर के नौकरों तक की प्रशंसा करते वे नहीं अघाते। जीवन और साहित्य में यह ईमानदारी वर्माजी की विशेषता है।

२. ऐतिहासिक उपन्यास

वर्माजी ने दो प्रकार के उपन्यास लिखे हैं—**ऐतिहासिक** और **सामाजिक**। इस अध्याय में हम ऐतिहासिक उपन्यासों पर विचार करेंगे और अगले अध्याय में सामाजिक उपन्यासों पर। उनके ऐतिहासिक उपन्यास ये हैं—'गढ़ कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी', 'मुसाहिबजू', 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई', 'कचनार', 'टूटे काँटे', 'माधवजी सिंधिया', 'मृगनयनी', 'भुवन-विक्रम' और 'अहिल्याबाई'। 'मुसाहिबजू' और 'अहिल्याबाई' को छोड़कर शेष आठ उपन्यास चार सौ से छः सौ पृष्ठ तक हैं। इन उपन्यासों में 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई', 'माधवजी-सिंधिया' और 'टूटे काँटे' विशाल राष्ट्रीय पृष्ठभूमि को लेकर लिखे गए हैं। रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों से लड़ी—स्वराज्य के लिए और अमर हो गई। माधवजी सिंधिया ने मुगलों के पतन-काल और अंग्रेज़ों के आगमन-काल के बीच भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय ऐक्य की भावना से पेशवा के साधारण सैनिक की स्थिति में सारे देश में क्रान्ति की भावना का विस्तार किया। 'टूटे काँटे' का समय भी वही है, जो माधवजी सिंधिया का है, अतः इसे भी साथ ही रखा है। इसमें भी मराठों और मुसलमानों की मुठभेड़ और अराजकता की झलक है। यद्यपि 'अहिल्याबाई' भी मराठों के पारस्परिक कलह और दृष्टिकोण की संकीर्णता के ऊपर आधारित है तथापि इसमें न तो 'झाँसी की रानी' का संघर्ष है और न 'माधवजी सिंधिया' और 'टूटे काँटे'-जैसा विशाल

पट। इन उपन्यासों में मराठा राज-शक्ति का प्रमुख भाग है; अतः इन्हें मराठों से सम्बन्धित कह सकते हैं। 'गढ़ कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी' और 'मुसाहिबजू' का सीधा सम्बन्ध बुन्देलों से है। पहले में खंगारों के पतन, दूसरे में दाँगियों की वीरता और तीसरे में स्वामि-भक्त सामन्त के चरित्र की झलक है। 'मृगनयनी' का सम्बन्ध ग्वालियर से है और तोमर, गूजर तथा अहीर जातियों के ऐक्य पर आधारित है। 'कचनार' धामोनी और सागर से सम्बद्ध है और उसमें गोंड और राजगोंडों के जीवन तथा गुसाईं-जैसी लड़ाकू संन्यासी जाति के आतंक का परिचय मिलता है। 'भुवन-विक्रम' इन सबसे अलग उत्तर वैदिककालीन युग का चित्र उपस्थित करता है। केवल इसी उपन्यास में वर्माजी ने बुन्देलखण्ड को छोड़ा है और दैवी आपत्तियों से लड़ने वाले आर्यों के अनुशासित जीवन की झलक दी है। झाँसी, ग्वालियर, इन्दौर और सागर ये सीमा-रेखाएँ हैं वर्माजी के उपन्यासों की घटनाओं की। दिल्ली, पंजाब, मालवा और गुजरात का उल्लेख मुसलमान शासकों की क्रीड़ाभूमि होने से हुआ है। लेकिन वर्माजी ने कहीं भी पद-संचरण किया हो, किन्तु उनको आत्मा बुन्देलखण्ड में ही रही है।

वर्माजी ने अपने इन ऐतिहासिक उपन्यासों में किंवदंतियों और परम्पराओं का जी-भर कर उपयोग किया है। यह नहीं कि उन सबको आँख मूँदकर ले लिया हो। नहीं, उनको इतिहास की कसौटी पर कस-कर देखा है। इतिहास का गम्भीर अध्ययन होने और बुन्देलखण्डी जन-मानस का निकट का परिचय होने के कारण उनको अपने पात्रों के गढ़ने में बड़ी सुविधा मिली है। अपने आस-पास के पात्रों को ऐतिहासिक व्यक्तियों का रूप देने में उन्हें कोई बाधा नहीं पड़ी। जैसे वे इतिहास को जीवन की प्रवहमान धारा से भिन्न समझने के लिए तैयार ही न हों। कल्पना का उपयोग वे करते हैं, पर उतना ही जितना साग में नमक ; परन्तु उतने से ही उपन्यास में सरसता आ जाती है।

वे जिस-किसी विषय पर लिखते हैं उससे सम्बन्धित इतिहास, परम्परा, लोक-कथा, लोक-गीत आदि के साथ तत्सम्बन्धी घटनाओं और पात्रों की क्रीड़ा-भूमि का चप्पा-चप्पा घूमकर देख लेते हैं। न तो वे इतिहास को आँख मूँदकर लेते हैं और न परम्पराओं को। युग की परिस्थिति के सन्दर्भ में सम्भावना के आधार पर उपन्यास का भवन-निर्माण करना उनकी विशेषता है। इतिहास के प्रति इस सीमा तक सचाई का पालन वे करते हैं कि अच्छे-अच्छे इतिहासकार भी उनके अध्ययन पर अँगुली नहीं उठा पाते।

'गढ़ कुण्डार' को लें। यह उनका पहला उपन्यास है। इस उपन्यास में लेखक ने खंगारों के पतन और बुन्देलों के राज्याधिकार का चित्र खींचा है। कुण्डार के गढ़ का अधिपति हुरमतसिंह खंगार है। उसका एक लड़का है नागदेव, और एक लड़की लड़की है मानवती। वह चाहता है कि नागदेव की शादी सोहनपाल बुन्देले की लड़की हेमवती से हो जाय। सोहनपाल अपने बड़े भाई से सन्तापित होकर धीर प्रधान के साथ कुण्डार गढ़ाधिपति की सहायता का अभिलाषी होकर भरतपुर की गढ़ी में ठहरा है। नागदेव अपने मित्र अग्निदेव पाण्डे के साथ भरतपुरा पहुँचता है। रात्रि के समय सहसा मुसलमानों का आक्रमण होता है। उसमें नागदेव घायल होकर हेमवती की परिचर्या पाता है, जिससे उत्साहित होकर वह हरी चन्देल के विश्वस्त अर्जुन कुम्हार द्वारा प्रेम-पत्र भी भेजता है, जो हरी चन्देल के हाथों होकर हुरमतसिंह पर पहुंच जाता है। नागदेव के बढ़ावे से सोहनपाल अपने पुत्र सहजेन्द्र और पुत्री हेमवती तथा धीर प्रधान और उसके पुत्र दिवाकर के साथ कुण्डार में ही एक मकान में आ ठहरते हैं। अब कथा कुण्डार में ही चलती है—तीन प्रेम-कथाओं में विभक्त होकर पहली अग्निदत्त और नागदेव की बहन मानवती की, जिसमें अग्निदत्त उसे धनुर्विद्या सिखाते-सिखाते प्रेम में लिप्त होता है। दूसरी दिवाकर और अग्निदत्त की बहन तारा की, जो तारा के लिए

अनुष्ठानार्थ कनेर का फूल ही नहीं लाकर देता, सर्प के काटने पर उसके विष को भी मुख से चूस लेता है ; और तीसरी नागदेव और हेमवती की। इनमें पहली दोनों कथाओं में प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे के प्रति कोमल भाव रखते हैं, लेकिन तीसरी में प्रेमी खंगार और प्रेमिका बुन्देली है, जो जात्याभिमान में प्रेमी को तिरस्कृत करती है। उधर मानवती का विवाह कुण्डार के मंत्री-पुत्र राजधर से हो जाता है। दो कथाएँ यों प्रेम का ऋजु पथ छोड़ने को बाध्य होती हैं। परिणाम यह होता है कि शक्ति-दर्प में नागदेव मानवती के विवाह के दिन हेमवती के अपहरण की चेष्टा करता है, पर दिवाकर के कारण असफल रहता है और अग्निदत्त मानवती को भगा लाने के प्रयत्न में नागदेव द्वारा पकड़ा जाकर निष्कासित होता है। भविष्य के संकट को लक्ष्य करके सोहनपाल अपने परिवार के साथ पँवार सामन्त पुण्यपाल का अतिथि बनता है। अग्निदत्त भी वहाँ जा पहुँचता है। खंगारों से प्रतिशोध लेने के लिये झूठे ही हेमवती की शादी का वचन देकर उन्हें छल से मारने की योजना बनती है। दिवाकर इस घृणित योजना से विरोध प्रकट करने के कारण देवरा की गढ़ी की काल कोठरी में डाल दिया जाता है। विवाह के दिन खंगार शराब पीकर धुत्त हो जाते हैं। खंगारों और बुन्देलों का युद्ध होता है, जिसमें अग्निदत्त मानवती तथा उसके नवजात पुत्र की रक्षा करता हुआ पुण्यपाल के हाथों मारा जाता है। दिवाकर तारा को लेकर जंगल की ओर चला जाता है। हेमवती की शादी पुण्यपाल से हो जाती है और कुण्डार में सोहनपाल का राज्य स्थापित हो जाता है।

यह वर्माजी का पहला उपन्यास है, जिसमें उन्होंने बुन्देलखण्ड के वीर बुन्देलों के राज्य की स्थापना का चित्र दिया है। खंगारों का पतन उनक दृष्टि में इसलिए जरूरी था कि वे विलासी, शिथिल और क्रूर थे। साथ ही दिल्ली के मुसलमानों और उनके पिछलग्गुओं से साठ-गाँठ करते थे। वर्माजी ने ऐसी जाति का पतन कराया है—छल से ही सही। कारण उनके ही शब्दों में यह है कि बुन्देलखण्ड की

वर्तमान हिन्दू जनता में जो प्राचीन हिन्दुत्व (Classical Culture) अभी थोड़ा-बहुत शेष है उसकी रक्षा का बहुत-कुछ श्रेय बुन्देलों को ही है। स्वामीजी नामक एक पात्र ने राजपूतों की दुर्दशा पर कहा है -"तुम कभी किसी से लड़ बैठते हो, कभी किसी को अपमानित करते हो। उधर हमारी आशा इधर-उधर भटकती फिरती है। क्या होगा, हे हरे!" (पृष्ठ २७)। पूरे उपन्यास में ऊँच-नीच की भावना भरी है। बुन्देले न तो खंगारों का भोजन करते हैं और न उनके साथ वे विवाह-सम्बन्ध ही स्थापित करते हैं। इस देश के नाश का कारण राजपूतों के अपने को एक-दूसरे से बढ़कर समझने में रहा है। यही कारण है कि वे मुसलमानों का संगठित होकर सामना नहीं कर सके। परस्पर लड़ने में ही शक्ति का अपव्यय करते रहे हैं। अग्निदत्त-जैसा ब्राह्मण तक प्रेम की पावनता छोड़कर पैशाचिकता पर उतर आया और दिवाकर जो स्वयं जाति-पाँति को भुलाकर तारा से प्रेम करने लगा, खंगारों का भोजन बुन्देलों के लिए अस्पृश्य मानने लगा। मुसलमानों ने हमारी इसी कमजोरी का लाभ उठाकर हमारे मन्दिर तोड़े, धर्म-ग्रंथ जलाये और हमारी संस्कृति क हत्या की। वर्माजी ने इसी बात की ओर संकेत किया है। बुन्देलों के प्रति वर्माजी के प्रेम का कारण यही है कि मुसलमानों से उन्होंने जी-भरकर लोहा लिया।

'विराटा की पद्मिनी' का भी सम्बन्ध बुन्देलखण्ड से है। यह उपन्यास 'गढ़ कुण्डार' से भिन्न प्रकार का है। इसमें वर्माजी ने कल्पना-शक्ति से एक किंवदंती को उपन्यास का रूप दिया है। यह उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में है। इसमें क्षत्रियों की दाँगी जाति की वीरता का आश्रय लिया गया है। इस जाति की कन्या कुमुद ही विराटा की पद्मिनी है, जो अपने रूप-लावण्य के कारण दूर-दूर तक विख्यात हो गई थी। वह रहने वाली तो थी पालर की, पर एक बार मुसलमानों की मुठभेड़ के कारण आ गई थी विराटा में; इसलिए उसका नाम पड़

गया 'विराटा की पद्मिनी' । यही इस उपन्यास की कथा का केन्द्र है।

लोग कुमुद को दुर्गा का अवतार मानते थे और वह भी कभी-कभी ऐसा सोचती थी जैसे देवी का अवतार हो। उसके दो दावेदार थे—एक राजा नायकसिंह और दूसरा कालपी का नवाब अलीमर्दान खाँ। राजा नायकसिंह के दो रानियाँ थीं—बड़ी रानी और छोटी रानी। इसके अतिरिक्त परिवार में दासी-पुत्र कुञ्जरसिंह भी था। बुढ़ापे में कामुकता का ज्वर तीव्र हो गया था। सनकी था ही। रामदयाल नामक अपने वासना-पूर्ति-सहायक स्वामि-भक्त नौकर से उसने कुमुद को प्राप्त करने की प्रेरणा पाई थी। राज्य का एक मन्त्री था जनार्दन, जो अत्यन्त चतुर और दूरदर्शी था और था अपने मन की करने वाला। लोचनसिंह राजा का सेनापति था और हकीम आगा इलाज करने वाला राज-भक्त मुसलमान।

पालर पर अलीमर्दान की सेना का आक्रमण वृद्ध और विलासी राजा नायकसिंह को भी उद्यत करता है कि लड़े। वह दिलीपनगर से दूर पहुँचकर स्नानार्थ आया हुआ है, पर लडने को जाता है। वहीं पर देवीसिंह नामक गरीब वर की वीरता से उसकी रक्षा होती है। दिलीपनगर पहुँचकर राजा नायकसिंह स्वर्गवासी होने को होते हैं। देवीसिंह नजरों में चढ़ ही गया था। जनार्दन शर्मा की चालाकी से उसे उत्तराधिकारी भी बना दिया जाता है। कुञ्जरसिंह विद्रोही हो जाता है। छोटी रानी रामदयाल की सहायता से अलीमर्दान को राखी भेजकर अपनी ओर करती है। युद्ध होता है और सिंहगढ़ में रानी की विजय होती है, पर कुञ्जरसिंह उसमें अलीमर्दान का हाथ देखकर अलग हो जाता है और भागकर पहुँचता है विराटा।

इधर लोचनसिंह सिंहगढ़ को जीत लेता है। कुञ्जरसिंह विराटा में कुमुद की ओर आकृष्ट होता है और उसकी मन से आराधना करता है। गोमती, जो देवीसिंह की वाग्दत्ता थी और लड़ाई के कारण जिसका विवाह नहीं हो पाया था, कुमुद के साथ ही रहती है

अलीमर्दान का दाँत अब विराटा पर है। छोटी रानी, बड़ी रानी और रामनगर का राजा उसके साथ हैं ही। देवीसिंह बुन्देल-लक्ष्मी की रक्षा के लिए विराटा की ओर चला। कुञ्जरसिंह कुमुद की रक्षार्थ था ही। रामनगर देवीसिंह के हाथ आ गया और भ्रमवश देवीसिंह, कालपी और विराटा की मुठभेड़ हुई, जिसमें विराटा के दाँगी लड़ते-लड़ते मारे गए, कुञ्जरसिंह ने वीरगति पाई और छोटी रानी भी चल बसी। अलीमर्दान ने जल-समाधि ली। अब विरोध का कारण न रहा और अलीमर्दान तथा देवीसिंह में सन्धि हो गई।

इस उपन्यास के मूल में नारी ही प्रधान है। 'गढ़ कुण्डार' में हेमवती थी, तो यहाँ कुमुद है। वहाँ जात्याभिमान के कारण पारस्परिक युद्ध का प्राधान्य है, यहाँ विलास-वासना मुगल-प्रतिद्वंद्विता में बदल गई है। हेमवती में रूप ही प्रधान था, पर कुमुद में दैवी गुणों का भी समावेश है। उधर 'गढ़ कुण्डार' में अग्निदत्त-मानवती और दिवाकर-तारा के युग्म थे, इधर कुमुद के साथ गोमती है जिसका होने वाला पति देवीसिंह राज्य-प्राप्ति के मद में उसे भूल-सा गया है, वैसे ही जैसे शापग्रस्त राजा दुष्यन्त शकुन्तला को भूल गया था। मानवती, तारा और हेमवती में कोई भी गोमती ी भाँति रामदयाल-जैसे पतित व्यक्ति की चालों का शिकार नहीं होती। यद्यपि केन्द्र तो हेमवती है, पर प्रेम की पावनता और व्रत-निष्ठा में तारा ही कुमुद की समता कर सकती है। इन दोनों के प्रेमी दिवाकर और कुञ्जर भी शारीरिकता के स्पर्श से रहित उच्च प्रेम के अनुयायी हैं। 'गढ़ कुण्डार' में मुसलमानों का आक्रमण नाम-मात्र को था, जब कि इसमें वहीं प्रमुख है। बुन्देलों और खंगारों का जाति-विरोध गढ़-कुण्डार मे है। यहाँ बुन्देले-बुन्देले परस्पर टकराये हैं। राज्य लिप्सा में और कूटनीति में रानी भी भाग लेने लगी है। देवीसिंह और लोचनसिंह की वीरता बुन्देलों में स्मरणीय है तो दाँगियों का बलिदान और कुञ्जर का मूक आत्म विसर्जन भी कम प्रभावोत्पादक नहीं है।

'मुसाहिबजू' बुन्देलों से सम्बन्धित तीसरा उपन्यास है। दतिया राज्यान्तर्गत केरुआ के जागीरदार मुसाहिब दलीपसिंह राजा के अत्यन्त प्रिय और विश्वास-पात्र जागीरदार हैं। सामन्त-युग की समाप्ति का चित्र इसमें दिया गया है। नायक दलीपसिंह उदार और हठी प्रकृति का है। वह शिकार में अपनी जान बचाने वाले पूरन मेहतर को अपने गले का हार पुरस्कार में देता है। जब उसका बाप रमू आश्चर्य से अवाक् रह जाता है तब वह कहता है कि आज से यह मेरे बेटे के बराबर है। सैनिकों और सेवकों की आवभगत में दलीपसिंह की चरखारी वाली रानी के सब गहने बिक जाते हैं। एक दिन जब दतिया की रानी एक उसत्व में उन्हें निमन्त्रित करती हैं तो चरखारी वाली सिसक-सिसककर रो पड़ती है। रमू और पूरन को अपनी रानी की यह दशा सह्य नहीं होती और वे डाका डालकर रानी को आभूषण लाकर देते हैं। बहाना बनाते हैं कि खण्डहर में मिले। अन्त में राजा पर पुकार की जाती है और दलीपसिंह राज्य छोड़कर चल देते हैं, पर कोतवाल की चतुराई से राजा और दलीप दोनों फिर एक हो जाते हैं।

इस उपन्यास का समय १८वीं शताब्दी का अन्तिम काल है। इसकी कथा 'गढ़ कुण्डार' या 'विराटा की पद्मिनी' की भाँति न तो विस्तृत है और न पेचीदा। यहाँ प्रेम का भी कोई ऐसा पुष्ट आधार नहीं है मुसाहिब की चरखारी वाली पत्नी की पति-भक्ति का उज्ज्वल रूप देखने को अवश्य मिलता है। लल्ली और साहूकार की लड़की सुभद्रा का प्रेमालाप का आभास भी है; लेकिन वह किसी परिपक्वावस्था को नहीं पहुँचता। दलीपसिंह का अपने स्वामिभक्त नौकरों के लिए राज्य छोड़कर चल देना जितना प्रशंसनीय है उतना ही उसके सेवकों की स्वामि-भक्ति भी उल्लेखनीय है। इसमें सामन्तों के आर्थिक दिवालियेपन की ओर भी संकेत है। घर में चीनी तक के लिए जेवर बेचने की नौबत आ जाना और फिर भी शिकार तथा शान-शौकत में कमी न होना आज तक सामन्तों की आदत में शुमार है। लेकिन सिन्धिया की सेना के आक्रमण का समाचार सुनकर दलीपसिंह

अपमान को भूलकर वापस लौट आता है। यह उसके चरित्र का उज्ज्वल पक्ष है।

'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' वर्माजी का चौथा ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास को लिखकर वर्माजी ने ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन का आदर्श उपस्थित किया है। झाँसी की रानी के बारे में एक-एक तथ्य की खोज करके यह प्रतिपादित किया गया है कि झाँसी की रानी स्वराज्य के लिए लड़ी। वर्माजी ने इस उपन्यास में सभी बातें ऐतिहासिक रखी हैं और पात्रों, घटनाओं, स्थानों का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत किया है, अतः उपन्यास में 'गढ़ कुण्डार' या 'विराटा की पद्मिनी'-जैसी सरलता नहीं है। पूर्वार्द्ध में तो झाँसी की रानी के बचपन और विवाह तक ऐतिहासिक विवरणों से पाठक को बड़े धैर्य से निबटना पड़ता है, लेकिन उत्तरार्द्ध में गति तीव्र हो जाती है। उसके बाद तो युद्ध और युद्ध की तैयारी में ही क्षण क्षण बीतने लगता है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं, जो लेखक ने न लिखी हो। रानी बाजीराव पेशवा द्वितीय) के कृपा-पात्र मोरो पन्त की पुत्री थी और बिठूर में पेशवा के साथ ही रहती थी। भारतीय वीरांगनाओं के चरित्र का ज्वलन्त आदर्श उसमें मूर्त्त हुआ था। कुश्ती-मलखम्भ, घोड़े की सवारी, तलवार चलाना आदि पुरुषोचित कार्यों में उसकी गहरी रुचि थी। झाँसी में गंगाधर राव के साथ विवाहित होकर आने पर भी उसका यह क्रम टूटा नहीं। इसके साथ राज्य-प्रबन्ध में उसने हाथ बँटाना भी शुरू कर दिया। गंगाधर राव के देहान्त के बाद १८ वर्ष की रानी ने झाँसी का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया। अंग्रेजों का दाँत झाँसी पर था। उसने तात्या और नाना की सहायता से देश की दशा का अध्ययन किया और स्त्रियों की सहायक टुकड़ी को लेकर अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिए।

यदि नवाब अलीबहादुर और उसका नौकर पीरअली षड्यन्त्र न करते, तो रानी अंग्रेजों से कभी हारती नहीं। देश का यह दुर्भाग्य रहा है कि अलीबहादुर-जैसे लोगों ने व्यक्तिगत शत्रुता के लिए देश

को बेचा है। जागीर के लोभ में पीरअली ने रानी की सब तैयारियों का भेद जनरल रोज़ को दिया, जिससे रानी को अपनी प्यारी झाँसी छोड़कर कालपी जाना पड़ा। रानी अपनी पीठ से दत्तक पुत्र दामोदर राव को बाँधे हुए खानाबदोश जीवन के लिए निकल पड़ी। कालपी में राव साहब को समझाया, पर भंग की झोंक में उसकी समझ में न आया। सेना भी 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार विलास में डूबी थी। यदि रानी को ही प्रधान सेनापति बनाया गया होता तो कालपी से ही युद्ध का पासा पलट जाता। वहाँ से ग्वालियर पहुँचकर भी राव साहब ने वही विलास और ठाठ-बाट का जीवन रखा। रानी की भावना न समझी। सब हो जायगा बाई साहब' की टेक पकड़े हुए राव साहब अपने को राजा सिद्ध करने में लगे रहे; रानी की भाँति सैनिक बनकर अंग्रेजों से लड़ने और उनकी चाल को विफल करने में नहीं। परिणाम यह हुआ कि रानी को अकेले ही ग्वालियर के किले से बाहर युद्ध करना पड़ा—क्योंकि ग्वालियर की सेना राव साहब के रंग-ढंग देखकर विमुख हो गई थी। अन्त में रानी को अंग्रेजों की पिस्तौल से घायल होना पड़ा। मरते समय रानी ने कहा कि उसकी लाश अंग्रेजों के हाथ न पड़े।

यह उपन्यास वर्माजी के सभी उपन्यासों से भिन्न प्रकार का है। इसकी नायिका रानी लक्ष्मीबाई के चरित्र में कहीं भी हल्के प्रेम के लिए स्थान नहीं है। १८ वर्ष की विधवा रानी सुन्दर, मुन्दर, काशीबाई, जुहीबाई, मोतीबाई आदि सामान्य स्त्रियों के बीच रहकर और उनके हास-विलास की दर्शिका बनकर भी अविचलित रहती है। उन्हीं की फौज से अंग्रेजों का मुकाबिला करती है। यही नहीं गौसखाँ, रघुनाथसिंह, भाऊबख्शी आदि अनेक पुरुष पात्र भी उसके प्रति मातृ-भाव रखते हैं। किले से बाहर जनता भी जान देती है। गुलमुहम्मद-जैसे पठान भी उसके लिए मर-मिटते हैं। यह सब इसलिए कि रानी के चरित्र में त्याग और बलिदान के अतिरिक्त अन्य किसी बात के लिए स्थान नहीं है। वह वीरांगना अपने एक-ऐक गहने को

बेचकर सेना की सामग्री जुटाती है। अन्य उपन्यासों की नायिकाओं की भाँति उसके जीवन में प्रेम-प्रेरक तत्त्व नहीं, देश-प्रेम ही उसका लक्ष्य है। रघुनाथसिंह-मुन्दर, तात्या-जुहीबाई, खुदाबख्श-मोतीबाई, गौसखाँ-सुन्दर, परस्पर एक-दूसरे के प्रति प्रेम की भावना रखते हैं, पर उन्हें दुर्गास्वरूपा रानी लक्ष्मीबाई के उद्देश्य की खातिर चुपचाप ही बलिदान हो जाना पड़ता है। यहाँ तक कि सुन्दर दूल्हाजू की उच्छृङ्खलता पर सोचती है—"दो जूते मुँह पर न लगा पाये। बड़ा सरदार बना फिरता है। मेरे स्त्रीत्व को दुर्बल समझा!" ऐसा प्रभाव था रानी का। जैसे सबको उसने देश-प्रेम का दीवाना बना दिया हो। पूरन झलकारी, कोरी-दम्पति और बख्शी-दम्पति की अलग ही भूमिका है। इन सबके मन को जानकर भी रानी निर्विकार भाव से युद्ध के लिए सन्नद्ध रहती है। यों नारायण शास्त्री और छोटी का युग्म भी है, जो सबसे अलग है। वह तान्त्रिक जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है और धर्म का खोखलापन भी बताता है।

झाँसी की रानी लक्ष्माबाई के त्याग एवं साहस पर आश्चर्य और युद्ध-कौशल पर गर्व होता है तो उसके स्त्री-पुरुष-सहायकों की स्वामि-भक्ति और बलिदान पर रोमांच। कोई ऐसी जाति नहीं जो रानी के लिए मर-मिटने को प्रस्तुत न हो। और तो और, गुलमुहम्मद और वरहामुद्दीन-जैसे पठान भी उसके लिए प्राणोत्सर्ग कर देते हैं। रानी में भी इनके प्रति अपार प्रेम है। कला और संस्कृति के प्रति भी रानी में अनुराग है। लेकिन देश से अंग्रेजों को निकालना ही सुख-समृद्धि का कारण होगा, यह उसका दृढ़ विश्वास है। इसीके लिए उसने अपने जीवन को शुचिता के तेज से तपाकर वीरता की वेदी पर निछाकर कर दिया।

'कचनार' लेखक की अमरकण्टक-यात्रा की देन है। अमरकण्टक के जिस पठार से नर्मदा नदी निकली है उस पर एक कुटिया के समक्ष लेखक ने एक सुन्दर नारी-मूर्ति को देखा। वह तपस्विनी वेश में थी।

इसी से 'कचनार' की प्रेरणा मिली। गोंडों या राजगोंडों के जीवन से सम्बन्धित इस उपन्यास में एक ऐसी जाति के रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि का परिचय वर्माजी ने दिया है जिस पर सामान्यतया किसी की दृष्टि भी न जाती। वर्माजी के अनुसार "वे अपने सहज, सरल, स्वाभाविक और प्रमोदमय जीवन द्वारा भारतीय संस्कृति को अपने दृढ़ और पुष्ट हाथों की अञ्जलियाँ भेंट किया करते थे। वे क्या फिर ऐसा नहीं कर सकते ? मुझको तो आशा है। 'कचनार' मेरी अमरकण्टक-यात्रा का प्रतिबिम्ब और उस आशा का प्रतीक है। इसमें भवाल संन्यासी केस, जिसमें विस्मृत घटना के स्मरण में मतभेद था, की घटना का सहारा भी लिया गया है और 'सरस्वती' मासिक में पढ़ी एक ऐसी दुर्घटना का भी, जिसमें एक एम० ए० के छात्र के घोड़े से गिरने और स्मृति खो देने का उल्लेख हुआ था।"

इन सब के आधार पर 'कचनार' का निर्माण हुआ है। 'कचनार' की क्रीड़ा-भूमि धामोनी है। जहाँ का गोंड राजा दलीपसिंह है। अपनी रुग्णावस्था में अपने दूर के रिश्ते के छोटे भाई मानसिंह को अपनी कटार के साथ, जैसा कि गोंडों में प्रचलित है, विवाह करने के लिए भेजता है। दलीपसिंह के मामा सोनेसाह राजगोंड बारात के प्रबन्धक हैं। रास्ते में ही मानसिंह और नववधू कलावती एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट हो उठते हैं। कुछ ही दिन बाद सागर की सेना से लड़कर लौटते समय दलीपसिंह घोड़े से गिर पड़ता है और अपनी स्मरण-शक्ति खो देता है। मानसिंह और कलावती निकट-से-निकटतर होते जाते हैं और दलीपसिंह की बीमारी बढ़ती जाती है। एक दिन मानसिंह उसे जहरीली जड़ी खिला देता है, जिससे वह तीव्र ज्वर में मर जाता है। जब श्मशान में उसे ले जाया जाता है, तब अचानक आँधी-पानी आता है। लोग शव को चिता पर छोड़कर बचने को खड़े होते हैं कि पानी की शीतलता से शव की अग्नि शान्त होकर उसमें चेतनता आती है। उधर से गुजरने वाले अचलपुरी गोसाईं उसको अपने साथ रखकर सुमन्तपुरी नाम देते हैं। उधर मानसिंह की वासना कलावती तक ही

नहीं, कचनार, ललिता और अपने मित्र डरू अहीर की स्त्री मन्ना तक विस्तार पाना चाहती है। कचनार और ललिता कलावती की बाँदियाँ थीं, जिनमें कचनार के प्रति दलीप का आकर्षण था, पर कचनार की शर्त थी कि विवाह ही उन दोनों को मिला सकता है। ललिता चंचल थी। गोंडों में दासियों के साथ शरीर-सम्बन्ध की जो प्रथा थी, वह रानी की जानकारी में ही उसकी स्वीकृति से सम्भव थी। अतः कलावती ने ललिता को तो मानसिंह से मिला दिया, पर कचनार भागकर अचलपुरी के अखाड़े में कंचनपुरी बनकर आ गई। सुमन्तपुरी के रूप में दलीपसिंह पहले से ही था। दोनो के पूर्व संस्कारों ने एक-दूसरे को खींचा, पर अचलपुरी ने वास्तविक रहस्य को प्रकट न होने दिया और अन्त में जब धामोनी पर आक्रमण हुआ और मानसिंह हारा तब दलीपसिंह के भी चोट लगी और उसकी पूर्व स्मृति लौट आई। कचनार उसे मिल गई और मानसिंह तथा कलावती पाँच गाँव और एक गढ़ी प्राप्त करके धामोनी से बाहर हो गए।

कचनार इस उपन्यास का केन्द्रबिन्दु है, जिस पर नायक दलीपसिंह, मानसिंह और गोसाईं अचलपुरी तक मुग्ध हो जाते हैं। वह विषम परिस्थितियों में भी अपने सतीत्व की रक्षा करती है। न केवल वह मानसिंह से बचती है, वरन् अचलपुरी के अखाड़े में मण्टोलेपुरी और सुमन्तपुरी के रूप में दलीपसिंह से भी दूर रहती है। यह अत्यन्त ओजस्विनी और दर्पमयी नारी चारित्रिक दृढ़ता की अमर छाप छोड़ती है। 'विराटा की पद्मिनी' की कुमुद की भाँति वह अन्त तक पवित्रता की रक्षा करती है। यह आदर्श पात्र है। कलावती और ललिता विलासिनी नारियाँ हैं। ललिता का बाँदी होना उसके चांचल्य को क्षम्य बना सकते हैं। पर कलावती निश्चय ही कमजोर स्त्री है। डरू की पत्नी मन्ना का चरित्र मध्यम कोटि का है। डरू और मन्ना की प्रासंगिक कथा का समावेश दलीपसिंह के क्रोधी स्वभाव के परिचय और चारित्रिक परिवर्तन के लिए आवश्यक समझा गया। दूसरे उसके

द्वारा यह भी बताया गया है कि किस प्रकार सामन्तों द्वारा सताये हुए वीर लोग डाकू बन जाते थे। वे मराठा फौज में या पिंडारियों में शामिल होकर ऊँचे पद भी पा जाते थे। गोसाइयों, मराठों और पिंडारियों का वर्णन इतिहास-सम्मत है।

'मृगनयनी', 'झाँसी की रानी' और 'कचनार' तीनों वर्माजी की श्रेष्ठ कृतियों की शृंखला में हैं। तीनों की अलग-अलग महत्ता है। झाँसी की रानी स्वराज्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करती है, कचनार सतीत्व की रक्षा की चेष्टा करती है और मृगनयनी दाम्पत्य-जीवन का आदर्श प्रस्तुत करती है। राई गाँव में गूजर की लड़की निन्नी (मृगनयनी) अपनी सहेली लाखी के साथ रहती है। लाखी अकाल-पीड़िता है और निन्नी के परिवार में ही शरण पाती है। निन्नी के भाई अटल से उसका प्रेम है। 'विराटा की पद्मिनी' की कुमुद की भाँति निन्नी के रूप-लावण्य की सुगन्धि मालवा के सुलतान गयासुद्दीन तक पहुँचती है। वह पिल्ली और पोटा नट-दम्पति को उसे फुसलाने के लिए भेजता है। इधर बोधन पुजारी ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर को शिकार के बहाने गाँव में लाता है। निन्नी एक अरने को सींग पकड़कर ही पछाड़ देती है। मानसिंह उसके रूप और पराक्रम पर मुग्ध होकर उससे शादी कर लेता है। निन्नी ग्वालियर की रानी हो जात है। मानसिंह की आठ रानियाँ पहले थीं, पर निन्नी (मृगनयनी) अपनी चारित्रिक विशेषता के कारण मानसिंह को अपना बना लेती है। राई में रह जाते हैं लाखी और अटल। वही बोधन, जो मानसिंह के तोमर-निन्नी गूजर लड़की के विवाह को शास्त्र-सम्मत मानता है, अटल गूजर और लाखी अहीर लड़की का विवाह नहीं होने देता। उधर गयासुद्दीन के नट निन्नो के अभाव में लाखो का हो प्राप्त करके अपना काम बनाना चाहते हैं। राई छूटतो है और अटल तथा लाखी नरवरगढ़ पहुँचते हैं। नरवर का किला ग्वालियर के अधीन है। गयासुद्दीन उस पर आक्रमण करता है। नट

रात के समय आक्रमण से पहले ही नरवर से अटल-लाखी के साथ बाहर निकलने के लिए किले के बाहर एक पेड़ से रस्सा बाँधते हैं। लाखी नटों की कलुषित मनोवृत्ति का परिचय पाकर रस्से को काट देती है। जगार हो जाती है और नरवर का किला बच जाता है। गयासुद्दीन की पराजय हो जाती है। मानसिंह नरवर की जागीर अटल को देकर लाखी सहित उसे ग्वालियर लिवा लाता है।

दिल्ली का सुलतान सिकन्दर ग्वालियर पर कई बार आक्रमण करने पर भी मुँहकी खा चुका था। वह बदला लेना चाहता था। मानसिंह मृगनयनी के साथ कला और संगीत की उन्नति में जुट जाता है। नरवर के किले का पूर्व स्वामी मानसिंह उस पर पुनः अधिकार करने के प्रयत्न में बैजू गायक और कला-चित्रकर्त्री को जासूसी के लिए और मानसिंह को छल से मारने के लिए भेजता है। बैजू तो मानसिंह के कला-प्रेम में कोई बुरा कार्य नहीं कर पाता, पर कला षड्यन्त्र में रत हो जाती है। बैजू नये-नये राग रागिनियाँ निकालता है। मृगनयनी की प्रेरणा से मानसिंह कला के साथ-साथ कर्तव्य का भी पालन करता है। मृगनयनी पूर्व रानियों की ईर्ष्या का केन्द्र बनती है, पर बड़ी रानी के लड़के को राजगद्दी का अधिकारी मानकर अपनी त्याग-वृत्ति का परिचय देती है।

अटल के गाँव में मानसिंह एक गढ़ी बनवा देता है। सिकन्दर के आक्रमण के समय अटल और लाखनी इस गढ़ी की रक्षा करते हुए मारे जाते हैं।

कला और कर्तव्य के सन्तुलन में ही जीवन की सार्थकता के प्रतीक मानसिंह और मृगनयनी इस उपान्यास के केन्द्र हैं। मृगनयनी संयम की साकार मूर्ति है। आदर्श दाम्पत्य जीवन के लिए नारियों का आदर्श होने की क्षमता मृगनयनी में है, जो पहली आठ रानियों के होते हुए भी राजा का प्रेम प्राप्त करती है। वह चाहती तो विलास में डूब सकती थी, पर उसने राजा को कलापूर्ण जीवन बिताने की प्ररणा

दी, जिससे उसने सुन्दर महल बनवाये, बैजू द्वारा संगीत का विकास कराया, कला द्वारा चित्र-कला को गति दी और स्वय नृत्य का भी भव्य रूप प्रस्तुत किया। उसके साथ ही सिकन्दर से लोहा लेने में भी सहायता की। मालवा के गयासुद्दीन और गुजरात के बघर्रा को तत्कालीन मुस्लिम शासकों की मनोवृत्ति के प्रदर्शन के लिए और राजसिंह की संकीर्णता के लिए रखा गया है। इस उपन्यास में प्रेम का रूप संयत है —चाहे फिर वह मानसिंह-मृगनयनी का हो या अटल-लाखी का। निहालसिंह कला के प्रति आकृष्ट होता है, पर वह उसे अधिक बढ़ावा नहीं देती—राजसिंह की जासूस जो है। हाँ, अन्त में राजसिंह की ही शरण में जाती है। बोधन शास्त्री वर्णाश्रम धर्म के कट्टर हिमायती के रूप में और विजय जंगम विशुद्ध समाजवादी की भूमिका में दिखाई देते हैं। मानसिंह की गरीबों की सेवा और विजय-जंगम का श्रम पूजन तथा वर्णाश्रम-विरोध इस उपन्यास की नवीनता है, जो अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों में नहीं मिलता। मृगनयनी एक स्थान पर मानसिंह को आर्यावर्त की रक्षा के लिए उत्तेजित करती है। अतः दृष्टिकोण की विशालता यहाँ भी वैसी ही है, जैसी 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' में, परन्तु यहाँ कला, युद्ध और प्रेम की त्रिवेणी का संगम है जो अन्य उपन्यासों में इस रूप में नहीं है।

'टूटे काँटे' यद्यपि 'मृगनयनी' से पहले लिखा गया था और छपा भी पहले था, लेकिन 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई', 'कचनार' और 'मृगनयनी' में एक सशक्त नारी-चरित्र का तीन भिन्न-भिन्न रूपों में विकास होता है; अतः हमने क्रम कुछ बदल दिया है। वैसे इस उपन्यास में ग्राम-जीवन की प्रधानता हो गई है। यों 'मृगनयनी' का भी प्रारम्भ गाँव से होता है और ग्राम्य जीवन का बड़ा ही सजीव चित्र उसमें है, पर इसमें वर्माजी ने सामन्तवादी व्यवस्था के साथ जनसाधारण की ओर विशेष ध्यान दिया है। लेखक के शब्दों में

"बाजीराव का दिल्ली पर १७३७ में यकायक झपट्टा मारना, मुहम्मदशाह के दरबारी और उनकी रंग-रेलियाँ, मीर हसन खाँ दरबारी की हेकड़ी और गुण्डागीरी, निजामुलमुल्क और सादत खाँ की महत्त्वाकांक्षाएँ और अपनी-अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए नादिरशाह को उन दोनों का न्योता, जाटों का उत्थान, शासन की घोर अव्यवस्था इत्यादि प्रसंग तो इतिहास में कम-बढ़ ब्योरे के साथ मिले, परन्तु जनसाधारण की आर्थिक स्थिति, जन-संस्कृति का उतार-चढ़ाव और जन-मन की प्रगति का वर्णन-विश्लेषण हाथ न पड़ा।" लेखक ने जिन ऐतिहासिक ग्रंथों से इस काल की सामग्री जुटाई है उनमें भी फुटकर सामग्री ही मिली है। सन्तों और महात्माओं ने इस अराजकता के काल में जनता को जीवन-सबल दिया और भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया। नूरबाई के नारी-चरित्र की अद्भुत सृष्टि लेखक ने भारतीय भक्ति-माग और उसकी सर्वजन-सुलभ भावना को सिद्ध करने के लिए की है। इस उपन्यास का आरम्भ बुन्देलखण्ड के किसी स्थल से न होकर फतहपुर सीकरी से होता है, जहाँ मोहन और तोता दो जाट-युवक रहते हैं। रोनी मोहन की बहू है। गरीबी में दिन काटने वाले वे तीनों दाने-दाने के भिखारी बना दिये जाते हैं—मुहम्मदशाह के ढीले शासन के क्रूर हाकिमों द्वारा सब-कुछ छीन ले जाने पर घर में खट-पट होती है और मोहन पत्नी से विमुख होकर आगरा में मुहम्मद शाह के मीर बख्शी की छावनी में दस रुपये पर सिपाही हो जाता है। फीरोजाबाद और एतमादपुर की लड़ाई में मराठों और मुगलों की सेना की जो लूट-मार होती है उसमें मोहन वीरता दिखाता है और मराठों के मुसलमान सैनिक शबराती की रक्षा करता है। उसके बाद हर्षोन्मत्त सादत खाँ की एक महफिल, नूरबाई की गजलों और हिन्दी के गीतों की ध्वनि से गूँजती है, जिसमें मोहन भी लीन हो जाता है। सादत खाँ प्रसन्न होकर नूरबाई को मुँह माँगा इनाम देना चाहता है तो नूरबाई मुहम्मदशाह के दरबार में एक बार अपने संगीत का प्रदर्शन करने को

सुबिधा चाहती है। इसी बीच बाजीराव हमला कर देता है। मुहम्मद शाह बेखबर है। सग्रादत खाँ पहुँच नहीं पाता। मीर हसन खाँ-जैसे लोग उसकी ओर से लड़ने आते हैं। बाजीराव के साथ उसकी प्रेयसी मस्तानी है, जो प्रेरक-शक्ति का काम करती है। हसन खाँ घायल होता है और बाजीराव नारनौल होता हुआ अजमेर पहुँचता है। फतहपुर सीकरी में समाचार आता है कि मोहन मराठी और शाही सेना की मुठभेड़ में मारा गया, जबकि वह बाजीराव द्वारा पकड़ा जाकर शुबराती का साथी होकर पूना जा पहुँचा था।

तोता रोनी को लेकर भरतपुर चला जाता है; क्योंकि क्रिया-कर्म के बाद और कुछ करने को न था। वहाँ रानी उसे लूट मार करके रुपया लाने और गहने बनवाने के लिए कहती है, जैसा कि अन्य जाट करते रहते हैं।

बादशाह ने नूरबाई की प्रशंसा सुनी तो उसे बुला लिया। सादत खाँ ने टालमटोल की तो उसने उसे मीर बख्शी के पद से हटा दिया और नूरबाई को हरम में रख लिया।

मोहनलाल बरसात बीतने पर शुबराती के साथ मराठी सेना के साथ भूपाल तक जाता है, जहाँ से बाजीराव निजाम को राकर दक्षिण में जाना पड़ता है। अब होता है नादिरशाह का आक्रमण, और उसे दिल्ली का दुर्भाग्य दीखता है। मोहन को घर जाने की छुट्टी मिलती है। घर जाता है तो गाँव वाले भूत समझते हैं। बेचारा हारकर फिर दिल्ली को चल देता है। वहाँ से वह ब्रज प्रदेश में जाने की सोचता है। मुहम्मदशाह नूरबाई को नादिरशाह को सौंपकर जान छुड़ाना चाहता है। नूरबाई नादिरशाह को दे दी जाती है पर वह पुरुष-वेष में बाँदी की सहायता से मोहनलाल के साथ ही हरम से निकल पड़ती है। बहुत दूर भरतपुर और मथुरा के निकट वे चिन्तामनि नामक एक जाट के यहाँ ठहरते हैं। लूट-मार उसका भी पेशा है। रात को मराठों से जाटों की मुठभेड़ हुई तो घायल दशा में शुबराती

चिन्तामनि के घर लाया गया। नूरबाई, मोहनलाल और शुबराती वहाँ से मथुरा-वृन्दावन जाते हैं और बीच में लुटते हैं। शुबराती मथुरा छावनी में चला जाता है और मोहन तथा नूरबाई वृन्दावन में रहने लगते हैं। वहीं यात्रा करते-करते रोनी और तोता भी पहुँचते हैं। नूरबाई रोनी को बड़ी बहन मानकर आदर देती है और तोता भाई का साथ नहीं छोड़ना चाहता। बाजीराव के निजाम की सेना को पराजित करने जाने पर मस्तानी को उसके भाई चिमना जी आपा और लड़के बाला जी द्वारा कैद कर लिया जाता है। इस चोट से बाजीराव मर जाता है और उसकी खबर पाकर मस्तानी भी। मोहनलाल चिन्तामनि से बदला ले लेता है और मथुरा के रास्ते में लूटे हुए जड़ाऊ ज़ेवर ले आता है, जिसे नूरबाई—ब्रजराज की भक्त—यमुना में फेंक देती है और नूरबाई की जगह वह सरूपा होकर दमकती है।

पूरे उपन्यास में मोहन-नूर ाई, तोता-रोनी और शबराती को उभारा गया है। यों मुगलों के विलास शान-शौकत, नादिरशाह के अत्याचार और मराठों की एक पद्धति तथा जाटों की लूट-मार का विशद वर्णन है, पर उसके भीतर से जनता का चारित्रिक और नैतिक बल उभरकर ऊपर आता है। नूरबाई भक्ति के आवेश में नादिरशाह के वैभव को ठुकराती है और ब्रज की रज में खो जाती है। मस्तानी का ऐसा विकास तो नहीं है जैसा कि नूरबाई का है, पर उसकी हल्की-सी झलक ही मन पर छाप छोड़ती है। रोनी ठेठ देहाती किसान स्त्री है, जिसका नैतिक स्तर चाहे दृढ़ न हो, पर उसका व्यक्तित्व सजीव है। सामन्तवाद को मरणासन्न स्थिति में अत्याचारों से दलित जनता का दर्द तब मालूम होता है, जब कि विलासी वदनसिंह के एजेंट चिन्तामनि से उसके घर जाकर मोहनलाल बदला लेना है और कहता है कि ब्रजराज वह (वदनसिंह) नहीं है, ब्रजराज भगवान् है। भगवान् में अटूट विश्वास रखने वाली नूरबाई

कहती है कि कोई महल सजाता है, कोई मन्दिर सजाता है, पर मन को सजाये बिना काम नहीं चल सकता। यों वर्माजी ने 'टूटे काँटे' में सामान्य जनता के शौर्य को शक्तिमत्ता के साथ चित्रित किया है और नैतिकता की आवाज़ बुलन्द की है। नूरबाई पावनता की पुनीत प्रतिमा-सी है। अभिप्राय यह कि साधारण मुसलमान स्त्री-पुरुष भारतीयता को जीवन-प्राण मानते हैं।

'माधवजी सिंधिया' 'टूटे काँटे' के आगे की कड़ी है। मुहम्मद शाह के शासन-काल के बाद भारत में अराजकता और बढ़ी और अब एक नई जाति देश को गुलाम बनाने को आ गई थी। "यह बात उस युग की है जिसके लिए कहा जाता है कि मराठे और जाट हल की नोक से, सिख तलवार की धार से और दिल्ली के सरदार बोतल की छलक से इतिहास लिख रहे थे। और अंग्रेज उस समय क्या थे ? क्लाइव के विचित्र रूपों के समन्वय-—व्यवसाय, सिपाहीगीरी, भेड़ की खाल उधेड़ने वाली राजनीतिज्ञता, बेईमानी, क्रूरता, धूर्तता।" ('माधवजी सिन्धिया', पृ० ६)। ऐसे समय मे माधवजी ने एक स्वप्न देखा था और वह यह कि समस्त बिखरी हुई शक्तियों को अंग्रेजों के विरुद्ध सगठित कर देने का। 'झाँसी को रानी लक्ष्मीबाई' जो स्वराज के लिए लड़ी और अंग्रेजों को भारत से निकालने का उसने जी-तोड़ श्रम किया; उसकी भूमिका माधवजी ने अपने व्यक्तित्व से तैयार की। वर्माज ने इसे सन् १९४७ में पूरा भी कर लिया था, पर जिस वनवाड़ी पर माधवजी का देहान्त हुआ था उसे देखे बिना वे इसे प्रकाशित करना नहीं चाहते थे। सन् '५६ में उसे देखने के बाद ही उन्होंने इसे प्रकाशित किया।

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में 'गढ़ कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी', 'मुसाहिबजू' का सम्बन्ध बुन्देलों से है। इनका घटना-स्थल झाँसा के आस-पास ही है। इनम सामन्तों के पारस्पारक कलह और मुस्लम-प्रतिरोध साथ चलते हैं। 'झाँसी का रानी' में धीरे-धीरे वे

भारतीय राष्ट्र की ओर अग्रसर होते हैं। रानी के जीवन में एक शक्ति की स्थापना करके उसे स्वराज के लिए लड़ने वाली अमर वीरांगना बना देते हैं। उसमें जनसाधारण का योग भी मनमाना मिलता है। 'मृगनयनी' में वे ग्वालियर की ओर बढ़ते हैं और अब दिल्ली, मालवा, गुजरात से भी सम्बन्ध जुड़ता है और आर्यावर्त्त की चिन्ता भी होती है। प्रथम तीन उपन्यासों में केवल कालपी के मुस्लिम सरदार का ही प्रतिरोध करना पड़ता है। 'कचनार' में फिर उन्हें याद आती है—अपनी साहित्यिक यात्रा के प्रथम दिनों की और वे फिर 'विराटा की पद्मिनी'-जैसा ही वातावरण उपस्थित करते हैं। लेकिन यहाँ पिंडारियों, मराठों और गुसाइयों का योग होने से समस्त देश का ध्यान खींचने वाले तत्त्व बने हैं। 'टूटे कांटे' से वे पतनकालीन मुगल-काल की झलक देना आरम्भ करते हैं और जनसाधारण के चित्रण द्वारा देश की ऐसी आन्तरिक तसवीर पेश करते हैं, जिसका उल्लेख इतिहास के पृष्ठों में नहीं मिलता। 'माधवजी सिन्धिया' में उसी का विकास दिखाई देता है। यह 'झाँसी की रानी' और 'टूटे काँटे' से एक कदम आगे है।

माधवजी सिंधिया इस उपन्यास का नायक है। उसका जीवन एक सिपाही से आरम्भ होता है और अन्त में पहुँचते-पहुँचते वह दिल्ली में पेशवाई झण्डा फहरा देता है। किस दशा में माधवजी को स्वराज्य की भावना लेकर काम करना पड़ता है उसका पता देश की तत्कालीन दशा में लगता है। स्थिति यह थी कि दिल्ली पर नादिरशाह के बाद अहमदशाह अब्दाली के हमले की तैयारी थी और बादशाह सुरा-सुन्दरियों में मग्न था। मुगल-साम्राज्य में सफदरजंग, शिहाबुद्दीन, नजीबुद्दौला इत्यादि अपनी-अपनी छावनी बनाने में मस्त थे। राजपूतों को घरेलू झगड़ों, व्यक्तिगत चरित्र की हीनताओं और व्यक्तित्व-मग्नता ने दूरदर्शी न बनने दिया। मराठों को राजपूत या तो विपद् या अपने घरेलू झगड़ों को हल करने का सहायक-मात्र समझते थे। मराठों में

ब्राह्मण-अब्राह्मण की भावना और लूट-खसोट करके अपना घर भरने या जागीर प्राप्त करने की धुन थी। जाट अपनी खिचड़ी अलग पका रहे थे। हैदराबाद में निजाम फिरंगियों के साथ था। गुसाईं और कुतुबशाह के जम्हूरियत के हामी कठमुल्ले अपना प्रभुत्व अलग स्थापित करना चाहते थे। ऐसे समय माधवजी एक विशाल दृष्टि लेकर आगे आया। जब उसने देखा कि मराठों की स्वराज्य और हिन्दू पद पादशाही की भावना का अर्थ जनता की लूट-खसोट और सोना-चाँदी तथा जागीर है, तो उसका हृदय विकल हो उठा। इसके बाद दिल्ली की गद्दी के लिए शिहाबुद्दीन और सफदरजंग या नजीब के षड्यन्त्र ने उसे और भी सचेत किया। उसके बाद वह न ताराबाई के बहकावे में आया और न मल्हारराव आदि के। उसने विचार किया कि भारत के अदमनीय राजाओं और नवाबों को मिलाकर स्वराज्य के आदर्श को कार्यान्वित किया जाय, ताकि अंग्रेज बाहर खदेड़े जा सकें। वह भारत-भर की शक्तियों को संगठित करके भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए कृतसंकल्प हुआ। वह हिन्दू नहीं, हिन्दू संस्कृति का राज्य चाहता था। वह व्यक्ति टीपू से नहीं, टीपू की शक्ति से लड़ना चाहता था। गन्ना बेगम और राने खाँ-जैसे मुसलमान उसके लिए प्राण देने को तत्पर हो गये। युद्ध में अंग-भंग होने पर भी वह बराबर देश को अंग्रेजों के विरुद्ध सजग करता रहा। इब्राहीम गार्दी ने ही नहीं अनेक मुसलमानों ने भी उसका साथ दिया। उसने कल्पना की कि जहाजी बेड़ा बनाकर फ्रांस-ब्रिटेन तक धावा बोला जायगा। ऐसा दूरदर्शी, वीर, साहसी होने पर भी वह अपने को 'पटेल' अर्थात् सेवक ही कहता था, अधिकारी नहीं। बेईमानों और देश-द्रोहियों की वह कोई जाति नहीं मानता। देश से सबको नीचे मानता है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की स्वराज्य की कल्पना का यह भाष्यात्मक रूप है। उपन्यास में गन्ना बेगम और जवाहरसिंह की ही प्रेम-कथा है, जो सुखान्त नहीं हो पाती, पर गन्ना 'टूटे काँटे' की नूरबाई की भाँति

अपनी पवित्रता के साथ बलिदान होकर माधवजी के चरित्र को उज्ज्वल बना जाती है। माधवजी के अतिरिक्त अन्य पात्रों का, शिहाब को छोड़कर, कम ही विकास होता है। वस्तुतः इसमें राजनीतिक उथल-पुथल का ऐसा काल लिया है, जिसमें किसी एक पात्र पर आश्रित कथा को बढ़ाया ही नहीं जा सकता।

'अहिल्याबाई' भी वर्माजी का मराठा जीवन से सम्बन्धित उपन्यास है। 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' और 'माधवजी सिंधिया' की भाँति यह भी एक आदर्श नारी का औपन्यासिक जीवन-चरित्र है। 'माधवजी सिंधिया' की भाँति तत्कालीन परिस्थितियों की विषमता में ही अहिल्याबाई का चरित्रांकन हुआ है। उस समय चारों ओर गड़बड़ मची हुई थी। शासन और व्यवस्था के नाम पर घोर अत्याचार हो रहे थे। प्रजाजन—साधारण गृहस्थ, किसान, मजदूर—अत्यन्त हीन अवस्था में सिसक रहे थे। उनका एक-मात्र सहारा धर्म—अंधविश्वासों, भय-त्रासों और रूढ़ियों की जकड़ में कसा जा रहा था। न्याय में न शक्ति थी, न विश्वास ; ऐसे काल में अहिल्याबाई ने जो कुछ किया—और बहुत किया—वह चिरस्मरणीय है।'' (परिचय पृष्ठ १)। लेखक के इन शब्दों में 'अहिल्याबाई' में चित्रित तत्कालीन परिस्थिति पर प्रकाश पड़ता है। यह देवी के रूप में जनता में पूजित रानी दस-बारह वर्ष की आयु में विधवा हुई। पति की उच्छृङ्खलता, सही बयालीस-तेतालीस वर्ष की अवस्था में पुत्र-वियोग सहा, बासठ वर्ष की होने पर दोहित्र नत्थू और उसके चार वर्ष बाद दामाद यशवन्तराव होलकर की मृत्यु और पुत्री मुक्ताबाई का सती होना देखना पड़ा। दूर के सम्बन्धी तुकोजीराव के पुत्र मल्हारराव पर उनका स्नेह था, पर उसने भी उनको शान्ति न दी।

उन्होंने भारत-भर में मन्दिरों का निर्माण कराया, घाट बनवाये, कुए-बावड़ी बनवाये, भूखों और अपाहिजों के लिए अन्न-सत्र खोले

और पूना के रामशास्त्री और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की भाँति न्याय का पालन किया। इस उपन्यास में अहिल्याबाई का तिरेसठ वर्ष की आयु के बाद का जीवन चित्रित है। उनकी दिनचर्या देखिये—वह नित्य सूर्योदय से पहले उठ बैठती थीं। स्नानादि के उपरान्त पूजन करतीं, फिर स्वाध्याय। फिर विद्वान् ब्राह्मणों से रामायण-महाभारत इत्यादि की कथा सुनने का क्रम आता। इसके बाद दीन-दरिद्रों को भिक्षा और भोजन देतीं, तब वह भोजन करके थोड़ी देर शयन करती थीं। दरबार आदि का काम तीसरे पहर से चलता था। वह, जो-कुछ आय होती थी सब प्रजा की भलाई में खर्च कर देती थीं।

मल्हारराव के प्रति उसका मोह है—उत्तराधिकार के कारण वह उसे बराबर क्षमा करती है। लेकिन वह धूर्त्त और लुटेरा है। अहिल्याबाई के सामने भीगी बिल्ली बन जाता है और फिर वही घृणित कार्यों में लीन हो जाता है। वह रानी से रुपया लेकर एक लुटेरों का दल बनाना चाहता है—बहाना यह कि राज्य की रक्षार्थ सेना संगठित की जायगी। वह पहले आनन्दी की ओर आकृष्ट होता है, और फिर सिन्दूरी की ओर। सिन्दूरी गूँगी-बहरी थी, क्योंकि आंभी की दुर्गा को उसने जीभ काटकर चढ़ा दी थी। वह भट्टेश्वर में भोपत के साथ आती है और उसे महल में बड़े प्रयत्न से जगह मिल जाती है। अहिल्याबाई को वह देवी ही मानती है और कालान्तर में वह बोलने-सुनने भी लगती है। वह अपनी पवित्रता की रक्षा करती है।

उसका महत्त्व इसलिए है कि मल्हारराव की नीचता का पर्दा-फाश उसीके द्वारा होता है। न केवल अहिल्या वरन् वह अपनी माँ का भी नौकरानियों के बीच अपमान करता है। मल्हारराव ने सिंदूरी के साथ भी ज्यादती करने की चेष्टा की। लाख यत्न करने पर भी जब वह न माना तो उससे अहिल्याबाई को घृणा हो गई, उत्तराधिकारी का मोह चला गया, जीवन से निराशा हुई। सारा धर्म-कर्म, भजन-पूजन अंध-विश्वास जान पड़ा। पश्चात्ताप किया, और साथ-

साथ निर्णय भी, "ये जितने भी अन्ध-विश्वास हैं, सब व्यापक भय के कारण उत्पन्न हुए हैं। देवी को जीभ काटकर चढ़ाना, मुक्ति के नाम पर पहाड़ी पर से गिरकर आत्म-घात करना, खरगौन के चबूतरे, खम्भे और फरसे का पूजन, देवताओं के सामने पशुओं का बलिदान और न जाने कितने घोर कर्म धर्म के नाम पर किये जा रहे हैं।" (पृष्ठ १६७)। अन्त में वह उस 'ऋत् मार्ग' का अनुसरण करती है, जो संसार के लिए शाश्वत है। वर्माजी के इस उपन्यास के 'परिचय' में अहिल्या का जो जीवन-चरित्र दिया है, उसीका भाष्य उपन्यास है। इसमें कथा का विकास नहीं, क्योंकि यह तिरेसठ वर्ष की अहिल्या-बाई का चित्र है, जिसमें अनुभवी विचारक प्रधान है। हाँ, वर्माजी ने इसमें धर्म और राजनीति पर युगानुकूल अनेक बातों का समावेश अवश्य किया है। अन्य पात्रों में भारमल सिन्दूरी और मल्हारराव के चित्र अधिक गहरे हैं।

'भुवन-विक्रम' उत्तर-वैदिककालीन उपन्यास है। अकाल की पृष्ठभूमि में इस उपन्यास की कथा का विकास होता है। कथा की आधार-भूमि अयोध्या है। राज-परिवार में रोमक, रानी ममता और पुत्र भुवन तीन प्राणी हैं। नीलफणिश नामक एक विदेशी शोषक है, जो दास-प्रथा का हिमायती है। उसकी एक पुत्री है हिमानी। नील-फणिश का परिवार अंग्रेजी परिवारों का प्रतिरूप कहा जा सकता है। हिमानी को अपने धन और रूप का अभिमान है। वह क्रूर है। एक दिन भुवन और उसमें कहा-सुनी हो जाती है। एक राजकुमार, दूसरी धनिक-पुत्री। झगड़ा बढ़ता है—कपिंजल नामक एक दास के ऊपर; जिसे हिमानी खेत में बुरी तरह मारती है। भुवन उसे छुड़ा देता है। दीर्घबाहु नामक एक सम्पन्न ज़मींदार है, जो हिमानी की ओर आकृष्ट होने के कारण नीलफणिश का साथी है। मेघ पुराण-पंथी पुरोहित है, जो जादू-टोने और अन्ध-विश्वास में लोगों को घेरे रहता है।

अकाल को पाँच वर्ष बीत गए। रोमक ने अपने भाण्डार से जनता को अन्नादि वितरित किया, ममता का सब-कुछ चला गया, पर घड़ा खाली होने पर भी प्यास तो रोज लगती है। जनता रोमक के विरुद्ध हो गई। नीलफणिश, दीर्घबाहु, हिमानी मेघ सब का हाथ उसमें था। वह पद-च्युत हो गया। भुवन को नैमिषारण्य की सीमा पर धौम्य ऋषि के आश्रम में भेजा गया और स्वयं राजा-रानी जनता के भीतर विश्वास जगाने लगे। मार्ग में भुवन का परिचय अयोध्या के एक अकालपीड़ित परिवार की कन्या गौरी से होता है, जो धौम्य खेड़ा में बुरे दिन काटने जाती है। कपिंजल वहाँ पहले से था और उसने योग-साधना से शूद्र होते हुए भी ऋषि की पदवी पा ली थी। भुवन भी योग-साधना करता है। अंत में भुवन-विक्रम कहलाने का अधिकारी हो जाता है। अपनी शिक्षा समाप्त करके वह घर लौटता है तथा वरुण देव की कृपा से बारह वर्ष का अकाल समाप्त होता है। रोमक और ममता के प्रयत्न से जनता में विश्वास जाग्रत होता है और दीर्घबाहु, मेघ, नीलफणिश तथा हिमानी ने षड्यन्त्र करके राजा को पद-च्युत किया, जिसका ध्यान भी उसे हो जाता है। जनपद-समिति की बैठक में पुनः रोमक को राजा चुना जाता है। विरोधी षड्यन्त्र करते हैं। हिमानी से विवाह के नाते अपने घर पर ही नील-फणिश सब की हत्या करना चाहता है। लेकिन गौरी नामक उस लड़की ने, जिसका परिचय भुवन से धौम्य के यहाँ जाते समय हुआ था, बचा दिया। गुरु के कहने से कपिंजल दास के रूप में नील के यहाँ काम करता था। गौरी रेवती के रूप में हिमानी की विश्वास-पात्र दासी हो गई थी। उससे भेद पाकर रोमक ने सब तैयारी कर ली और नीलफणिश पक्ष के आक्रामकों को अश्वशाला में बन्दी करके मरवा डाला। अन्त में गौरी और भुवन का विवाह हो गया।

इस उपन्यास में नारी-पात्रों में गौरी और हिमानी का एक-दूसरे से भिन्न रूप है, जो दो संस्कृतियों की प्रतीक हैं। उपन्यास में आधुनिक

युग की छाप बहुत अधिक है। वस्तुतः उसे लिखा ही इसलिए गया है। साम्यवाद का रूप क्या हो, यह इसका प्रतिपाद्य है। प्रजा के लिए राजा का आदर्श, विदेशी शक्तियों का जनता को भड़काना, ज़मींदार और पुरोहित वर्ग का उनके साथ मिलकर देशद्रोह जहाँ अयोध्या की कथा का लक्ष्य है वहाँ धौम्य ऋषि का आश्रम प्राचीन गुरुकुलों का रूप स्पष्ट करता है। जहाँ शिष्य के अहंकार के दमन के लिए गुरु उसके कन्धे पर बैंत का जुआ भी रख देता है। कपिंजल शूद्र होने पर भी तप से ऋषि हो जाता है। भुवन राजकुमार होने पर भी जैसा गुरु कहते हैं, वैसा ही करता है।

वर्माजी ने भूमि-समस्या को हल करने के लिये राज्य द्वारा अपनी समस्त भूमि किसानों में बँटवा दी है। गौरी और भुवन का मिलन यह बताता है कि वर्गहीन समाज में बड़े-छोटे का बन्धन न रहेगा। धौम्य खेड़ा और उसके निवासियों का जीवन प्राकृतिक जीवन है, जिसमें कन्द-मूल-संग्रह और पशु-चारण जीविका के प्रमुख साधन हैं। वर्तमान युग की समस्याओं का वास्तविक समाधान वर्माजी ने इस उपन्यास द्वारा प्रस्तुत किया है।

विशेषताएँ

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि वे जिस किसी व्यक्ति, घटना अथवा स्थान के सम्बन्ध में कोई बात लिखते हैं तो उसके सम्बन्ध में विख्यात ऐतिहासिक तथ्यों की पूरी जानकारी देते हैं। इस जानकारी में वे अपने स्वयं के अनुभव और रचना द्वारा रंग भी भरते हैं, जिससे वह चित्र बड़ा ही आकर्षक और रंगीन हो जाता है। बिना पूरी जानकारी के वे कलम नहीं उठाते। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रारम्भ में—विशेष रूप से, 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई,' 'माधवजी सिन्धिया', 'अहिल्याबाई' आदि में—इतिहास के स्रोतों का जो परिचय दिया है, उससे इस बात का आभास मिलता है कि वे कितने गहरे जाकर इतिहास

को देखते हैं। उनके उपन्यासों को पढ़कर सैकड़ों पुस्तकों के निचोड़ का-सा अनुभव होता है। उन ऐतिहासिक उपन्यासों में वे कई सालों की घटनाओं को भी जोड़कर तत्कालीन चित्र को पूरा करते हैं। 'विराटा की पद्मिनी' और 'कचनार' में इसका अच्छा समन्वय हुआ है। 'कचनार' में तो दैनंदिन जीवन की घटनाओं को भी इतिहास के कलेवर में सजा दिया गया है। इतिहास की दृष्टि से मराठों और बुन्देलों के इतिहास पर उनका विशेष अधिकार है। 'गढ़ कुण्डार', 'विराटा की पद्मिनी' और 'मुसाहिब जू' में उन्होंने बुन्देलखण्ड की सामन्तकालीन संस्कृति का बहुत ही सुन्दर दिग्दर्शन कराया है। 'झाँसी की रानी,' 'माधवजी सिन्धिया' और 'अहिल्याबाई' में मराठों की स्थिति का चित्रण है। 'टूटे काँटे' और 'माधवजी सिन्धिया' में नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के समय के भारत का चित्र है। 'मृगनयनी' में सुलतान सिकन्दर लोदी के शासन-काल में ग्वालियर के तोमर के प्रतिरोध का और 'भुवन-विक्रम' में उत्तरवैदिककालीन समाज का चित्र है। बुन्देलखण्ड के चित्रण में उन्होंने एक-एक गढ़ और गढ़ी का, मन्दिर और खण्डहर का, नदी और नाले का, जंगल और मैदान का, गाँव और नगर का सच्चा वर्णन किया है। ऐसा वर्णन तब तक नहीं हो सकता जब तक कि लेखक को अपने वर्ण्य-विषय से सम्बन्धित भूगोल का ज्ञान न हो। भूगोल की प्रामाणिक जानकारी को वर्माजी स्वयं ऐतिहासिक उपन्यास-लेखक के लिए आवश्यक मानते हैं, इसीलिए उन्होंने अपने उपन्यासों के क्षेत्रों का पैदल भ्रमण किया है। 'माधवजी सिन्धिया' यद्यपि सन् '४६ में पूरा हो गया था, पर जब तक उन्होंने वनवाड़ी की यात्रा नहीं कर ली, तब तक उसे प्रकाशित नहीं किया; और इस प्रकार का अवसर मिला सन् १६५७ में आकर। पुराने गजेटियरों और पट्टे-परवानों, अंग्रेज-और मुसलमान इतिहास-लेखकों तथा कथक्कड़ों की कहानियों के आधार पर वे स्थानों का भ्रमण करते हैं। कुण्डार के गढ़ का वर्णन

करते हुए वे लिखते हैं—"कुण्डार, जो वर्तमान झाँसी से उत्तर-पश्चिम की तरफ़ ३० मील की दूरी पर है, इस राज्य की समृद्ध-सम्पन्न राजधानी थी। कुण्डार का गढ़ अब भी अपनी प्राचीन शालीनता का परिचय दे रहा है। बीहड़ जंगलों, घाटियों और पहाड़ों से आवृत यह गढ़ बहुत दिनों तक जुझौति को मुसलमानों की आग और तलवारों से बचाता रहा।" (पृष्ठ १)। "झाँसी के पूर्वोत्तर कोण में विराटा की गढ़ी, जिसका अवशेष अब एक मंदिर-मात्र है, पच्चीस मील दूर है। रामनगर और विराटा में कोस-भर का अन्तर है। दोनों बेतवा के किनारे पर भयंकर वन में छिपे हुए-से अर्द्ध भग्नावस्था में अब भी पड़े हैं।" ('विराटा की पद्मिनी', पृष्ठ १४३)।

'अहिल्याबाई' में गौतमापुर का यह वर्णन देखिए—"चम्बल नदी के समीप गौतमापुर इन्दौर से उत्तर-पश्चिम में लगभग सोलह कोस की दूरी पर है, महेश्वर से लगभग छत्तीस कोस। इस पुर को उनकी सास गौतमाबाई ने बसाया था।" (पृष्ठ २३)। इस प्रकार कोई भी स्थान आप लें, वर्माजी उसकी भौगोलिक सीमाओं का बावन तोले पाव रत्ती ज्ञान रखते हैं। यदि कहीं मंदिरों का प्रसंग आ जाय तो फिर देखिए; वे उसका पूरा विवरण ही तुरन्त सामने रख देते हैं। "यहाँ के मन्दिर और भी अधिक विलक्षण थे। यहाँ खड़ी पहाड़ी को छेदकर भीतर चैत्य और विहार बनाये गए थे, यहाँ समतल पहाड़ी भूमि काटकर गड्ढे में मन्दिर काट-तराशकर निर्माण किये गए थे। गड्ढा बीस हाथ गहरा, सत्तर हाथ लम्बा और बीस हाथ चौड़ा होगा। बीचो-बीच एक बड़ा मन्दिर और उसके चारों ओर सात छोटे छोटे। मन्दिर का नाम था चतुर्भुज धर्म राजेश्वर। मन्दिर के भीतर पूर्व की दिशा में विष्णु की चतुर्भुज मूर्ति थी और गर्भगृह में ही विष्णु की मूर्ति के सामने महादेव की प्रतिमा; मानो वैष्णव और शैव मतों का सामञ्जस्य किया गया हो।" (अहिल्याबाई, पृष्ठ ६७)। सारांश यह कि वे ऐतिहासिक और भौगोलिक दोनों दृष्टियों से प्रत्येक वस्तु का सच्चा और प्रामाणिक विवरण देते हैं।

उनके उपन्यासों की दूसरी विशेषता है बुन्देलखन्ड के प्रति उनका प्रेम। इस पुस्तक के पहले अध्याय में हम यह बात लिख चुके हैं कि बुन्देलखण्ड के गौरव को मूर्त्त करने के लिए ही उन्होंने अपने उपन्यास लिखे। 'गढ़ कुण्डार' में वे स्वामीजी के मुख से कहलवाते हैं—"कैसी मनोहर, सुहावनी भूमि है, और कैसी दुर्दशा-ग्रस्त है। जब तक किसी क्षत्रिय का एकछत्र राज्य यहाँ नहीं हुआ तब तक यह ललित शुभ्र पृथ्वी यों ही छिन्न-भिन्न पड़ी रहेगी।" (पृष्ठ ३१९)। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई स्वयं कहती है- मैंने देख लिया है कि बुन्देलखण्ड पानीदार देश है। इस पानी को बनाये रखने की आवश्यकता है।" (पृष्ठ ७५)। और लेखक की मान्यता है—"यहाँ की जनता ने कभी किसी अत्याचारी का शासन आसानी के साथ नहीं माना। स्वाभिमान को आघात पहुँचा कि व्यक्ति ने सर उठाया और हथियार हाथ में लिया। शायद भारत का यही खण्ड एक ऐसा है जहाँ डाकू को 'बागी' कहते हैं।" (वही, पृष्ठ २७४)।

बुन्देलखण्ड का यह प्रेम उसकी प्रकृति के वर्णन के रूप में भी व्यक्त हुआ है। उनमें प्रारम्भिक उपन्यासों में नदी-नाले, झील-तालाब, पहाड़-जंगल, लहलहाते खेत और ऊसर सबका ऋतुओं के अनुकूल वर्माजी ने वर्णन किया है। वे जब बुन्देलखण्ड की प्रकृति के सम्पर्क में आते हैं तो गद्गद हो जाते हैं। यद्यपि वहाँ करधई, रेवजा, हींस, महुआ, अचार आदि सामान्य पेड़-पौधे ही होते हैं, पर वर्माजी उन्हें देखकर आनन्द-विभोर हो जाते हैं। एक चित्र देखिये—"पहाड़ों में करधई, धुमर बेंगनी रंग की छाई हुई-सी थी। बीच-बीच में कठवर, तेंदू और अचार की हरी-भरी झुरमुटें। बड़े-बड़े छपकों-जैसी। पहाड़ों पर उपत्यका में साल, महुआ, अचार और सागौन के दीर्घकाय हरे वृक्षों की कतारों-की-कतारें ; मानो उनका कहीं अन्त ही न हो। कोहे के वृक्ष नदी की दोनों ढीहों पर स्वतन्त्रता के साथ नदी की ओर झुके हुए मानों विभूतिमयी नदी की निःशुल्क वन्दना कर रहे हों।"

('कचनार' पृष्ठ ७)। उन्हें पहाड़ के ढालों, नदी के ढीह और भरकों, झीलों और झरनों की धाराओं में अपूर्व आनन्द के दर्शन होते हैं। फूलों में उन्होंने 'हर सिंगार' का बार-बार वर्णन किया है और ऋतुओं में वसन्त ऋतु का, जिसमें खेतों में फसल सोना बनकर लहराने लगती है। वैसे उन्होंने न कोई ऋतु छोड़ी है, और न दिन-रात का कोई प्रहर। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में प्रकृति अपने विविध रूपों में सुसज्जित होकर बैठी है।

बुन्देलखण्ड के प्रेम का ही एक और उदाहरण यह है कि तत्सम्बन्धी उपन्यासों में या तो वे बुन्देली बोली वाला पात्र रख देते हैं या जन-साधारण से बात-चीत बुन्देली में ही करवाते हैं। 'गढ़ कुण्डार' का अर्जुन और 'झाँसी की रानी' की झलकारी ऐसे ही पात्र हैं, जो बुन्देली में बोलते हैं। 'विराटा की पद्मिनी' में कुञ्जर से चरवाहा, 'मृगनयनी' में लाखी के गाँव की औरतें भी बुन्देली में बात करती हैं। वैसे वर्माजी ने सर्वत्र बुन्देलखण्ड का ही रंग रखा है। यहाँ तक कि 'टूटे काँटे' का मोहन तोता और रोनी से बना किसान-परिवार फतहपुर सीकरी और भरतपुर के पास रहता है, जो ब्रज के निकट है; पर उसकी बोली पर बुन्देली ही हावी है।

अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में वर्माजी ने जिन पात्रों को उभारा है वे सब साधारण कोटि के हैं। अपने चरित्र-बल और परिश्रम से वे ऊँचे उठते हैं। सामन्तों और नवाबों से सम्बन्ध रखने वाले इन उपन्यासों को और कोई लिखता तो वह उनकी शान-शौकत और उदारता को बढ़ावा दे सकता था। यों वर्माजी ने सामन्तों के प्रति किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया, उन्हें उनके सही रूप में ही सामने रखा है; लेकिन उनकी सहानुभूति ऐसे पात्रों के प्रति है, जो वास्तव में समाज में आदर के पात्र हैं, पर सामाजिक वैषम्य के कारण जिनको आदर नहीं मिलता। 'गढ़ कुण्डार' में न राजा सोहनपाल के बुन्देला-परिवार को महत्त्व मिला है, न हुरमतसिंह के खँगार-परिवार को। वहाँ तो तारा और दिवाकर को ही ऊपर उठाया गया है।

पुण्यपाल पँवार साधारण सरदार और अर्जुन कुम्हार के ऊपर भी लेखक की दृष्टि गई है। 'विराटा की पद्मिनी' में राजा नायकसिंह और नवाब अलीमर्दान के स्थान पर दासी-पुत्र कुँअरसिंह और दाँगी-कन्या कुमुद ऊपर उठे हैं। 'मुसाहिब जू' में सामन्त की उदारता के बावजूद पूरन और रमू महतरों का चित्र गहरा है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई रानी भले ही हुई हो, पर है तो साधारण पेशवा-सेवक मोरो पन्त की कन्या। अहिल्याबाई भी चौंड़ी ग्राम के साधारण गृहस्थ मानिकोजी शिन्दे की पुत्री है। ये दोनों अपने गुणों से रानी बनती हैं। 'मगनयनी' स्वयं ऐसी गूजर-कन्या है, जिसको खाने के भी लाले थे। कचनार दासी है, 'टूटे काँटे' का मोहन एक दरिद्र किसान और नूरबाई एक वेश्या। माधवजी सिन्धिया भी एक सिपाही है और 'भुवन-विकम' की गौरी, अनाथ लड़की है। ये नायिक-नायिकाएँ तो साधारण हैं ही, साथ ही जैसा कि 'गढ़ कुण्डार' के सिलसिले में कहा गया है; इनके साथ उभरने वाले पात्र भी साधारण हैं। 'झाँसी की रानी' में मोती, सुन्दर, मुन्दर, काशी, जुही, छोटी, झलकारी आदि स्त्रियाँ और पूरन, गौस खाँ, भाऊ बख्शी, खुदाबख्श, जवाहरसिंह आदि पुरुष, 'मृगनयनी' के लाखी, अटल, विजय जंगम, 'माधवजी सिंधिया' के राने खाँ, मान्यासिह और गन्ना बेगम, 'भुवन-विक्रम' का कपिंजल, तथा 'अहिल्याबाई' की सिन्दूरी और भोपत सभी पात्र ऐसे हैं जिनमें कुछ हरिजन हैं, कुछ दरिद्र हैं, कुछ वेश्याएँ हैं, कुछ समाज-तिरस्कृत। लेकिन इनको ऊपर रखकर लेखक ने जनवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

इसके साथ-साथ उन्होंने सामान्य जातियों के रहन-सहन, रीति-रिवाज़ आदि पर भी प्रकाश डाला है। बुन्देलखण्ड से सम्बन्धित उपन्यासों में तो त्यौहारों और उत्सवों का चित्र है ही, 'कचनार' और 'अहिल्याबाई' में क्रमशः गोंडों और सोंधिया-मोंधिया जातियों के विवाहादि कार्यों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में मुसलमानों के प्रति कटुता का आभास कुछ लोगों को हो सकता है, लेकिन इसमें वर्माजी का कोई दोष नहीं है। वे इतिहास के साथ अन्याय नहीं कर सकते। जो इस देश में आकर और स्वर्गीय सुख भोगकर भी इसे अपना न समझें, प्रत्युत उसकी प्राचीन संस्कृति को जान-बूझकर नष्ट करना चाहें उनके प्रति घृणा के अतिरिक्त और क्या होगा ? स्वयं शासन की स्थिति में अत्याचार करने वाले और अंग्रेजों के आने पर जागीरों और नौकरियों के लोभ में बिक जाने वालों को कभी क्षमा नहीं किया जा सकता। वैसे 'गढ़ कुण्डार' का इब्नकरीम, 'झाँसी की रानी' के गौस खां, गुलमुहम्मद और वरहामुद्दीन, 'माधवजी सिंधिया' के राने खां, इब्राहीम गार्दी और गन्ना बेगम तथा 'टूटे कांटे' का शुबराती और नूरबाई-जैसे पात्र बराबर उनकी श्रद्धा पाते रहे हैं।

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों में नारियों को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। वे नारी को दुर्गा का अवतार मानते हैं। एक बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा था कि नारी की अशक्तता कभी भी सहन नहीं हो सकती। इसीलिए उनकी नारियाँ वीर, साहसी, संयमी, कष्ट-सहिष्णु और अस्त्र-शस्त्र-संचालन-कुशला हैं। वे अखण्ड सतीत्व की ज्वलन्त शिखाएँ हैं, और दुराचारियों के छक्के छुड़ा देती हैं। कुमुद, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, अहिल्याबाई, कचनार, मृगनयनी, लाखी, गन्ना बेगम, नूरबाई, गौरा किसी को भी ले लीजिए, सब देवीत्व के गुणों से भरपूर हैं और शिकार और युद्ध में पुरुषों को पीछे छोड़ जाती हैं। यही नहीं, नृत्य-संगीत में भी ये कुशला हैं। दूसरे शब्दों में वर्माजी कला और युद्ध को सन्तुलित रूप में लेकर चलते हैं, क्योंकि जीवन की पूर्णता दोनों के समन्वय में है।

अपने अन्य पात्रों में वर्माजी ने सभी प्रकार के नमूने रखे हैं। पुरुष पात्रों में यदि दिवाकर, कुञ्जर, लोचनसिंह, देवीसिंह, मानसिंह माधवजी-जैसे प्रेमी और वीर हैं तो रामदयाल, अलीबहादुर और

पीरअली-जैसे गिरे हुए भी हैं। नारी-पात्रों में देवोपम गुणों वाली पूर्वोल्लिखित नारियों के अतिरिक्त गोमती, लाखी, मन्ना, रोनी-जैसी सामान्य और कलावती (कचनार), कला (मृगनयनी) और छोटी रानी-जैसी पतित नारियाँ भी हैं।

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासों का मूल स्वर वीर रस का है। अतः उनमें युद्धों के अत्यन्त सजीव वर्णन मिलते हैं। 'विराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी' और 'मृगनयनी' में विशेष रूप से अच्छे वर्णन मिलते हैं। उनके सभी उपन्यासों में कहीं-न-कहीं युद्धों का प्रसंग आ ही जाता है। जहाँ ऐसा नहीं होता, वहाँ शिकार के बहाने ही साहसिक वातावरण की सृष्टि कर ली जाती है; क्योंकि वर्माजी के पुरुष और नारी-पात्रों में से अधिकांश को तलवार और बन्दूक चलाना आता है। जब वर्माजी युद्ध का वर्णन करते हैं तब ऐसा लगता है जैसे हम वास्तव में वहाँ खड़े होकर तोपों का चलना, सैनिकों का भिड़ना, गोलों से गढ़ या गढ़ी के किसी हिस्से का गिरना, दुश्मन के सैनिकों का अँधेरे में चुपचाप किले की दीवारों पर चढ़ना आदि देख रहे हों। 'झाँसी की रानी' का गोलाबारी का यह वर्णन देखिये—

"ललिता ने स्वर में गाया—'जननी जनम दियो है तोखों बस आजहि के लानें', गीत की समाप्ति हुई कि गौस ने तो परवाने को पलीता छुआया। 'घनगरज' और उसकी छोटी बहनों ने इतनी ज़ोर की गरज की कि ज़मीन हिल गई। दक्षिणी सिरे की सब बुर्जों से एक-एक क्षण के बाद बाढ़ दगनी शुरू हो गई। तोपों के भरने का उत्कृष्ट प्रबन्ध था। एक तोपखाने की बाढ़ और दूसरे की बाढ़ के दगने में थोड़ा ही अन्तर रहता था। रोज़ के तोपखाने ने जवाब दिया, परन्तु जबाब कमज़ोर था। गौस के तोपखाने ने ऐसी मार मारी कि रोज़ का दम फूल उठा। उसका दक्षिणी दस्ता नष्ट-भ्रष्ट हो गया। कुछ तोपखाने बन्द हो गए, परन्तु एक तोपखाना कोलाहल कर रहा था। समय लगभग दोपहर का था।" (पृष्ठ ३५८)।

युद्ध की इस पृष्ठभूमि और मार-काट के बीच वर्माजी ने अपने उपन्यासों में शृङ्गार-रस की भी बड़ी सुन्दर योजना की है। वस्तुतः शृङ्गार-रस से वर्माजी के उपन्यासों का वीर-रस चमक उठा है। प्रेम के सहारे पात्रों को अपना उत्सर्ग करने में देर नहीं लगती। वर्माजी के उपन्यासों के मुख्य पात्रों में से अधिकांश युद्ध-रत हैं, अतः उन्हें प्रेमलाप के लिए समय नहीं। यदि वे किसी के प्रति आकृष्ट भी होते हैं तो खुलकर प्रेम प्रकट नहीं कर पाते। वे कर्त्तव्य और संयम की वेदी पर अपने प्रेम को निछावर कर देते हैं। 'गढ़ कुण्डार' के अग्निदत्त को छोड़कर किसी ने अपने प्रेम के लिए प्रेयसी के परिवार की हत्या का षड्यन्त्र नहीं किया। 'विराटा की पद्मिनी' में देवीसिंह को गोमती की ओर देखने की फुरसत ही नहीं है, कुञ्जर और कुमुद भी परस्पर नहीं खुल पाते; झाँसी की रानी के लिए तो प्रश्न ही नहीं उठता, और न माधवजी सिंधिया और अहिल्याबाई के लिए। मृगनयनी संयम की साक्षात् प्रतिमा है। उसकी सहेली लाखी भी ऐसी ही है। 'टूटे काँटे' की नूरबाई भक्त है, कचनार में भी पावनता का पुट है; 'भुवन-विक्रम' की गौरी भी शालीनता से दबी है। लेकिन रामदयाल-गोमती (विराटा की पद्मिनी), लल्ली-सुभद्रा (मुसाहिब जू), मानसिंह-कलावती (कचनार), निहालसिंह-कला (मृगनयनी), तोता-रोनी (टूटे काँटे) और दीर्घबाहु-हिमानी (भुवन-विक्रम) आदि का प्रेम साधारण कोटि का है। कुछ का वासना-तृप्ति की कोटि तक का भी है, जिससे सामान्य पाठक के लिए युद्ध की शुष्कता कम होती है। 'झाँसी की रानी' के खुदाबख्श-मोती, जवाहर-मुन्दर, गौसखाँ-सुन्दर आदि युग्म अपने मूक प्रेम के बल से ही वीर-गति पा जाते हैं। यों नारायण शास्त्री और छोटी रानी का भी प्रसंग कम मनोरंजक नहीं है।

ऐतिहासिक उपन्यासों की सफलता के लिए जिस अद्भुत तत्त्व की अतीव आवश्यकता है उससे कौतूहल-वृत्ति की तुष्टि होने से उपन्यासों का आकर्षण बना रहता है। वर्माजी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों

में इस तत्त्व का भी सफलता से समावेश किया है। भूत-प्रेत, साधू-संन्यासी, वेश बदले हुए पात्र इस अद्‌भुत-तत्त्व की सृष्टि करते हैं। 'गढ़ कुण्डार' के स्वामीजी और 'टूटे काँटे' के त्रिशूलानन्द ऐसे ही संन्यासी हैं। 'कचनार' में उसके नायक दिलीपसिंह की स्मरण-शक्ति का पहली चोट से लुप्त होना और दूसरी से वापस आना और कचनार का 'कंचनपुरी' और दिलीपसिंह का 'सुमन्तपुरी' के रूप में अचलपुरी के अखाड़े में बिना पहचाने बने रहना, 'विराटा की पद्मिनी' में कुमुद का एक साथ दैवी और मानवी-रूप में रहना और लोगों का ऐसा विश्वास होना, 'टूटे काँटे' में मोहन के गाँव वालों का उसे भूत समझना, 'अहिल्याबाई' में सिन्दूरी द्वारा आँत्रीजी की नवदुर्गा पर अपनी जीभ काटकर चढ़ाना, 'भुवन-विक्रम' में कपिंजल और गौरी का दास-दासी के रूप में नीलमणि फणिश के यहाँ रहना आदि अद्‌भुत बातों का समावेश वर्माजी ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है। इसके अतिरिक्त गोंडों, सोंधियों आदि की प्रथाओं ने भी कौतूहल को बनाए रखा है।

इस प्रकार वर्माजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास-लेखक हैं। उनके उपन्यासों में यत्र-तत्र वर्णन लम्बे हो गए हैं, विशेषकर 'गढ़ कुण्डार' में। पर पहला उपन्यास होने के कारण हम उसे दोष नहीं मान सकते। 'झाँसी की रानी', 'अहिल्याबाई', 'माधवजी सिंधिया' आदि में इतिहास प्रमुख हो गया है, अतः उनमें 'विराटा की पद्मिनी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'टूटे काँटे'—जैसी सरसता नहीं है। वर्माजी के ये सभी उपन्यास ऐसे काल के हैं जिसको वे न तो समग्र रूप से आत्मसात् किये बिना रह सकते थे और न सरसता के लिए मनचाहा उलट-फेर करके इतिहास की हत्या का कलंक अपने ऊपर ले सकते थे। कारण, यह काल बहुत पहले का नहीं है। अहिल्याबाई का तो जीवन ही तिरेसठ साल के बाद का आया है, अतः उसके तो कार्य-कलाप ही दिये जा सकते थे।

३. सामाजिक उपन्यास

वर्माजी के सामाजिक उपन्यास हैं—'लगन', 'संगम', 'प्रत्यागत', 'प्रेम-की-भेंट', 'कुण्डली चक्र', 'कभी-न-कभी', 'अचल मेरा कोई', 'सोना' और 'अमर बेल'। इन उपन्यासों में से पहले तीन सन् '२७ के हैं, जब कि 'गढ़ कुण्डार' की रचना हुई थी; और चौथे तथा पाँचवें का रचना-काल 'विराटा की पद्मिनी' के आस-पास का है—सन् '२८ का। यों इन पाँचों को 'गढ़ कुण्डार' और 'विराटा की पद्मिनी'-कालीन उपन्यास कह सकते हैं। इनमें वही बुन्देलखण्ड के प्रति प्रेम है, जो दोनों ऐतिहासिक उपन्यासों में है। प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से तो कोई अन्तर है ही नहीं। हाँ, कथा अवश्य आधुनिक जीवन से ली गई है। **'लगन'** में बुन्देलखण्ड के दो भरे-पूरे घर के किसानों की आन-बान का चित्र है और है बुन्देले युवक के प्रेम का आदर्श। **'संगम'** और **'प्रत्यागत'** का सम्बन्ध ऊँच-नीच की भावना से है। विशेष रूप से ब्राह्मण की दयनीय दशा का चित्र इसमें खींचा गया है। पहले में गाँव के ब्राह्मण द्वारा अन्तर्जातीय विवाह कर लेने से उत्पन्न परिस्थिति के प्रकाश में बुन्देलखण्ड के जीवन का अंकन है और दूसरे में धार्मिक अन्धविश्वासों का विरोध करने वाले युवक के खिलाफत-आन्दोलन में बरबस मुसलमान बनाये जाने से उत्पन्न परिस्थिति को आधार बनाया गया है। **'प्रेम की भेंट'** प्रेम के त्रिकोण की छोटी सी कहानी है। **'कुण्डली चक्र'** की पृष्ठभूमि में किसान हैं और जमींदार-वर्ग का उनसे संघर्ष दिखाया है। **'कभी-न-कभी'** मजदूरों के जीवन से सम्बन्ध रखता है। **'अचल मेरा कोई'** में उच्च-

मध्यवर्ग और उच्चवर्ग की झलक है, प्रसंगान्तर से किसान यहाँ भी हैं। राजनीतिक आन्दोलन का स्पर्श भी है। इसका भी आधार प्रेम का त्रिकोण ही है, पर वदले हुए रूप में। **'सोना'** और **'अमर बेल'** में श्रम की प्रतिष्ठा का समर्थन किया गया है। 'सोना' में उच्चवर्ग और निम्नवर्ग दोनों हैं, तो 'अमर बेल' में भी। 'अमर बेल' में श्रम-दान और सहयोग-समिति द्वारा गाँव को आदर्श बनाने का सुझाव है। यों वर्माजी के सामाजिक उपन्यासों में समाज के सभी वर्गों की झाँकी मिलती है। 'कभी-न-कभी' के बाद के उपन्यासों में किसान-मजदूर-संघर्ष और राजनीतिक आन्दोलनों की छाया गहरी होती गई है; जो स्वाभाविक है।

वर्माजी का पहला सामाजिक उपन्यास **'लगन'** है। यह बड़ा ही सुगठित और सरस उपन्यास है। इसमें न तो कथा का पट लम्बा है, और न पात्रों की ही संख्या अधिक। कथा का सम्बन्ध दो खाते-पीते बुन्देले किसानों से है। इन दोनों के पास तीन-तीन, चार-चार सौ भैंसें हैं और सब एक-दूसरे को लखपती समझते हैं। राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त की जन्म-भूमि चिरगाँव के पास थोड़ी दूर पर बेतवा के किनारे पर एक वजटा गाँव है, जहाँ शिवू माते और उसका पुत्र देवसिंह रहते हैं। शिवू माते चाहते हैं कि देवसिंह के विवाह में पर्याप्त दहेज मिले। बेतवा के दूसरे तट पर बरौल गाँव का बादल माते अपनी एक-मात्र लड़की रामा के बड़ी होने पर शादी तय कर देता है शिवू माते के यहाँ ; और वचन देता है दहेज में सौ भैंसें देने का। लेकिन है लोभी। भाँवरें पड़ने पर मुकर जाता है। शिवू और बादल में इस पर गाली-गलौज होती है। बारात लौट आती है।

बादल का बड़ा लड़का बताल इस अपमान का बदला लेने के लिए रामा का पुनर्विवाह एक पड़ोस के गाँव पहाड़ी के पन्नालाल से कर देना चाहता है। पन्नालाल छैला है, उसकी दो पत्नियाँ मर चुकी हैं। उनके यहाँ उसका आना-जाना शुरू हो जाता है। उधर शिवू

अपने लड़के को भी शीघ्र सुन्दर-सी बहू लाने का आश्वासन देता है। देवसिंह उदास रहता है। वह पिता से कह नहीं पाता कि वह रामा को ही चाहता है। वह बरौल जाता है। नदी के घाट के पास पन्नालाल को वह देखता है। वैसे ही नहीं, अपनी सखी सुभद्रा के साथ स्नानार्थ आई हुई रामा से मजाक करते हुए। उसका माथा ठनकता है। आशंका होती है कि रामा के पन्नालाल के हाथ पड़ जाने की। वह निश्चय करता है कि मैं रामा से अवश्य मिलूँगा। वर्षा के दिनों में एक बार खिड़की से रामा उसे पहचानकर मिलने का अवसर देती है। धोती के सहारे पीछे से अटारी में चढ़कर रामा से मिलने का क्रम चलता है। लेकिन एक दिन पन्नालाल भी वहीं होता है। वह पौर से अटारी में जाता है। रात को चुपके से रामा को अपना बनाने, और उधर सदा की भाँति आता है देवसिंह। रामा उस दिन अपनी माँ के पास सोती है, क्योंकि अटारी में पन्नालाल को सुलाने की बात थी, जो ज़िद करके पौर में सोया था। पन्नालाल और देवसिंह में गुत्थम गुत्था होती है। भेद खुलता है। पन्नालाल को अपना-सा मुँह लेकर जाना पड़ता है। देवसिंह घायल होकर बरौल में ही रहता है और रामा बेतवा तैरकर पहुँच जाती है वजटा। अन्त में शिवू माते सौ भैंसं पुण्य करके हीरे-सी बहू को घर में रख लेते हैं और बरौल जाकर देवसिंह से कहते हैं कि इस दशा में मैं भी यही करता। बादल दहेज की भैंसें दे देता है। दोनों में मेल हो जाता है।

दो गाँवों की सीमा के भीतर इसकी कथा चलती है। पहाड़ी, जो तीसरा गाँव है उसका पन्नालाल भी बरौल में ही अपना रूप प्रकट करता है। कथा का काल भी लम्बा नहीं है। देवसिंह का अन्तर्द्वन्द्व और साहसिक वृत्ति दोनों ऐसी खूबी से अंकित हुए हैं कि तथाकथित मनोविश्लेषण-वेत्ता भी चकित रह जायँ। मूक भाव से रामा की लगन में लगा वह उसे प्राप्त करके छोडता है। उसकी भुजाएँ पन्नालाल के तनिक-सा कड़ा बोलने पर फड़क जाती हैं। चढ़ी हुई बेतबा

को पार करना उसके लिए बाएँ हाथ का खेल है। उधर बादल का बेताली भी बड़ा स्वाभिमानी है। जनवासे में शिवू की गालियाँ खाकर वह रामा को वजटा नहीं भेजना चाहता; और कहीं-न-कहीं उसका पुर्नविवाह कर देना चाहता है। बुन्देलखण्ड के पानी का परिचय शिवू और बादल दोनों देते हैं—अपनी-अपनी हठ और अकड़ से। पन्नालाल की कामुकता का पुरस्कार उसे उचित रूप में मिल जाता है। रामा की वीरता इसमें है कि वह अकेली वजटा पहुँच जाती है। जो एक बार पति हो चुका है, उसके अभाव में वह हँसोड़ होने पर भी गम्भीर हो जाती है, यह सुभद्रा से हुई उसकी बातचीत से स्पष्ट होता है। उपन्यास में बेतवा का वर्णन अत्यन्त सुन्दर है। विशेष रूप से वर्षा ऋतु में उसकी नाना प्रकार की छटा दर्शनीय है। गंगा-दशहरा के दिन अपनी कामना-पूर्ति के लिए—देवसिंह को पाने के लिए—रामा पीपल की खोह में एक पिंडी उठाकर रखती है। यह बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक परम्परा का द्योतक है। नारी-चरित्र का विकास सखियों की बातचीत से होता है। प्रेम उपन्यास की मूल भावना है, अतः प्रकृति पृष्ठभूमि के रूप मे है और उसका सुन्दर रूप पाठक के सामने आता है। यह आदर्शवादी उपन्यास है, जो युवकों को कर्त्तव्य-निष्ठ होकर प्रेम करने की प्रेरणा देता है।

'संगम' दूसरा सामाजिक उपन्यास है। इसकी घटनाओं का ताना-बाना झाँसी के आस-पास ही बुना जाता है। झाँसी, ढिमलौनी और बरुआ सागर तीन स्थानों से इसकी कथा वस्तु का सम्बन्ध है। मुख्य स्थान ढिमलौनी है। झाँसी का सम्बन्ध तो दूर-दूर तक के गाँवों से है; अतः उसमें भी पर्याप्त समय तक कथा की धारा बहती है, पर ढिमलौनी से कम। ढिमलौनी गाँव में पं० सुखलाल एक सम्पन्न ब्राह्मण हैं, जो लेन-देन का काम करते हैं। उनके परिवार में एक पुत्र, पुत्र-वधू, विधवा पुत्री राजा बेटी और गंगा नामक एक अहीर विधवा है, जो घर का काम-काज करती है। जवानी में एक अहीरन

को पण्डितजी ने रख लिया था, जिससे रामचरण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पण्डितजी ने उसे अलग ही रखा था, फिर भी था तो वह उन्हीं का। माँ उसकी मर चुकी थी। पण्डितजी का पुत्र अंग्रेजी पढ़ा-लिखा था और नौकर था। रामचरण साधारण-से स्कूल में शिक्षक था। पण्डित सुखलाल धनिक होने के कारण भले ही लोगों पर प्रभाव डालते हों, वैसे वे जाति-बहिष्कृत से ही थे। ढिमलौनी में ही सुखलाल का दूर का कुटुम्बी-भाई भिखारीलाल है, जिसके सम्पत-लाल नामक लड़का है। आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण उसका विवाह नहीं हो सका है। भिखारीलाल के सौभाग्य से बरुआ सागर के एक पैसे वाले नाई धनीराम के यहाँ पालित-पोषित ब्राह्मण-कन्या का पता चलता है और बेचारे स्वयं सम्पत के विवाह का प्रस्ताव लेकर जाते हैं। लड़की भी मिल रही है और पैसा भी—आम-के-आम गुठलियों के दाम।

पण्डित सुखलाल भी बारात में जाते हैं और नन्दराम नाम का अहीर भी। नन्दराम और बारात के एक आदमी में मज़ाक होता है, और वह भी इतना कि मार-पीट हो जाती है—इस सीमा तक कि बेचारे नन्दराम की सिकाई होती है। सुखलाल बीच-बचाव करवाते हैं। धनीराम के घर तलवार-धारी दो डाकू भी आते हैं, जिनमें एक प्रसिद्धि-प्राप्त लालमन है। धनीराम की ब्राह्मण-कन्या इसी लालमन की भानजी है। लालमन सुखलाल का दोस्त है। नन्दराम को वह बारात में जाते समय रास्ते में मिला था, और उसने अपना नाम बताया था रामचन्द्र अड़जरिया।

नन्दराम सुखलाल का आसामी है। वह मुकदमा दायर करने के लिए रुपया चाहता है। सुखलाल समझाते हैं। उसे भय है, लालमन के साथ अपने सम्बन्ध होने के रहस्योद्घाटन का। किन्तु नन्दराम नहीं मानता। इसके बाद दोनों ओर से ही मुकदमे दायर होते हैं। और उपन्यास में यही प्रमुख हो जाता है। नन्दराम रुपये के लिए फिर

आता है और उसमें सफलता न मिलने पर झाँसी जाते हुए सुखलाल को घायल कर देता है। लालमन घायल सुखलाल का उपचार करता है। इधर धनीराम और भिखारी में रुपये के पीछे खटपट होती है और जानकी तंग की जाती है। पति चम्पतलाल चर्सी भाई हैं। प्लेग फैलने पर जानकी बरुआ सागर चली जाती है और चम्पत सुनसान झाँसी नगर में दम-सभा (चर्स पीने वालों की मण्डली) के सदस्यों के साथ चोरी करता है। सुखलाल की मृत्यु का समाचार फैलने पर भिखारीलाल उसकी सम्पत्ति हड़पने के लिये फिर अदालत में जाता है। इसके बाद रामचरण द्वारा सुखलाल की लड़की की सहायता, चम्पत का पंजाबी के हाथ बिकी हुई औरत के वेश में पकड़ा जाना, लालमन का सुखलाल के अच्छे होने पर उसे घर पहुँचाने आते समय रामचरण द्वारा मारा जाना, सुखलाल का संन्यासी होना और गंगा तथा रामचरण का विवाह होना एवं चम्पत का सुधार होकर जानकी के साथ सुखी जीवन बिताने की तैयारी करना आदि घटनाएँ हैं।

इस उपन्यास में कई सूत्र काम कर रहे हैं। एक ओर तो सुखलाल की कथा है, जिन्होंने जवानी में अहीरन को रखा, पर उसके हाथ का खाया-पिया नहीं। उसकी मृत्यु के बाद उसके लड़के को भी अलग रखा। यही नहीं, जाति वालों के कोप के कारण उसे अलग रहने के लिए भी कह दिया। यों एक ओर उदारता, तो दूसरी ओर कायरता उनके चरित्र की विशेषता है। लालमन से दोस्ती है इसलिए जानकी के विवाह में जाते हैं और झगड़ा बचाने की कोशिश करते हैं। शान्त स्वभाव के हैं और अन्त में त्याग करके भिखारीलाल और नन्दराम के प्रति द्वेष को भूल जाते हैं। भिखारीलाल लोभी ब्राह्मण है, और सम्पत कुसंग से बिगड़ा हुआ। नन्दराम बड़ा जिद्दी और प्रतिकार लेने वाला है। मिट जाता है, पर झुकता नहीं। अन्त में आत्म-समर्पण करके अपनी दृढ़ता दिखाता है। धनीराम नाई होते हुए भी बड़ा सजीव पात्र है। जानकी के लिए वह सर्वस्व न्योछावर कर देता है। लालमन ब्राह्मणों और स्त्रियों को नहीं छेड़ता। पर है तो डाकू ही।

उसके जेल तोड़कर भागने में साहस की झलक है। रामचरण और केशव दो पात्र आदर्श हैं। रामचरण तो वर्माजी के आदर्शों का मूर्त्त रूप है। प्लेग में सेवा, कष्ट में सुखलाल की लड़की का साथ देना, और उसके लिए जेल जाना एव कष्ट-सहिष्णु जीवन बिताना उसे ऊँचा उठाते हैं। केशव रामचरण से ही मिलता-जुलता त्यागी पात्र है, जो सुखलाल का वारिस नहीं होता ; और भिखारीलाल का दूर का सम्बन्धी होने पर भी पाप-कार्य में साथ नहीं देता। स्त्री-पात्रों में गंगा सर्वश्रेष्ठ है, जो जान पर खेलकर रामचरण को बचाती है और दुःख में राजा बेटी को अपने श्रम से जीवित रखती है। जानकी भी आदर्श नारी है। वह सम्पत के सब दोषों को क्षमा कर देती है। उपन्यास का गठन ढीला है, एक-साथ प्लेग का वर्णन, मुकदमों का लम्बा-चौड़ा खाता, जाति-सभाओं का ब्राह्मण और कायस्थ दोनों का—खोखलापन, न्यायालय और पुलिस की धाँधलेबाजी, पंजाबियों द्वारा स्त्रियों का अवैध व्यापार आदि कितनी ही बातों का समावेश करने से कथा संगठित नहीं रहने पाई। कहानी की गति शिथिल भी इसीलिए है। बुन्देलखण्ड के रीति-रिवाज और प्रकृति के चित्रों के साथ उपन्यास में जाति-पाँति का खोखलापन और हिन्दू-समाज में नारी की दुर्गति ये दो तत्त्व ऐसे हैं जिन पर उपन्यास खड़ा है। ब्राह्मणों की मूर्खता और संकीर्णता पर विशेष रूप से व्यंग है। यों कायस्थों को भी इसमें नहीं छोड़ा है। गाँव की स्त्रियों की महत्ता प्रतिपादित करना भी उपन्यास का प्रमुख ध्येय है।

तीसरा सामाजिक उपन्यास **'प्रत्यागत'** है। इस उपन्यास का सम्बन्ध भी ब्राह्मणवर्ग से है। कथा का घटना-केन्द्र बाँदा है। पंडित टीकाराम कर्मकाण्डी व्यक्ति हैं—धर्म और पूजापाठ में रत रहने वाले। उनका लड़का मंगलदास नये जमाने का है—चंचल, स्वाभिमानी और खरी कहने वाला। खिलाफत-आन्दोलन में काम करता है। एक दिन वह नवलबिहारी शर्मा नामक कीर्तन-प्रेमी का मजाक़ उड़ाने पर

बाप से पिटकर बम्बई चल देता है। बम्बई में रहमतुल्ला नामक मुसलमान से उसकी मित्रता हो जाती है। आन्दोलन चल ही रहा है। एक दिन मसजिद में रहमतुल्ला के साथ पकड़े जाने पर वह मुसलमान बना लिया जाता है। रहमतुल्ला गिरफ्तार होता है और मंगल उसके बीवी-बच्चों को लेकर मालाबार में नेचलगट्टी में पहुँचता है, जो रहमतुल्ला का गाँव है। वहाँ मोपलों का विद्रोह होता है और अंग्रेजों के साथ-साथ हिन्दुओं का भी सफाया किया जाता है। मंगल भी मारा जाता, पर रहमतुल्ला की बीवी उसे बचा लेती है। वहाँ से पुलिस द्वारा बाँदा भेजा जाता है। बाँदा में आने पर घर में तूफान खडा होता है। बिना प्रायश्चित्त किये घर में कैसे घुसे। माँ चाहती है बेटे को हृदय से लगाऊँ, पत्नी विकल है, पर प्रायश्चित्त बिना कुछ नहीं। नवलबिहारी शर्मा बदला लेते हैं और बाधक बनते हैं।

गाँव में दो दल हो जाते हैं—एक नवलबिहारी शर्मा का, दूसरा टीकाराम का। नवलबिहारी के साथ बहुत लोग हैं। टीकाराम के साथ केवल पीताराम अहीर हैं, जो हेतसिंह ठाकुर से विरोध के कारण अपनी अलग रामलीला करना चाहते हैं। बाबूराम ब्राह्मण-युवक भी उनके साथ है, जो पीताराम की रामलीला का लक्ष्मण है। लेकिन प्रायश्चित्त की दावत के दिन केवल बाबूराम ही ब्राह्मणों में आता है। इसमें मंगल के नौकर हरीराम की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। पीताराम को जब रामलीला असफल होती दीखती है तो वह हथियार डालकर खाने आता है। इस स्थिति में साथ देते हैं गाँव के ५०-६० बच्चे, जो मंगलदास के यहाँ से माँगकर भोजन करते हैं।

रामसहाय नाम के एक वैद्य हैं, जो पहले मंगल के प्रायश्चित्त में साथ देने का वचन देते हैं, और फिर मुकर जाते हैं। उसके बाद लडकों द्वारा पकड़े जाकर वे प्रायश्चित्त के बाद नवलकिशोरजी के मन्दिर में देव-दर्शन कराने का वचन देते हैं। नवलबिहारी इनको फोड़ने की कोशिश करते हैं पर लड़कों से कुछ वश नहीं चल पाता।

अन्त में मन्दिर में मूर्ति को उल्टा पाकर उनको बड़ा आश्चर्य होता है। बेचारों को पंचायत में स्वयं मूर्ति को उल्टा करने का अपराधी बनाने के कारण मूर्ति की पुनर्प्रतिष्ठा कराने का उत्तरदायित्व सहन करना पड़ता है।

कथावस्तु सरल और स्पष्ट है। इसमें ब्राह्मणों के पतन का दिग्दर्शन है। जो ब्राह्मण धर्म की व्यवस्था करने वाले माने जाते हैं वे ही अन्ध-विश्वास और जड़ता में फँसे हैं। ज्योतिषी, वैष्णव और रामायण-पाठी टीकाराम में अपने पुत्र को बिना प्रायश्चित्त के घर में रखने की शक्ति नहीं, इसलिए अलग रहते हैं। नवलबिहारी-जैसे मूर्ख की खुशामद करना उन्हें शोभा नहीं देता। फिर मंगल मुसलमान जान-बूझकर नहीं हुआ था, उसे तो जबरदस्ती मुसलमान बनाया गया था। वे न केवल मंगल वरन् पूरे घर को प्रायश्चित्त के लिए तैयार करते हैं; क्योंकि ममतावश माँ ने मंगल को घर में बुला लिया था। नवलकिशोर और रामसहाय ऐसे हैं, जो समाज में प्रतिष्ठा चाहते हैं—भले ही वे इसके योग्य हों या न हों ? रामसहाय तो बहुत ही चालाक है। सबको खुश रखना और अपना काम बनाना, यह उसके जीवन का मूल मन्त्र है। नवलकिशोर कट्टरता के साथ बदला लेने वाले हैं, जिसका कुफल उनको भोगना पड़ता है। उनके साथी लखपत वैश्य का कार्य वही है जो बनियों का होता है शक्तिशाली के साथ मिलकर अपना घर भरना। हेतसिंह ठाकुर और पीताराम अहीर में परस्पर भले ही ऊँच-नीच के मामले में झगड़ा हो, पर वे दोनों हैं समझदार। हेतसिंह का चरित्र तो पीताराम से भी ऊँचा है, क्योंकि वह टीकाराम का साथ बराबर देता है। मंगल कथा का प्रमुख पात्र है, जो खिलाफत-आन्दोलन में काम करता है, हिन्दू-मुस्लिम-एकता का हामी है, रहमतुल्ला के बीवी-बच्चों की रक्षा करता है और असत्य आचरण से दूर रहता है। वह चाहता तो झूठ भी बोल सकता था कि मुसलमान नहीं हुआ; पर पिता के मन को ठेस न लगे इसलिए सच

बोलकर तिरस्कार पाता है। बाबूराम ब्राह्मण युवक का चरित्र खूब उभरा है। उसने ही प्रायश्चित्त सफल बनाया। सबसे आकर्षक और प्यारा है हरीराम नौकर, जो मगल के घर से भागने पर मगल की पत्नी सोमवती की चिट्ठी स्टेशन पर देने जाता है तो अपने पास के रुपये भी दे देता है। लौटने पर भी वह अपनी जाति की परवाह न करके उसका साथ देता है और जाति वालों को शराब पिलाकर जाति में शामिल होना पसन्द नहीं करता। स्त्री-पात्रों में सोमवती, रहमतुल्ला की पत्नी और मंगल की माँ में माँ का ही चरित्र उठा हुआ है। सोमवती जन्म-जात संस्कारों से बँधी है।

वर्माजी ने ब्राह्मणों तथा अन्य वर्गों की जाति-पाँति-सम्बन्धी भावना को बुरा बताया है। हिन्दुओं के नाश का कारण यही छूआछूत, ऊँच-नीच का रोग और फूट है। मुसलमानों की मनोवृति पर भी कड़ा व्यंग है। बिना मुसलमान हुए उन्हें कोई अपना नहीं लगता। हाँ, रहमतुल्ला के घर में एक बुड्ढा यह कहकर मंगल को बचाता है कि मुसलमान के घर में वध नहीं हो सकता। नई पीढ़ी ही इस समस्या का हल करेगी, जो रामसहाय-जैसे मौकापरस्त, नवलबिहारी-जैसे प्रगति-विरोधी और लखपत-जैसे पूँजीपतियों के होश ठिकाने लायगी।

'प्रेम की भेंट' वर्माजी का चौथा सामाजिक उपन्यास है। यह 'लगन' उपन्यास से भी श्रेष्ठ और सुगठित है। वर्माजी ने इसमें कला की पराकाष्ठा कर दी है। छोटा-सा होते हुए भी इतना सुन्दर मनोविश्लेषण और उच्चकोटि के प्रेम का आदर्श इस उपन्यास में है कि देखते ही बनता है। इसकी कथा अत्यन्त सरल है। झाँसी जिले का अकाल-पीड़ित धीरज नामक एक युवक अपने दूर के सम्बन्धी के यहाँ तालबेहट जाता है। हिन्दी की ऊँची परीक्षा पास है, और काव्य-उपन्यास का प्रेमी। खेती में रुचि रखने के कारण उसने नौकरी नहीं की। अब दुःख से अपने रिश्तेदार के यहाँ पहुँचता है। तालबेहट का वह सम्बन्धी खाता-पीता किसान है। नाम कम्मोद है। घर में इकलौती लड़की

सरस्वती, और एक दूर के रिश्तेदार की अनाथ विधवा बहू उजियारी है, जिसे सरस्वती भौजी कहती है। धीरज भावुक और स्वाभिमानी युवक है। कम्मोद की दया पर नहीं रहना चाहता, पर जब वह ३०-४० बीघे जमीन खेती के लिए अलग से देना चाहता है और बीज तथा बैल भी; तो रह जाता है। तभी कम्मोद की बहन की लड़की की सुसराल का एक दूसरा युवक भी तालबेहट में आता है। नाम है नन्दन। नन्दन धीरज की अपेक्षा सुकुमार है और काम भी कम कर पाता है। इस परिवार की विधवा भौजी उजियारी का आकर्षण धीरज की ओर होता है और धीरज का मन मुग्ध हो गया है सरस्वती पर। उधर नन्दन भी सरस्वती को चाहता है और उसे आशा है कि उसका सम्बन्ध सरस्वती से हो जायगा। कुछ दिन बाद धीरज किसी काम से झाँसी जाता है और सरस्वती के लिए एक साड़ी लाता है, जिसके एक कोने पर 'प्रेम की भेंट' समर्पण के रूप में कढ़ा हुआ है। सरस्वती उसे अपने पास रख लेती है।

उजियारी खली है—विधवा होने के कारण वह सरस्वती धीरज को चाहते हुए भी कभी प्रकट नहीं होती। परिणाम यह है कि धीरज का प्रतिदान-रहित प्रेम-भाव उसकी ओर भी बढ़ता जाता है। वह कम्मोद के खेत को सँभालता है। एक बार जब सरस्वती खेत में काम करते करते बेहोश हो जाती है तो वह उसे उठाकर घर लाता है। कुछ दिन बाद घर के लोगों के जागने के पहले ही पानी भरने तथा ढोरों की सार की सफाई करने लगता है। इतने पर भी सरस्वती सुखी नहीं होती तो अलग मकान लेकर रहने की सोचता है। तभी उजियारी ईर्ष्यावश कम्मोद से सरस्वती और नन्दन का विवाह करने की बात कहती है और धीरज अब सरस्वती की छाया भी नहीं छू पाता। सरस्वती के एक फोड़ा निकला तो धीरज को उसकी परिचर्या भी नहीं करने दी गई। उजियारी धीरज से प्रेम की भीख माँगती है और न मिलने पर विष खाकर मरने की बात कहती है। एक दिन विष मिला-

कर खीर बनाती है। उद्देश्य था सरस्वती को खिलाना, पर उसे दिन भर का भूखा धीरज खा जाता है। बाहर जाने से पहले धीरज सजल नयन सरस्वती से बात कर रहा है कि कम्मोद देख लेता है। उजियारी कान भर ही चुकी थी। वह धीरज को बुरा-भला कहने लगता है। धीरज की मृत्यु हो जाती है और सरस्वती सन्निपातग्रस्त हो जाती है। हाथ में रह जाता है धीरज द्वारा लाई हुई साड़ी का 'प्रेम की भेंट' वाला टुकड़ा। शेष साड़ी बलात् छीनकर जला दी गई थी। धीरज विष की लहर में या मृत्यु के निकट होने पर, और सरस्वती सन्निपात की दशा में एक दूसरे के प्रति प्रेम की भावना को प्रकट कर देते हैं। धीरज की मृत्यु से उपन्यास समाप्त हो जाता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है धीरज का चरित्र बड़ा ही सुन्दर है। वह भावुक, कवि-हृदय और परिश्रमी है। प्रेम को गहराई से लेता है। उजियारी के खुलकर प्रेम प्रकट करने पर वह उससे बुरा-भला न कह कर चतुराई से घर छोड़ने की बात कहता है। नन्दन का चरित्र नगण्य है। सरस्वती भी उतनी ही गहरी है। धीरज की पुस्तकों को सँभालकर रखना, बीमारी में चुपचाप रात को पानी रख आना, अधिक काम करने से उसको रोकना आदि का कारण धीरज के प्रति आकर्षण ही है। उजियारी का चरित्र भी बुरा नहीं कहा जा सकता। वह प्रेम की भूखी है। सारी कथा छोटे-छोटे संवादों में विकसित होती है। बात-चीत से ही पात्रों का चरित्र स्पष्ट होता है। धीरज के मन का मन्थन बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। इससे पता चलता है कि वर्माजी का मानव-मन का ज्ञान कितना गहरा है। उपन्यास करुणा और विषाद से पूर्ण है। दुःखान्त होने से मन भारी हो उठता है। धीरज द्वारा औपन्यासिक प्रेम की निन्दा कराकर वर्माजी ने त्यागमय उज्ज्वल प्रेम के आदर्श की ओर अपनी अभिरुचि दिखाई है।

'कुण्डली चक्र' वर्माजी का पाँचवाँ सामाजिक उपन्यास है। अपने पहले चारों उपन्यासों में वर्माजी या तो प्रेम को लेकर चले हैं

या जाति-पाँति की समस्या को लेकर। उनमें वर्ग-संघर्ष का अभाव है। 'लगन' और 'प्रेम की भेंट' आदर्श प्रेम की कहानियाँ कहते हैं। 'संगम' और 'प्रत्यागत' में ब्राह्मणों के अतिरिक्त अहीर और क्षत्रिय तथा कायस्थ जाति की कमजोरियाँ हैं। किसानों और मजदूरों के जीवन का तटस्थ चित्रण भी हुआ है। लेकिन जमींदार और उसके कारिन्दे तथा खेतिहर-किसान के पारस्परिक सम्बन्धों पर इन उपन्यासों में कुछ नहीं मिलता। 'कुण्डली चक्र' से वर्माजी में यह वर्ग-संघर्ष आरम्भ होता है, अतः इसका उनके सामाजिक उपन्यासों में ऐतिहासिक महत्त्व है। यह उपन्यास उच्च, मध्य और निम्न तीनों वर्गों से सम्बन्धित है। कथा के घटना-चक्र का प्रारम्भ नया गाँव छावनी के सम्पन्न युवक ललितसेन के परिवार से होता है। मकानों, दुकानों और बंगलों के किराये की आय से घर-गृहस्थी का खर्च मजे में चलता है, इसलिए दर्शन-शास्त्र के मनन करने और अपने मनन के गूढ़ फलों को सामने रखने के लिए उसके पास यथेष्ट अवकाश था। उसकी एक बहन है रत्नकुमारी, जो प्यार में 'रतन' कहकर पुकारी जाती है।

इस परिवार में ललितपुर का बी० ए० पास युवक अजितकुमार रतन को पढ़ाने के लिए आता है और कथा में मध्यवर्ग का अंश जुड़ता है। अजित रतन को संगीत भी सिखाता है। संगीत में हारमोनियम का ही महत्त्व है। अजितकुमार नयागाँव छावनी के ही पास विलहरी में ठहरता है। ललित को यूरोपीय दर्शन का शौक है और डार्विन के विकासवाद में उसका विश्वास है। घोर यथार्थवादी होने से वह बराबर अपनी उधेड़बुन में लगा रहता है और उसकी बहन ही उसकी बातों को श्रद्धालु होकर सुनती है। वैसे अजित से भी वह कभी-कभी बहस कर लेता है। मऊरानीपुर के जमींदार शिवलाल और मऊरानीपुर के पास के गाँव लहचूरा के निवासी उनके कारिन्दे जब कथा-सूत्र से आकर मिलते हैं तो नगर के पूँजीपति ललित के

साथ गाँव के जमींदार-वर्ग का भी प्रतिनिधित्व हो जाता है। लहचूरा के ही निवासी पैलू और बुद्धा दो कुर्मी हैं, जो भुजबल का खेत जोतते हैं। इनका शोषण और उत्पीड़न निम्न वर्ग की कमी पूरी कर देता है। यों नगर और गाँव के उच्च, मध्य और निम्न-वर्ग 'कुण्डली चक्र' में एक साथ आ जाते हैं।

कथा का मूल प्रेरक तत्व भुजबल है। वह बड़ा काइयाँ और चलता-पुर्जा है। उसकी पत्नी मर चुकी है। एक साली है, जो मऊ-सहानियाँ में रहती है। सास को छोड़कर और कोई नहीं है। साली का नाम पूना है। उस पर भुजबल की दृष्टि है। जिस शिवलाल का मुख्तार भुजबल है वह कई गाँव का जमींदार होते हुए भी कर्जदार है। उसे दस हजार रुपये की जरूरत है। भुजबल पहले तो अजित-कुमार द्वारा ललित से रुपया ऐंठना चाहता है और जब सफल नहीं होता तो स्वयं खुशामद और पूना के साथ विवाह का प्रस्ताव लेकर ललित को उल्लू बना लेता है। यही नहीं, रतन से उसकी शादी भी हो जाती है। अजित एक दिन रतन का चित्र खीचने का आग्रह करते हुए ललित द्वारा सन्देहास्पद दृष्टि से देखा जाने के कारण 'प्रेम की भेंट' के धीरज की तरह अपमानित होकर निकाला जा चुका था। वह एक बार भुजबल के साथ मऊसहानियाँ भी हो आया था। शिवलाल को ललित दस हजार रुपये देता है, पर उसमें से छः हजार भुजबल रख लेता है और शेष मे शिवलाल ऋणी होने पर भी, बलूचियों से घोड़े खरीदता है और फिटन भी। इससे पूर्व पूना के मामा की लड़की की शादी सिगरावन मे होती है, जिसमें एक ओर शिवलाल और दूसरी ओर ललित, जो विवाह के विरुद्ध था, पूना को देखकर उस से विवाह करना चाहते हैं। लेकिन भुजबल चालाकी से स्वयं उस अनाथ बालिका को अपनी वासना-पूर्ति के लिए हथियाना चाहता है; जब कि उसकी माँ मरते समय अजित का नाम ले गई थी। दस हजार रुपये अदालत में जमा न होने से शिवलाल को जेल की हवा खानी

पड़ती है। ललित अपनी बहन के सुहाग को नष्ट होते देखकर भुजबल की शादी रुकवाकर अजित के साथ उसका विवाह करा देता है। यही नहीं अजित को दो गाँव और एक मकान भी दे देता है।

पैलू और बुद्धा को भुजबल तथा पुलिस दोनों तंग करते हैं। उन्हें इतना पीटा जाता है कि वे मृतप्राय हो जाते हैं। अजित उनका सहायक है। वे भी अजित के लिए जान देते हैं। उन्हीं की सहायता से अजित पूना को प्राप्त कर पाता है। उसे जो गड़ा हुआ धन मिलता है उसे वह स्वयं न रखकर कचहरी में जमा कर देता है। अफसर तक उसकी प्रशंसा करते हैं। खल पात्रों में यदि भुजबल प्रमुख है तो सज्जन पात्रों में अजित। दोनों का चरित्र बड़े ही सुन्दर ढग स विकसित हुआ है। शिवलाल विलासी वृद्ध है, जो 'विराटा की पद्मिनी' के राजा नायकसिंह की प्रकृति का है—हर औरत को पाने का अभिलाषी और अपने को वृद्ध न मानने वाला। वह एक दिन रतन के घर भी पकड़ा जाता है। नारी पात्रों में रतन और पूना दोनों देवियाँ हैं। रतन भुजबल-जैसे धूर्त के साथ भी निर्वाह करती है। पूना 'गढ़ कुण्डार' की तारा या 'विराटा की पद्मिनी' की कुमुद की भाँति दुर्गा की उपासिका है। तुलसी की पूजा भी करती है और पीपल के नीचे दीपक भी रखती है। वह साहसी भी है। अजित कहता है—"किसान डरपोक नहीं होते। कुव्यवहार के कारण ये लोग बोदे जरूर मालूम देते हैं।" (पृष्ठ १७९)। स्वयं पैलू का निश्चय है—"किसानों को कोई अंक दे तो इस गरीबी और लाचारी म भी वे अपने को हितू के लिए होम सकते हैं।" (पृष्ठ २०४)। इस उपन्यास में विजय सत्य की होती है। अतः यह आशावाद का सचार करता है। अजित की पर-दुःख-कातरता और ललित की दार्शनिक वृत्ति से उपन्यास में जीवन तथा जगत् के विषय मे नई-से-नई सूक्तियाँ मिलती हैं। पूना के मामा लालसिंह द्वारा पीपल से झँझरी बाँधने जाने की घटना म अति प्राकृत तत्त्व भी समाविष्ट है। जगत सागर और उसके

आस-पास का वर्णन वर्माजी के प्रकृति-प्रेम तथा पुरातत्व-ज्ञान का परिचायक है।

'कभी-न-कभी' वर्माजी का छठा सामाजिक उपन्यास है। इसका सम्बन्ध मजदूरवर्ग से है। इस दृष्टि से यह पहला उपन्यास है। 'कुण्डली चक्र' में जमींदार-किसान-संघर्ष के सफल समावेश के बाद 'कभी-नक-भी' में मज़दूर-मालिक-संघर्ष भी स्वाभाविक है। लेकिन प्रेमचन्द की भाँति किसी कारखाने में होने वाला संघर्ष यहाँ नहीं है। मकान बनाते समय जो मज़दूर काम करते हैं उनका तथा उन मज़दूरों के ऊपर देखभाल करने वाले निरीक्षक का, जिसे मेट कहते हैं, संघर्ष ही इसमें है।

कथा दो मज़दूरों पर आधारित है। नाम हैं—देवजू और लछमन। वे एक गाँव के रहने वाले तो नहीं हैं, पर एक ही स्थान पर काम करते-करते उनका आ।स में इतना प्रेम हो गया है कि लछमन, जो उम्र में छोटा है, देवजू को बड़ा भाई मानता है। परिचय के पहले ही दिन देवजू को लछमन अपनी कोठरी में लिवाकर लाता है। देवजू और लछमन दोनों किसान हैं। किसान जब बेदखल होता है तब मज़दूर बन जाता है। प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' को ही लीजिये। उसका नायक होरी भले ही परम्परायुक्त जीवन में मरा हो, पर उसका लड़का गोबर मज़दूर बन जाता है और गाँव छोड़कर शहर का वासी हो जाता है। देवजू के मज़दूर बनने की कहानी भी यही है। सात-आठ बीघे मौरूसी जोत थी। एक बैल था, साझे में खेती करता था। चेचक ने बैल मार दिया। लगान न दे सका; और हो गया बेदखल। पेट भरने को आ गया मज़दूरी करने। और लछमन? माँ की मृत्यु के बाद हिस्सा-बाँट होने पर उसका मन गाँव में न लगा और बन गया मज़दूर। ये दोनों इतने निकट हैं कि सगे भाई भी न होंगे। एक दिन शाम को घर लौटते हुए लछमन

पीछे से आती हुई साइकिल से बचने की कोशिश करते हुए पास से जाते ताँगे से टकरा जाता है और पैर में चोट आ जाती है। देवजू उसकी तीमारदारी में जान लगा देता है। दूना काम करके उसके लिए दूध इत्यादि का प्रबन्ध करता है। इसी प्रकार जब देवजू के पैर में जब गेंती लग जाती है तो अस्पताल में पड़े देवजू के लिए लछमन क्या-क्या नहीं करता ? लछमन तो अपने सगे बड़े भाई तक को देवजू के सामने कुछ नहीं समझता। इन दोनों का सम्पर्क एक वृद्ध और उसकी लड़की से होता है। वृद्ध का नाम है हरलाल और लड़की का लीला। वह भी किसान है—परिस्थिति का मारा। मज़दूरी के लिए ही गाँव से चल देता है। लड़की के हाथ पीले करने की चिन्ता है ही। अब लछमन का मन लीला को भौजी बनाने के लिए ललकता है। लेकिन हरलाल देखता है कि देवजू के घर-द्वार कोई खास नहीं और गेंती लगने से पैर में लँगड़ाहट आ गई है। वह लछमन के साथ शादी करने को तैयार है, पर देवजू के साथ नहीं। लछमन देवजू को पहले विवाहित देखना चाहता है और हरलाल की लड़की की ओर से आशा न देखकर कई गाँवों में मारा-मारा फिरता है ; पर सब व्यर्थ। अन्त में देवजू स्वयं लछमन की शादी लीला से करा देता है। यहीं उपन्यास का अन्त हो जाता है।

कथा अत्यन्त संक्षिप्त है, और सरल भी। देश-काल की एकता भी बनी है। बलवन्तनगर, जहाँ मकान बन रहा है, सब पात्रों का क्रीड़ा-स्थल है और समय भी महीने-दो-महीने से अधिक नहीं। लेकिन वर्माजी ने इतने में ही मज़दूर-जीवन की सच्ची झाँकी करा दी है। देवजू और लछमन का चरित्र बड़ा ही सुन्दर है। देवजू का तो और भी ऊँचा। वह प्यार में लछमन को कोट-कुर्ता बनवाने की बात कहता है, सिनेमा दिखाने का आश्वासन देता है और बीमारी में दूध-केले तक का प्रबन्ध करता है। वह कड़ी बात अपने बाप की भी नहीं सुनता। कड़े स्वभाव के कारण गाँव छोड़ना पड़ता है।

पंजाबियों का अनुकरण करके वह लछमन को पगड़ी-बदल भाई बनाता है। पढ़ा-लिखा है, अतः अपने अधिकार का ज्ञान रखता है। उसे अपने श्रम का बड़ा भरोसा है। डटकर काम करता है और किसी से दबता नहीं। लीला और लछमन को लेकर जो मज़दूर व्यंग करते हैं उनसे जा भिड़ता है और पैर में दुबारा चोट आ जाती है। मेट जब लीला को धोखे से अपने डेरे में ले जाता है तो उसकी रक्षार्थ जा पहुँचता है। लछमन का चरित्र भी कम नहीं है। वह भी देवजू के लिए घर-बार छोड़ता है, उसकी बीमारी में सेवा करता है, उसके विवाह के लिए अन्त तक प्रयत्न करता है। उनके लिए देवजू भगवान् और देवता से कम नहीं। लीला का चरित्र उभरा नहीं है, पर वह मेट के प्रेम-प्रदर्शन पर कहती है—"मेरे लिए चाहने न चाहने का सवाल ही नहीं है। दद्दा जिसके साथ शादी कर देंगे उसी की आज्ञा का पालन करूँगी।" (पृष्ठ १७१)। मेट मज़दूरों—विशेष-रूप से स्त्रियों को बेइज्ज़त करने में कभी नहीं चूकते। उनके प्रलोभन और पेट की मार बेचारी ग़रीब औरतों को अपनी अस्मत बेचने को बाध्य करती है। पर लीला-जैसी भी कुछ होती है, जो पैसे की ओर न देखकर अपनी 'पत' (सतीत्व) की ओर देखती हैं और धूर्तों की चाल नहीं चलने देतीं।

लछमन के साथ हुई दुर्घटना और देवजू को लगी गेंती की चोरी पर पुलिस का रवैया और अस्पताल में देवजू के दाखिल होने पर डाक्टरों की मनोवृत्ति पर भी प्रकाश पड़ता है। पुलिस ताँगे वाले का चालान नहीं करती और देवजू को पेड़ से बाँधकर मारते-मारते अधमरा कर देती है। डाक्टर देवजू के अस्पताल पहुँचने पर कहता है—"समय कुसमय कुछ नहीं देखते। क्या यह समय काम करने का है।" (पृष्ठ ७४)। उपन्यास में मज़दूर संघर्ष-रत हैं और हारते नहीं। जहाँ लीला को लेकर मेट से कहा-सुनी हुई कि उस स्थान को छोड़ दिया और बिना घबराये पहले लछमन और लीला की शादी हुई।

देवजू मेट से कहता है—"जो मरने के लिए तैयार हो, उसको न तुम्हारी परवाह है और न भगवान् की। कभी-न-कभी मज़दूरों के भी दिन आयेंगे।" (पृष्ठ १७६)। जब लीला हर जगह लड़ाई से काम न चलने की बात कहती है तब देवजू का दर्प जगता है—"यह कहो कि बिना लड़ाई के संसार में काम ही नहीं चलता। जितना दबो उतना मरो—जितना दाबो उतना जियो।" (पृष्ठ १७०)। यों 'कभी-न-कभी' में वर्माजी ने पहली बार मज़दूरों की संघर्षशील आत्मा को वाणी दी है। मैं वर्माजी के इस उपन्यास को कलात्मक दृष्टि से उनके सामाजिक उपन्यासों में बहुत अच्छा मानता हूँ, क्योंकि इसमें कहीं भी ढीलापन नहीं है।

'अचल मेरा कोई' सातवाँ सामाजिक उपन्यास है। यह उपन्यास वर्माजी के सामाजिक उपन्यासों में सबसे अलग है। वह इसलिए कि इसमें उच्च-मध्यवर्ग का वह रूप है, जो न केवल धन-सम्पत्ति की दृष्टि से ही सम्पन्न है, शिक्षा—उच्च शिक्षा—और अंग्रेजी तौर-तरीकों पर भी चलता है। दूसरी बात यह है कि इसमें राजनीतिक आन्दोलन का भी सीधा समावेश है। 'कभी-न-कभी' में मालिक-मजदूर-संघर्ष था, 'प्रेम की भेंट' में जमींदार-किसान-संघर्ष था, पर इसमें जमींदार-किसान-संघर्ष का वह रूप है, जिसमें जमींदार ब्रिटिश सरकार का पिट्ठू होता है और अधिकारी बिके हुए गुलाम। वर्माजी के सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक और कलात्मक विचारों की प्रौढ़ता पर भी इससे प्रकाश पड़ता है। 'मृगनयनी' के बाद 'अचल मेरा कोई' में ही वर्माजी ने अपने गहन चिन्तन को व्यक्त किया है।

इस उपन्यास की कथा सत्याग्रह में जेल गये हुए अचल और सुधाकर की रिहाई से आरम्भ होती है। दोनों सम्पन्न घर के लड़के हैं—पहला एम० ए० का छात्र है, दूसरा बी० ए० का। छूटने पर जुलूस के पहले दो लड़कियाँ हार पहनाती हैं। नाम हैं कुन्ती और निशा। ये भी बड़े घराने की हैं। दोनों बी० ए० की तैयारी कर रही

हैं। जेल से इनके साथ छूटते हैं—पंचम और गिरधारी ; जो 'कुण्डली चक्र' के पैलू और बुद्धा की तरह किसान हैं। चोरी में जेल गये थे, पर अचल और सुधाकर के स्वागत-सम्मान को देखकर कांग्रेस में काम करने की इच्छा लेकर गाँव जाते हैं। गाँव में कांग्रेस वाले इनको सम्मिलित नहीं करते तो अचल के कहने से समस्या हल होती है। थोवन माते गाँव का मुखिया है—अंग्रेजों का पिट्ठू। उससे संघर्ष होता है। पंचम और गिरधारी उससे भयभीत नहीं होते। एक बार थोवन के यहाँ पड़ी डकैती को राजनीतिक षड्यंत्र का रूप देकर पंचम-दल गिरफ़्तार कर लिया जाता है, जो अचल कुन्ती-दल की सहायता से मुक्त होता है। शहर की कथा अपनी दूसरी दिशा में चलती है—संगीत-कला की बहस और रुपयों की कमाई। कुन्ती और निशा में से निशा की शादी लवकुमार नामक एक युवक से हो जाती है। बात सुधाकर से भी चली थी, पर सुधाकर का मन था कुन्ती की ओर ; इसलिए उसने मना कर दिया था। रह जाती है कुन्ती। वह अचल के सम्पर्क में है, उससे संगीत और नृत्य सीखती है। अचल के मन में उसके प्रति प्रेम है, पर है गुप्त—प्लेटोनिक लव। वह ऊपर से शान्त, कठोर, अमुखरित और भीतर से कुन्ती का उपासक। सुधाकर उसका मित्र है। उसकी भी शादी होनी ही थी। कुन्ती के घर वालों ने उसे देखा तो सहमत हो गए। सुधाकर तो चाहता ही था। अब त्रिकोण बनता है। सुधाकर स्त्री-स्वतन्त्रता का हामी है, क्लब में नाच-कूद और खेल-तमाशों में उसके साथ भाग लेता है उसे सब प्रकार सुखी और सन्तुष्ट रखता है। लेकिन कुन्ती अचल के यहाँ जाती रहती है—कला को पूर्णता देने के लिए। सुधाकर को बहुत दिन के बाद कुन्ती की यह गतिविधि खलती है। वह कह तो नहीं सकता, पर चाहता है कि वह अचल के यहाँ न जाय। समाज में अचल और कुन्ती को लेकर चवाइयाँ होती हैं। अचल की बूआ बुरा मानती है। कुन्ती का स्वाभिमान घायल। कुछ दिन ऐसे ही चलता है। उधर

निशा विधवा हो जाती है और अचल उससे विवाह कर लेता है। कुन्ती के लिए अब अचल के यहाँ जाना और भी अनिवार्य हो उठता है। बात बढ़ती है अचल के कुन्ती का एक चित्र बनाने से। सुधाकर आपे से बाहर हो जाता है। कुन्ती बन्दूक मारकर मर जाती है और एक कागज़ का टुकड़ा छोड़ जाती है, जिस पर लिखा है—'अचल मेरा कोई'।

इस उपन्यास को में समस्यामूलक मानता हूँ। 'संगम' और 'प्रत्यागत' में जैसे जाति-पाँति और ऊँच-नीच की समस्या है वैसे ही इसमें हमारे उच्चवर्गीय समाज में शिक्षितवर्ग के स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों की समस्या है। यह बड़ी भयानक समस्या है। नारी-स्वतंत्रता का अर्थ अंग्रेजों में जो है वह हमारे यहाँ भी ग्रहण किया जाने लगा है, पर भारतीय जलवायु उसके लिए अनुकूल नहीं। कुन्ती उस वर्ग की नारी है, जो उन्मुक्त जीवन में विश्वास रखती है। नृत्य-गान में डूबी हुई और क्लब-सोसायटी को जीवन का लक्ष्य मानने वाली। यह नारी सम्बन्ध-विच्छेद को स्वाभविक मानती है। निशा इसके विपरीत भारतीय विचारों की है जहाँ पिता ने शादी करदी, स्वीकार कर लिया। सुधाकर आधुनिक नारी का प्रेमी है, पर अन्त में वह भी ऊब उठता है। इससे पता चलता है कि पुरुष हो या नारी; स्वतन्त्रता की एक सीमा होती है। अचल देश-भक्त कलाकार और सुधारक है इसीलिए वह विधवा निशा से शादी करता है और उसको अपने से अधिक सम्मान देता है। लेकिन कुन्ती का चित्र बनाकर देना उसके मन में निहित कुन्ती के प्रति आसक्ति का सूचक है। कुन्ती भी मरते समय 'अचल मेरा कोई' लिखकर छोड़ जाती है। उच्च शिक्षा प्राप्त लड़के-लड़कियों की मानसिक स्थिति पर इस उपन्यास से अच्छा प्रकाश पड़ता है।

चारित्रिक विकास की दृष्टि से उपन्यास का विशेष महत्त्व नहीं, है, क्योंकि किसी पात्र को बहुत समय तक सामाजिक या राजनीतिक

संघर्ष से नहीं गुजरना पड़ता। अचल संगीत के पश्चात् चित्र-कला अवश्य सीखता है और निशा से विवाह करके अपने सुधारक-रूप का परिचय देता है। पंचम और गिरधारी में भी सुधार होता है और वे अपराध-वृत्ति से बचने लगते हैं। इसके अतिरिक्त और किसी पात्र में उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं होता।

इस उपन्यास का मूल्य उसमें व्यक्त किये गए लेखक के राजनैतिक, सामाजिक और कलात्मक विचारों से है। अचल के द्वारा संगीत और नृत्य की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विशेषताओं का उद्‌घाटन कराया गया है। कुन्ती और अचल के संवाद व्याख्यान की सीमा तक पहुँच गए हैं, जिनसे पाठक का मन ऊबता है। कुन्ती और निशा के संवादों से समाज में स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है। 'कुण्डली चक्र' का ललित दार्शनिक था, तो 'अचल मेरा कोई' का अचल कलाकार है। अतः वह कला के प्रत्येक अंग पर अपना अभिमत देता है। लेकिन है वह भारतीय। एक स्थान पर वह कहता है—"असल में हम लोगों के जीवन का कुछ विचित्र हाल हो गया है। हम लोग अपने जीवन की क्रियाओं को तीन-चौथाई तो विलायती निगाहों से देखते हैं और एक-चौथाई या उससे भी कम हिन्दुस्तानी या पुरानी निगाहों से। कभी-कभी शक होता है कि जान-बूझकर हम हिन्दुस्तानी निगाह से शायद किसी भी प्रश्न या समस्या को नहीं देखते। जीवन में स्वाभाविकता कम है।"(पृष्ठ १७२)। वह जीवन को प्रबल बनाने का पक्षपाती है और मन के साथ शरीर को भी सबल बनाना चाहता है। एक स्थान पर सुधाकर कुन्ती से बन्दूक चलाना सीखने की बात पूछता है तो वह कहती है—"मैं नाटक के खेल से बढ़कर उसको मनोरंजन समझूँगी।" (पृष्ठ २२३)। वर्माजी के नारी पात्र सर्व-गुण-सम्पन्न न हों, यह वे स्वीकार नहीं कर सकते, इसीलिए कला की पूर्णता के साथ, व्यायाम और बन्दूक आवश्यक है।

गाँव के पात्रों में 'कभी-न-कभी' के मजदूर-संघर्ष को और भी

बल मिला है। पंचम कहता है—"किसी दिन भगवान् हमारे दिन लौटायेंगे। जब हम थोबन-सरीखे उठाईगीरों, थानेदार-सरीखे दुष्टों और थानेदार की नकेल पकड़ने वाले क्रूरों की अकल ठिकाने लगा देंगे।" (पृष्ठ २२३)। लेकिन जो आजादी आने वाली है उससे उसको शान्ति मिलने की आशा नहीं। अचल से वह कहता है—"बाबूजी, वह आजादी आप लोगों की होगी। हमारी और आपकी आजादी में अन्तर है। (पृष्ठ १६१)। वर्तमान आजादी पर सन् '४७ में पंचम द्वारा कैसी खरी भविष्य-वाणी की गई है। पंचम सक्रिय प्रतिरोध का प्रबल समर्थक है। उसे ब्रिटिश साम्राज्य के दो ही प्रतीक दिखाई देते हैं थोवन मुखिया और थाना। वह हिंसा में विश्वास रखता है। वह वर्माजी के किसान पात्रों में सर्वश्रेष्ठ है।

वस्तुतः 'अचल मेरा कोई' में वर्माजी ने शिक्षित स्त्रियों की समस्या और उच्चवर्ग को ही प्रधानता दी है, अतः उपन्यास में अधिकतर संघर्ष शहरी पात्रों के जीवन का ही है। न जाने वर्माजी ने कुन्ती को बन्दूक से आत्म-हत्या क्यों करने दी। जब वे अचल का विधवा से विवाह करा सकते थे तो क्या उसका कोई उपाय न था। सम्भव है, वर्माजी यह बताना चाहते हों कि अंग्रेजियत के पीछे भागने वाली नारी की गति इसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकती।

आठवाँ सामाजिक उपन्यास **'सोना'** है। उपन्यास बुन्देलखंडी लोक-कथा पर आधारित है। वर्माजी ने इसको मानवीय रूप देने के लिए कल्पना का उपयोग किया है। लोक-जीवन में व्याप्त कहानियों में मनोरंजन के साथ उपदेश का तत्त्व वैसे ही लिपटा रहता है जैसे उपनिषद् की दृष्टान्त-कहानियों में दर्शन के गूढ़ रहस्य। वर्माजी ने भी बुन्देलखंड में प्रचलित लोक-कथा को एक सामाजिक उपन्यास बनाकर खड़ा किया है। इसमें एक ओर राजाओं की मूर्खता और कामुकता का चित्र है तो दूसरी ओर श्रम की प्रतिष्ठा व्यंजित है। उपन्यास में कृषक और मजदूर-जीवन को पृष्ठ-भूमि के रूप में रखा है।

कहानी यों है। दूधई गाँव में एक साधारण किसान है। उसके दो भानजियाँ हैं—सोना और रूपा। सोना बड़ी है, रूपा छोटी। अपनी माँ के न रहने के कारण वे मामा के द्वारा ही पालित-पोषित हुई हैं। सोना को गहने-कपड़ों का चाव है, रूपा सादे स्वभाव की है। खेत काटते समय गाँव के रँगीले युवक चम्पत से सोना का मन मिल जाता है और वह घर लौटते समय रास्ते में उससे गहने-कपड़ों की माँग करती है। रूपा के द्वारा जब मामा पर यह भेद खुलता है तो दोनों बहनों में खटपट हो जाती है। मामा बदनामी से बचने के लिए दोनों की शादी करने का विचार करता है। पहले जन्म-पत्री रूपा की मिलती है और रूपा डुँगरिया गाँव के अनूपसिंह से ब्याह दी जाती है। अनूपसिंह मस्त, हँसोड़ और शिकारी है। सोना की जन्म-पत्री मिलती है देवगढ़ के राजा धुरन्धरसिंह से, जो पचास वर्ष का है। उसकी कई पत्नियाँ मर चुकी हैं। पैर से लँगड़ा है। पढ़ा-लिखा कम है। सोना को जेवर-कपड़ा चाहिए, अतः वह धुरन्धरसिंह की रानी बन जाती है।

रूपा का पति अनूपसिंह गप्पों में रहता है, कमाता-धमाता कुछ नहीं। रूपा ही स्वयं कुछ काम करना चाहती है, पर उसे भी वह बाहर नहीं जाने देता। बातों से ही मन भर देता है। बहुत कहने पर रूपा से लक्ष्मी की उपासना करने को कहता है ताकि पुरखों का गड़ा धन मिल जाय। उधर सोना हीरे-जवाहरात और जरतारी के कपड़ों के लिए धुरन्धरसिंह के पीछे पड़ती है। रुपया उसके पास भी नहीं। यदि हो तो भी तो वह उसके व्यसनों से बच ही कहाँ सकता था। हारकर चील भवानी को मँगोड़े खिलाये जाते हैं। उल्लुओं की पूजा की जाती है। सोना एक मन्दिर भी बनवाना चाहती है। इसी बीच दूधई में मेला लगने का आयोजन होता है। सोना उसमें आती है। चीलों को मँगोड़े खिलाने का नियम जारी है। एक दिन नहाने से पहले कुछ गहनों के साथ गले का लाल मणियों का हार उतारकर ऊँची जगह रखा कि चील झपट्टा मारते समय मँगोड़ों के साथ उसे

भी ले गई। उसने डुँगरिया में हार को रूपा के घर के सामने जाकर डाला, क्योंकि वहाँ एक मरा हुआ साँप पड़ा था, जो चील के अधिक काम का था। रूपा बाहर आई तो हार मिला। लक्ष्मी-पूजन का फल मिल गया। सोना इधर कोप-भवन में गई। राजा की ओर से डोंडी पीटी गई। चम्पत ने भी सुनी। चील डुँगरिया की ओर गई थी। वह भी गया और उसने छिपकर रूपा और अनूप को हार के बारे में बात करते सुना। दोनों को शंका हुई। रूपा हार लेकर राजा को देने निकली। रूपा के थाल में से वह चम्पत द्वारा उड़ाया जाकर पुरस्कार के लोभ में राजा पर पहुँच गया। राजा ने हार पाकर दोनों को—रूपा और चम्पत को—क्षमा किया और रूपा से वरदान माँगने को कहा। उसने माँगा—"दिवाली की रात को मेरे घर को छोड़ कहीं दिये न जलें।" राजा ने 'एवमस्तु' कहा। दिवाली की रात को रूपा और अनूप ने घर की खुदाई की, तो ग्यारह कलशे हीरे-जवाहरात के निकले, जिनमें चार में सच्चे थे, शेष सात में काँच के। रूपा के ठाठ रानियों के हो गये और अनूप के राजा के। फूलों की सेज सजने लगी। सोना ने सुना तो जलने लगी। जब चार कलशों का धन समाप्त हुआ तो शेष सात की जाँच की गई। रूपा को फिर गरीबी की ओर आना पड़ा। अनूप तो मज़दूरी करता ही क्या, रूपा नन्ही-बाई बनकर देवगढ़ में राजा धुरन्धरसिंह के मन्दिर पर मज़दूरी करने जा पहुँचती है। राजा को औरतें चाहिएँ। एक दिन माली की सहायता से रूपा खण्डहर में बुलाई जाती है। राजा उस समय चम्पत की संगीत-मंडली का आनन्द ले रहा था। खबर आती है तो बीच से उठ जाता है और सोना से कह जाता है कि जौहरी से बात करने जाता हूँ। सोना चम्पत को किसी बहाने से बुलाती है। चम्पत को पता है कि राजा क्या करना चाहता है। भेद खुल जाता है। अन्त में मालूम होता है कि सोना पर जो गहने थे उनमें से अधिकांश काँच के थे। कहानी समाप्त हो जाती है। कहानी का निष्कर्ष है—"फूलों की सेज

और श्रम का संग कभी नहीं हो सकता, और न होगा। और यदि कभी हुआ तो काँच के गुरियों के सिवाय और कुछ गले में नहीं रहने का।" (पृष्ठ २४७)।

यह संकेतात्मक लम्बी कहानी है। चरित्र की दृष्टि से इसका महत्व कुछ नहीं है। वर्माजी ने इसके द्वारा श्रम-पूजा का महत्व प्रतिपादित किया है। रूपा अमीर से जब गरीब होती है तो स्वप्न में दीपक चेतनावनी देता है—"मेहनत, सफाई और कला की उपासना से ही सच्चे जीवन का बड़प्पन मिलता है।" और रूपा निश्चय करती है—"पहली चीज है मेहनत और सफाई, सबसे पहली मेहनत।" (पृष्ठ १९०)। पूरे उपन्यास में रूपा का चरित्र ही आदर्श है। वह प्रारम्भ से श्रम को महत्त्व देती आई है। सोना का मन कभी संतुष्ट नहीं हुआ। धुरन्धरसिंह यदि विलासी था तो सोना भी चम्पत को मन से हटा न सकी। अनूपसिंह के हँसी के किस्सों ने उपन्यास में जान डाल दी है। वर्माजी ने देवगढ़ के मन्दिरों, दूधई के मेले और उसमें बुन्देलखंड के लोगों के उत्साह का वर्णन अपनी प्रकृति के अनुसार किया है। वैसे पूरे-का-पूरा उपन्यास राजाओं की मूर्खता पर एक करारा व्यंग है।

'अमर बेल' अब तक प्रकाशित उपन्यासों में नवाँ और अन्तिम सामाजिक उपन्यास है। यह उपन्यास वर्माजी के सामाजिक उपन्यासों में सबसे बड़ा है। वर्माजी इसके परिचय में लिखते हैं—"अनीति से रुपया कमाने की धुन गाँवों तक में व्यापक रूप से फैली हुई है। साहूकारी, खेती-किसानी सबमें। समाज में यह घुन की तरह लगी हुई है। जैसे हरे-भरे पेड़ पर 'अमर बेल'।" इन शब्दों में वर्माजी ने 'अमर बेल' के प्रतिपाद्य की ओर संकेत किया है। उपन्यास में निश्चय ही समाज का अनीति से शोषण करने वाले और बिना श्रम किये मौज उड़ाने वाले वर्ग की घृणित मनोवृत्ति का भंडाफोड़ किया गया है। राजा, जमींदार, कारिन्दे, साहूकार, पुलिस और सरकारी

अफसर एक ओर, और स्वतन्त्र भारत की भूख-गरीबी से लड़ती जनता दूसरी ओर। इस संघर्ष में अन्तिम विजय मेहनतकश जनता की ही होती है। वर्माजी ने किसान-मजदूरों को सदा राजा-नवाबों से बड़ा माना है। 'प्रेम की भेंट', 'कुण्डली चक्र', 'कभी-न-कभी', 'अचल मेरा कोई' में उन्होंने मजदूर-किसानों के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की है। 'अमर बेल' के द्वारा वर्माजी ने उस भविष्य को वर्तमान का रूप देने का उपाय बताया है।

इस उपन्यास की कथा सुहाना और बांगुर्दन दो गाँवों में ही केन्द्रित है। इनको एक गाँव भी कह सकते हैं, क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से केवल एक नाले ने ही इन्हें पृथक कर रखा है। वैसे जमींदारी भी एक ही जमींदार की है। नाम है देशराज। जमींदारी-उन्मूलन होने का निश्चय हो चुका है, अतः वह अपनी स्थिति-रक्षा के लिए प्रयत्नशील है। एक ओर वह अपने आसामी किसानों को कारिन्दे कुन्जीलाल के माध्यम से लूटता है तो दूसरी ओर अंजना नाम की एक आधुनिका के साथ मिलकर अफीम का अवैध व्यापार करता है। इस अफीम के व्यापार में उसके दो साथी और हैं—एक नाहरगढ़ के राजा बाघराज और दूसरा डाकू कालीसिंह। बाघराज अफीम खरीदता है और कालीसिंह उसे बन्दरगाह तक पहुँचाता है। देशराज कालीसिंह के द्वारा डाके भी डलवाता है। बाहर ही नहीं, अपने गाँव में भी कालीसिंह द्वारा चाहे जिसे लुटवा देता है। वैसे आसामियों को बुवाई के समय उसके कारिन्दे द्वारा एक मन पीछे पाँच सेर कम ही दिया जाता है; क्योंकि दो सेर कारिन्दे का हक दस्तूर, एक सेर धर्मादाय में, एक सेर उस टैक्स के लिए, जो सरकार ने मालगुजारी के ऊपर जमींदारों पर लगाया था, एक सेर सूखी बैटरी वाले रेडियो के लिए, जो देशराज ने खरीदकर हवेली में लगाया था। न केवल देशराज, किसान गाँव के धरनीधर सेठ नामक महाजन से भी लुटते हैं, पर है वह मीठी छुरी। सुहाना में जमींदार और महाजन हैं तो

वांगुर्दन में घाटीवाली यही कार्य करती है ; पर इनसे अधिक ईमानदारी से। ज़मीदारी जाती देखकर देशराज वनमाली नामक नेताजी को अपनी ओर मिलाता है। ये नेताजी दो बार कांग्रेस में जेल काट आए हैं। वैसे उससे पहले चोरी और मार-पीट में भी सजा पा चुके थे। ये पटवारी से मिलकर गरीब किसानों की जमीन को स्वयं और देशराज के एक आसामी विक्रम के नाम करवा देते हैं। विक्रम दमरू काछी की जमीन को और वनमाली वटोले की चरागाह को हथिया लेता है। छदामी की चरागाह में देशराज का नौकर जगनुआ वनमाली और विक्रम के हल जमाये हुए है। देशराज सरकारी जंगल से लकड़ी भी कटवा लेता है।

वांगुर्दन का टहलराम कम्युनिस्ट विचार-धारा का युवक है। गाँव में एक स्कूल चलाता है और गरीबों का पक्ष लेता है। पहले तो छदामी चमार के साथ वह देशराज के कारिन्दे को डाँटता है, फिर देशराज को। वह सबको देशराज के विरुद्ध कर देता है और देशराज की मरी हुई भैंस को नहीं उठवाने देता। बेगार जब कानून से बन्द हो गई तो फिर ज़मींदार का क्या हक ? विरोध बढ़ता है। इसी बीच राघवन नाम के सहकारी समिति के अधिकारी द्वारा सुहाना में सहकारी खेती के लिए समिति की स्थापना होती है। धरनीधर सेठ वनमाली और देशराज उसमें सम्मिलित होते हैं—पद लेकर। वे सहकारी समिति को कम उपजाऊ खेत देते हैं। साथ ही अपनी खेती भी करते हैं। धीरे-धीरे मशीनें आती हैं। गाँव में एक नया जीवन प्रारम्भ होता है। पहले तो वांगुर्दन का टहल सहकारी समिति के लिए राजी नहीं होता, क्योंकि वह लाल झण्डे वाला है और कोरा सिद्धान्तवादी; पर जब लोग उसे यह प्रयोग करने को कहते हैं तो वांगुर्दन में भी सहकारी समिति बन जाती है। अब कार्य तेजी से होता है। डाक्टर सनेहीलाल भी राष्ट्रीय विचारों के हैं। समिति की खेती

को सफल बनाने में उनका बहुत बड़ा हाथ रहता है। निस्पृह और सेवाभावी हैं। घबराते नहीं। सबको साथ लेकर चलते हैं।

देशराज का अफीम का व्यापार भी चल रहा है और डाकू कालीसिंह की सहायता भी। उसने एक बार अपनी ही समिति के खजानची को लुटवा दिया। टहल का तो दुश्मन है ही। कालीसिंह से उसे भी समाप्त करना चाहता है, पर टहल सचेत होकर खपरैलों से ही डाकू को मार भगाता है। डाक्टर सनेहीलाल और उसकी पत्नी के प्रयत्नों से वह स्वस्थ होकर लौट आता है। गाँव में लौटकर वह और भी तेजी से काम करता है। अवकाश-प्राप्त फौजी लटोरेसिंह की देख-रेख में स्वयंसेवक तैयार होते हैं। सरकारी उद्योग-धन्धे और प्रौढ़ पाठशाला चलती हैं। ललिता नदी में बाँध बाँधकर पानी लाया जाता है। नदी के भरके ठीक किए जाते हैं। देशराज और वनमाली को यह अच्छा नहीं लगता। वनमाली तो धूर्त कांग्रेसी है, जो किसानों-मजदूरों का दुश्मन और स्वार्थी जमींदारों का दोस्त है। वह सरकार से जेल जाने के उपलक्ष में जमीन लेना चाहता है। देशराज एण्ड कम्पनी का भण्डाफोड़ होता है और बाघराज पकड़ा जाता है। डाकू कालीसिंह देशराज को भी समाप्त करना चाहता है और टहल को भी, पर टहल उसे मार देता है, वैसे ही जैसे 'संगम' में रामचरन लालमन डाकू को मारता है। अन्त में देशराज ईमानदारी से जीवन बिताने का निश्चय करता है। सच्चे सुधारकों और शोषक अवसरवादियों के बीच की कड़ी छदामी चमार, वटोले बुनकर और दमरू काछी हैं, जो मेहनतकश जनता के प्रतिनिधि हैं। ये शोषकों के शिकार होते हैं, पर उनको आत्म-समर्पण नहीं करते। साथ देते हैं तो टहल का और सनेही का। वे जमींदार के गुर्गों से जमकर लोहा लेते हैं।

उपन्यास के पुरुष-पात्रों में डाक्टर सनेहीलाल, जो भारतीय ढंग से समाजवाद लाने के पक्षपाती हैं, और टहल, जो कट्टर लाल

झण्डावादी है, दो ही ऊपर आते दिखाई देते हैं। जनक नाम का एक लड़का भी टहल का प्रमुख अनुयायी है। वह भी अपने साहसिक स्वभाव से पाठक का ध्यान खींचता है। साथ ही राघवन सरकारी अफसर होते हुए भी आदर्श पात्र है। स्त्री-पात्रों मे डाक्टर सनेहीलाल की पत्नी राजदुलारी और मण्टू की बहन हरको दो ही प्रमुख हैं। हरको अपने पति के अत्याचारों से तंग आकर मायके चली आती है और टहल के सम्पर्क में ऊँची उठ जाती है। उसका पति दमरू काछी के साथ खेत में हुई मार-पीट में मारा जाता है। अन्त में उसकी शादी टहल से हो जाती है। अंजना कैसी ही चालक हो, पाठक का ध्यान उस पर नहीं जम पाता।

जैसे 'अचल मेरा कोई' में उच्च शिक्षा-प्राप्त सम्पन्न वर्ग की स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी समस्या प्रमुख है और लेखक उसके प्रमुख पात्र अचल और कुन्ती द्वारा समाज, राजनीति तथा साहित्य पर अपने विचार प्रकट करता है वैसे ही इसमें गाँव के निर्माण की समस्या प्रमुख है और लेखक सनेहीलाल तथा टहल द्वारा इस विषय में अपनी मान्यताएँ व्यक्त करता है। वहाँ जैसे अचल प्रमुख है, यहाँ सनेही। आध्यात्मिकता और भौतिकवाद का समन्वय ही डाक्टर सनेही का ध्येय है। वह सनेही से कहता है—"आज पक्की हो गई। अध्यात्म के विकास के लिए विज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।" (पृष्ठ ४७६)। टहल समर्थन करता है—"और विज्ञान को अध्यात्म के निर्देशन की।" इस निष्कर्ष के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है।

किसानों की दयनीय आर्थिक स्थिति, उन पर जमींदार, पुलिस और पटवारी आदि के अत्याचार, आपसी झगड़े आदि का ऐसा चित्र है कि प्रेमचन्द की याद आ जाती है। मैं सोचता हूँ कि यदि फार्म के चक्कर में पड़कर वर्माजी ने ३०-३१ से ४१-५२ तक का समय न खोया होता तो हमें उस काल के कितने सुन्दर उपन्यास न मिले होते। जो कुछ भी हो, वर्माजी ने इस उपन्यास में ग्राम्य-जनता के चित्रण में अपनी समग्र शक्ति लगा दी है।

विशेषताएँ

वर्माजी के सामाजिक उपन्यासों की कुछ विशेषताएँ तो वे ही हैं, जो ऐतिहासिक उपन्यासों की हैं। उनमें सबसे पहली है बुन्देलखण्ड के ही समाज का चित्रण करना। 'लगन' में बेतवा-तट के वजटा और बरौल दो गाँवों के ऐसे बुन्देले किसानों की कहानी है जिनको अपनी-अपनी भैंसों की सम्पत्ति पर गर्व है। दोनों पानीदार हैं। 'संगम' में झाँसी, ढिमलौनी और बरुआ सागर के बीच का भौगोलिक क्षेत्र है। उसमें बुन्देले ब्राह्मणों और उनकी स्थिति का दिग्दर्शन है। 'प्रत्यागत' में भी 'बाँदा' बुन्देलखण्ड का ही अंग है, जहाँ के कट्टरपंथी ब्राह्मण-समाज और अहीर-क्षत्रिय-विरोध से उपन्यास का निर्माण हुआ है। 'प्रेम की भेंट' का तालबेहट भी बुन्देलखण्ड में है। 'कुण्डली चक्र' के 'नया गाँव छावनी', मऊसहानिया, मऊरानीपुर, लहचूरा, सिगरावन आदि गाँव भी बुन्देलखण्ड के हैं। 'कभी-न-कभी' का बलवन्तनगर, जहाँ उपन्यास की कथा चलती है, झाँसी से दूर नहीं है। 'सोना' के दूधई, देवगढ़ और 'डुँगरिया' भी बुन्देलखण्ड में हैं और 'अमर बेल' के दोनों गाँव और 'नाहरगढ़' का नाम बदला हुआ होने पर भी वातावरण बुन्देलखण्ड का ही है। केवल 'अचल मेरा कोई' ऐसा है, जो वातावरण की दृष्टि से किसी भी नगर से सम्बन्धित कहा जा सकता है। लेकिन किसानों की भाषा पर यहाँ भी छाप बुन्देलखण्ड की है। इस प्रकार बुन्देलखण्ड के प्रति लेखक की ममता इन उपन्यासों में भी यथावत् बनी है। परिणाम यह हुआ है कि नदी, झील, तालाब, पहाड़, जंगल, मन्दिर, मूर्तियाँ, खेत, मैदान, पेड़-पौधों का वर्णन इन उपन्यासों में बराबर हुआ है। 'लगन' में बेतवा और उसके तटवर्ती पहाड़ों तथा जंगलों का, 'संगम' में बेतवा और बरुआ सागर झील तथा जंगल का, 'प्रेम की भेंट' में तालबेहट की झील का, 'कुन्डली चक्र' में जगत सागर, उसे घेरे हुए जंगल और पहाड़ तथा छत्रसाल के भवनों का। 'सोना' में देवगढ़ के मंदिरों और दूधई के तालाब का,

और 'अमर बेल' में पुरानी मूर्तियों का वर्णन बड़ी रुचि के साथ किया गया है। जंगल का वर्णन या तो किसी यात्री के प्रसंग में है या डाकुओं के और या ढोर चराने वाले ग्वालों के। डाकू 'संगम' और 'अमर बेल' में है। यात्री तो कम-बढ़ सबमें हैं ही और ढोर चराने वाले 'लगन', 'अमर बेल' आदि ग्राम से सम्बन्धित उपन्यासों में विशेष रूप से हैं। शिकार के बहाने भी जंगलों-पहाड़ों का उल्लेख हुआ है। यद्यपि इन सामाजिक उपन्यासों में इसका अवसर कम रहा है, फिर भी 'अमर बेल' में वर्माजी ने हाँका करा ही दिया है।

बुन्देलखण्ड की परम्पराओं और अन्ध-विश्वासों का भी उपयोग हुआ है। 'लगन' की नायिका 'रामा' मनवांछित फल पाने को पीपल की खवाल में पिंडी रखती है, 'कुण्डली चक्र' की जानकी संझाबाती करने बरुआ सागर की झील के किनारे जाती है, 'कभी-न-कभी' का लछमन भोमिया की पूजा करना चाहता है, 'सोना' की रूपा लक्ष्मी की पूजा करती है तो सोना चील भवानी को मँगोड़े खिलाती है और उसका पति उल्लुओं की सेवा करता है। प्रेत-बाधा तो कई जगह है। 'कुण्डली चक्र' में पूना का मामा झँझरी बाँधने जाता है और 'संगम' में लालमन द्वारा सुखलाल का उपचार जिस पहाड़ में होता है उसमें गडरियों ने प्रेत की उपस्थिति की अफवाह फैला रखी है। डाकुओं को तो भवानी सिद्ध रहती ही है। किसानों के उल्लास के रूप में मेले-तमाशों का वर्णन, उनके परिश्रम के साक्षी के रूप में ऋतुओं का वर्णन और स्त्रियों के त्योहारों के रूप में लोक-संस्कृति के तत्त्वों का उल्लेख हुआ है।

बुन्देलखण्ड में नववधू महीने-भर काम नहीं करती। शरद ऋतु में दशहरे के पहले से 'टेसू' का खेल होता है और लड़कियाँ दीवार पर 'सुअटा' बनाती हैं। वर्माजी बड़ी भावुकता से लोक-संस्कृति के इन अंगों का वर्णन करते हैं। एक उदाहरण लीजिए, "दीवाल में थोपी हुई 'सुअटा' की मूर्ति सीधी और वक्र रेखाओं का अद्भुत मिश्रण! चित्र-कला के नियमों का प्रचण्ड उल्लंघन। परन्तु हरी दूब और

लाल कनेर तथा कद्दू के पीले फूलों द्वारा शृंगार किया हुआ बाल-वितण्ड और उसके नीचे साफ-सुथरे चबूतरे पर पूरे हुए रंग-बिरंगे चौक, और उधर शरत् की दुर्गा के प्रसाद-रूप हरसिङ्गार के फूल—नन्हे-नन्हे श्वेत—उनके बीच में पतले-पतले लाल डोरे।" (संगम, पृष्ठ ८१)। "दिवाली पर बैलों को नहलाकर 'जवारे' निकाले जाते हैं और दूसरे दिन गोवर्द्धन की पूजा होती है। मौनिये, जो १२ वर्ष तक हर दिवाली की पड़वा को मौन साधते हैं, गाँव-भर का गश्त लगाते हैं" (अमर बेल, पृ० १२१)। अन्य ऋतुओं, उत्सवों तथा विवाहादि पर राई (अमर बेल आदि नाचों का भी उल्लेख हुआ है। तुलसी, पीपल की पूजा और दुर्गा की उपासना तो हर ऋतु में होती है।

दूसरी बात इन सामाजिक उपन्यासों में यह है कि इनमें समाज के उच्च, मध्य और निम्न तीनों वर्गों का चित्रण हुआ है। उच्च वर्ग के पुरुष-पात्रों में 'कुण्डली चक्र' के शिवलाल और ललित, 'अचल मेरा कोई' के अचल, सुधाकर, 'सोना' के राजा धुरन्धरसिंह और सोना, 'अमर बेल' के देशराज और राजा बाघराज को लिया जा सकता है। इनमें जमींदार और राजा विलासी, कामुक और मूर्ख हैं। ललित और अचल-जैसे पात्र शिक्षित और पुरुष-समाज-सेवी तथा उदार हैं। मध्य वर्ग के पात्र दो प्रकार के हैं एक तो कर्तव्यनिष्ठ और देश-भक्त तथा दूसरे अपने स्वार्थ में रत रहने वाले। 'लगन' का देवसिंह 'संगम' के रामचरण और केशव, 'प्रत्यागत' के मंगल और बाबूराम, 'प्रेम की भेंट' का धीरज, 'कुण्डली चक्र' का अजित, 'कभी-न-कभी' के देवजू और लछमन, 'प्रेम की भेंट' का धीरज, 'अमर बेल' के सनेही और टहल आदि ऐसे ही पात्र हैं, जा प्रेम या सेवा की किसी भावना स प्रेरित होकर अपने जोवन को उत्सर्ग कर देने का साहस रखते हैं। इनमें भावुक कवि और दार्शनिक दोनों प्रकार के पात्र हैं। इनके विपरीत 'लगन' का पन्नालाल, 'संगम' का सम्पतलाल, 'प्रेम की भेंट' का नंदन, 'कुण्डली चक्र' का भुजबल आदि दूसरी श्रेणी

के हैं। इनमें भुजबल और सम्पत तो बहुत ही गिरे हुए हैं। मध्य वर्ग के पुरुष-पात्रों में युवकों के अतिरिक्त वयस्क रूढ़ियों और कुसंस्कारों से जकड़े हुए हैं, फिर भले ही वे दहेज पर लड़ने वाले शिबू और बादल हों (लगन), या बरात में मज़ाक पर आपा खोने वाले नंन्दराम या जाति-पाँति-शोषक और मूर्ख भिखारीलाल (संगम), पुराणपंथी नवलविहारी शर्मा और टीकाराम हों (प्रत्यागत), या अवसरवादी वन-माली और धरनीधर (अमर बेल)।

निम्न वर्ग के पुरुष-पात्रों में बड़ी सामर्थ्य है। वे ज़मींदार, साहूकार, कारिन्दे, पटवारी, ठेकेदार, पुलिस, अदालत किसी से नहीं डरते। पैलू और बुद्धा भुजबल कारिन्दे से डटकर लोहा लेते हैं और अजित का साथ देते हैं (कुण्डली चक्र), देवजू और लछमन मेट को खरी-खोटी सुनाते हैं (कभी-न कभी), पंचम और गिरधारी थोवन जमींदार और पुलिस को कुछ नहीं समझते (अचल मेरा कोई), छदामी, वटोले और दमरू जमींदार, कारिन्दे और पटवारी के मुँह पर गाली देते हैं (अमर बल)। ये सब अपने अधिकार के लिए लड़ते हैं। नाई धनीराम (संगम) तक बड़ा स्वाभिमानी है।

सामाजिक उपन्यासों में वर्माजी ने लालमन (कुण्डली चक्र) और कालीसिह (अमर बेल) दो डाकू भी रखे हैं। पहला ब्राह्मण है, दूसरा ठाकुर। ये डाकू गरीबों की मदद करते आये हैं और अमीरों का खात्मा; इसलिए सामान्य जनता इनसे आतंकित होते हुए भी इन्हें बुरा नहीं मानती। वर्माजी ने लालमन को अच्छा बताते हुए भी रामचरण से मरवा दिया। कालीसिंह तो ज़मीदारों और राजाओं का एजेन्ट है। उसकी मौत तो सबके मन की-सी है। वस्तुतः वर्माजी मानवतावादी होने से इस वर्ग को समाज के लिए हानिकर ही मानते हैं।

स्त्री-पात्रों में रामा (लगन), गंगा (संगम), पूना (कुण्डली चक्र),

हरको (अमर बेल) बड़ी ही वीर और साहसी हैं । रामा और पूना तो अपने मनवांछित पतियों देवसिंह और अजित को प्राप्त करके रहती ही हैं, गंगा और हरको भी अपनी वीरता और टहल-जैसे देश-सेवियों की सहचरी बनती हैं । जानकी (संगम), सोमवता (प्रत्यागत), रतन (कुण्डली चक्र), लोला (कभी-न-कभी), निशा (अचल मेरा कोई), रूपा (सोना), राजदुलारी (अमर बेल) परम्परागत पतिव्रताएँ हैं, जो पतियों के सौ खून माफ करके उनकी प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता समझती हैं । कुन्ती (अचल मेरा कोई) और अंजना आधुनिका ह, जिनका अन्त बुरा होता है । इनके प्रति वर्माजी को कोई सहानुभूति नहीं । 'सोना'-जैसी आभूषण-प्रिय स्त्रियों को भी वर्माजी पसन्द नहीं करते ।

वर्माजी के उपन्यासों में जो समस्याएँ उठाई गई हैं उनमें प्रमुख हैं—दहेज, जाति-पाँति, उच्च शिक्षा-प्राप्त स्त्री-पुरुषों का असन्तोषमय जीवन, किसान और मजदूरों की दयनीय स्थिति, राजनीति का दिवालियापन आदि । इन समस्याओं के हल के लिए वर्माजी ने संघर्ष और साहस दो उपायों को काम में लाने की सम्मति दी है । देवसिंह-जैसे युवक यदि हों तो भले ही उनके पुराणपंथी गुरुजन लड़ते रहें, दहेज मनवांछित पति-पत्नी को मिलने से नहीं रोक सकता । जाति-पाँति की समस्या मंगलदास और रामचरण-जैसे लालों से हल हो सकती है, जो देश और समाज के लिए सबका विरोध झेल सकें । उच्च शिक्षा-प्राप्त स्त्री-पुरुषों को आँख मूँदकर अंग्रेजों की नकल नहीं करनी चाहिए । मजदूरों को देवजू और लछमन तथा किसानों को पैलू, बुद्धा और पंचम गिरधारी का मार्ग हितकर होगा । वर्माजी के सब सबल पात्र अन्तर्जातीय विवाह कर लेते हैं । यही एक मार्ग है, जो समस्त सामाजिक समस्याओं का हल है । उनके उपन्यासों में दो ही दुःखान्त हैं—एक 'अचल मेरा कोई' और दूसरा 'प्रेम की भेंट' । लेकिन वर्माजी कर्तव्य पर आधारित विवाह के पक्षपाती हैं, वासना

पर आधारित विवाह के नहीं। पहले में एक युवती और दूसरे में एक युवक का प्रेम के पीछे बलिदान है। भावुकता के अतिरेक का यही परिणाम होता है। जीवन में सन्तुलन होना चाहिए।

राजनैतिक विचारों की दृष्टि से वर्माजी ने अपने उपन्यासों में कांग्रेस में घुसे हुए अवसरवादियों की खूब खबर ली है। वनमाली (अमर बेल) ऐसा ही पात्र है जो स्वार्थ के लिए कांग्रेस में घुसा है। 'अचल मेरा कोई' में कुन्ती जेल जाने को वर्तमान राजनीति का कदम भी बताती है, जबकि हमने उसे ही सब-कुछ मान लिया है। (पृष्ठ ८१)। गाँवों और शहरों की राजनीति का अन्तर 'अचल मेरा कोई' में पर्याप्त रूप से स्पष्ट है। शहर में मध्यम वर्ग और मजदूर राष्ट्रीय चेतना को कंधे-से-कंधा भिड़ाकर एक साथ ग्रहण न कर सके, जब कि गाँवों में जाति-पाँति के अन्तर के अतिरिक्त और कोई अन्तर नहीं रहा। अतः गाँवों में उसका जोर अधिक रहा। शहर वाले गाँव वालों को सदा अपने से हेय समझते रहे, आज भी समझते हैं। 'अमर बेल' में वर्माजी ने साम्यवाद का भारतीय रूप श्रेयस्कर माना है और विज्ञान तथा अध्यात्मवाद को एक-दूसरे का पूरक कहा है। सनेही से वर्माजी कहलाते हैं—"समाज की आर्थिक प्रगति का शासन वैज्ञानिक योजनाएँ करें और दोनों को प्राण-शक्ति अध्यात्म दे तो समाज का निरन्तर कल्याण होता है।" (पृष्ठ ४६४)।

अपने श्रेष्ठ पात्रों को साहित्य, कला और दर्शन का अभ्यासी बनकर वर्माजी ने व्यक्ति की पूर्णता का समर्थन किया है। अधिकांश पात्र पढ़े-लिखे हैं। यहाँ तक कि गाँव के मजदूर-किसानों के बीच से उठकर आने वाले सबल पात्र भी पढ़-लिख लेते हैं। इससे पता चलता है कि वर्माजी समाज की उन्नति के लिए शिक्षा आवश्यक मानते हैं।

एक बात और ! वर्माजी ने अपने उपन्यासों में हिन्दू-समाज का का ही चित्र दिया है। बुन्देलखण्ड में उसका ही साक्षात्कार उन्होंने किया है, इसलिए उसे व्यक्त कर दिया है। इन उपन्यासों में से

'प्रत्यागत' में मुसलमानों की कुछ झलक है। मंगलदास ब्राह्मण होते हुए भी खिलाफत-आन्दोलन में काम करता है और उसीके कारण उसे घर छोड़ना पड़ता है। पर बम्बई में उसे मुसलमानों के कठमुल्ले-पन का शिकार होना पड़ता है। मोपलों द्वारा उसको और भी अपमानित किया जाता है। रहमतुल्ला, जिसके बीवी-बच्चों की उसने रक्षा की, उसे मुसलमान होने से नहीं बचा सकता। वर्माजी का यह कटु अनुभव अराष्ट्रीय भले ही हो, असत्य नहीं है। वैसे ३०-३१ से ४१-४२ के बीच वे लिखते तो अपने उपन्यासों में मुस्लिम-समाज का उज्ज्वल पक्ष भी अवश्य देते, क्योंकि वे संकीर्णतावादी लेखक नहीं हैं।

४. कहानियाँ

वर्माजी के अब तक सात कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उनके नाम हैं—'कलाकार का दण्ड', 'शरणागत', 'तोषी', 'अम्बरपुर के अमर वीर', 'ऐतिहासिक कहानियाँ', 'मेंढकी का ब्याह' तथा 'अँगूठी का दान'। इनमें 'तोषी' कहानी-संग्रह को हम अलग नहीं मान सकते ; क्योंकि इसमें 'शरणागत', 'अण्णाजी पन्त', 'घायल सिपाही' और 'तोषी' शीर्षक जो चार कहानियाँ सम्मिलित हैं वे दूसरे संग्रहों में भी आई हैं। ये चारों कहानियाँ 'शरणागत' कहानी-संग्रह में भी मौजूद हैं। 'घायल सिपाही' कहानी 'अम्बरपुर के अमर वीर' संग्रह में भी दी गई है। ऐसा लगता है कि वर्माजी ने इन्हें अपनी पसन्द की श्रेष्ठ कहानियाँ समझकर अलग से छाप दिया है। अस्तु।

'तोषी' संग्रह को हटाकर वर्माजी के छः कहानी-संग्रह बच रहते हैं। इनमें सब मिलाकर ९०-९५ कहानियाँ हैं। इन कहानियों का विषयानुसार वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१. ऐतिहासिक कहानियाँ।
२. राजनीतिक कहानियाँ।
३. सामाजिक कहानियाँ।
४. हास्य-व्यंगपूर्ण कहानियाँ।
५. संकेतात्मक कहानियाँ।

ऐतिहासिक कहानियाँ

ऐतिहासिक कहानियों में प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक काल तक चले आने वाले इतिहास को लिया गया है। इस बीच भारत में बाहर से मुगल और अंग्रेज आये और भारत की सीमाओं के भीतर

राजपूत, बुन्देले, मराठे और सिख अपने शौर्य का परिचय देते रहे। अंग्रेजों की अपेक्षा मुगलों से बुन्देले, राजपूत, मराठे और सिक्खों की तलवार अधिक बजी है। मुगल शासक रहे, और ये जातियाँ उनकी सत्ता को चुनौती देने वाली। अतः ऐतिहासिक कहानियों में अधिकांश कहानियाँ मुगल जीवन से सम्बन्ध रखने वाली हैं। मुगलों के बाद राजपूत, बुन्देले, मराठे और सिख आते हैं। अन्त में अंग्रेज आते हैं। हम पहले मुगलों से सम्बन्धित कहानियों का विश्लेषण करेंगे और उसके पश्चात् शेष जातियों से सम्बन्धित कहानियों का।

मुगलों से सम्बन्धित कहानियाँ—मुगलों से सम्बन्धित कहानियाँ हैं—'जैनाबादी बेगम', 'नैतिक स्तर', 'गवैये की सूबेदारी', 'इब्राहीम खाँ गार्दी,' 'मुहम्मदशाह का न्याय', 'शेरशाह का न्याय', 'टूटी सुराही', 'फीरोजशाह तुगलक की सहानुभूति', 'जहाँगीर की सनक', 'वेतन की वसूली', 'गेहूँ के साथ भूसा', 'उस प्रेम का पुरस्कार', 'अलीवर्दीखाँ की वसीयत', 'लुटेरे का विवेक' आदि। इन कहानियों को पढ़ने से पता चलता है कि अपने ऐतिहासिक उपन्यासों और नाटकों में जिन मुगल पात्रों का वर्णन वर्माजी ने किया है उनके जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं को कहानी का रूप दिया है—फिर वह घटना चाहे उनके चरित्र के सबल पक्ष पर प्रकाश डालती हो या दुर्बल पक्ष पर; और या उनकी सनक अथवा झक्कीपन को सामने लाती हो। उदाहरण के लिए 'नैतिक स्तर' और 'इब्राहीमखाँ गार्दी' दोनों कहानियाँ भारतीय मुसलमानों के देश-भक्त रूप का परिचय देती हैं। पहली में अब्दाली द्वारा साम्प्रदायिक भावना का आधार लेकर उसे मराठों के विरुद्ध करने और उसके द्वारा अब्दाली को मुँह-तोड़ जवाब देने का वर्णन है। वह सच्चा मुसलमान है। उसका सिद्धान्त है—"वह मुसलमान, मुसलमान कहलाने के ही लायक नहीं जो दूसरे मुसलमानों को बेईमानी करने या अपने मुल्क के खिलाफ करने की कोशिश करने के लिए बरगलावे।" (शरणागत, पृष्ठ ९८)। दूसरी कहानी तो उसके

नाम पर है ही। इसमें इब्राहीमखाँ गार्दी को देश-भक्ति के पुरस्कार-स्वरूप टुकड़े-टुकड़े करके मार दिया जाता है। लेकिन उसका स्वर वही है—"जो अपने मुल्क के साथ घात करे, जो अपने मुल्क को बरबाद करने वाले परदेशियों का साथ दे, वह मुसलमान नहीं।" (कलाकार का दण्ड, पृष्ठ १०१)। मरते समय के उसके ये शब्द पाठक कभी नहीं भूलता—"हम हिन्दू-मुसलमानों की मिट्टी से ऐसे शूरमा पैदा होंगे जो वहशियों और जालिमों का नाम-निशान मिटा देंगे।" (वही, पृष्ठ १०३)। ऐसे ही मुसलमान वर्माजी की श्रद्धा के पात्र हैं।

'जैनाबादी बेगम' में औरंगजेब-जैसे कट्टर राजा के विलासी जीवन का चित्र है, जिसमें वह अपने मौसा की प्यारी दासी पर मुग्ध होकर प्याले ढालना आरम्भ कर देता है। 'टूटी सुराही' और 'जहाँगीर की सनक' जहाँगीर की विचित्र प्रकृति और रुचि की सूचक हैं। पहली कहानी में वह दरबार में शराब पीकर न आने का फरमान निकालता है, पर रात को शबनम दासी द्वारा शराब मँगाकर पीना चाहता है। सुराही लेकर आती हुई दासी पैर फिसलने से गिर पड़ती है और सुराही टूट जाती है। जहाँगीर इसे गुस्ताखी समझकर दासी को किले की दीवार से नीचे फिंकवा देता है। इसी कहानी में क्रूर जहाँगीर अपने हाथी दलगंजन के बीमार होने पर एक योगी को बुलाता है। योगी हाथी को अपने पास लाने की हठ करता है। प्यारे हाथी की जान बचाने को जहाँगीर हाथी भेजता है। मुक्त वायु से हाथी स्वस्थ होता है और जहाँगीर योगी का चमत्कार मानकर उसके लिए मठ बनवाता है और छः गाँव की जागीर देता है। क्या विचित्रता है? दूसरी कहानी में जहाँगीर की जड़ाऊ पेटी में एक सुई रखने का जिक्र है, जिसे वह जवाँमर्दों की जाँच के लिए मिलने वालों के कान या गाल में चुभो देता था। जो सह गया वह जवाँमर्द, जो चीख गया वह कायर। अपने पुत्र सुल्तान शहरयार की भी ऐसी ही परीक्षा उसने ली थी। उसके हाथियों की लड़ाई देखने के शौक का भी वर्णन है। जहाँगीर के चरित्र की विचित्रता बताना इसका भी लक्ष्य है। 'गवैये

की सूबेदारी' में जहाँदारशाह द्वारा अपनी प्रेमिका नर्तकी लालकुँवर के भाई गवैये नियामत को उसकी गायन-कला से प्रसन्न होकर मुलतान की सूबेदारी बख्श देने की घटना है। इसमें बज़ीर जुल्फिकारखाँ अपने हक-पानी के रूप में नियामतखाँ से एक हजार तम्बूरे माँगता है, जो जुट नहीं पाते। बादशाह पर जब बात जाती है तो जवाब-तलब होता है। वजीर कहता है—"आलीजाह, सल्तनत में करीब एक हजार सरदार और मनसबदार हैं। उनसे तलवारें लेकर उस्ताद के पास भिजवा दूँगा और उन लोगों को एक-एक तम्बूरा थमा दूँगा; फिर जैसी मर्जी जहाँपनाह की हो।" (कलाकार का दण्ड, पृष्ठ ५२)। तात्पर्य, गायकों को सूबेदारी देना उचित नहीं। 'शेरशाह का न्याय' में बादशाह शेरशाह का लड़का शाहजादा इस्लामशाह शहर में हाथी पर बैठा जा रहा है। हाथी के हौदे से एक हलवाई की बीवी को नहाते देखकर उस पर पान के सोने के वर्क वाले बीड़े फेंक देता है। स्त्री इस पर अपने को अपवित्र समझकर जल जाना चाहती है। शेरशाह पर शिकायत पहुँचती है। हुक्म होता है कि शाहजादे की बीवी हलवाई के घर में वैसे ही नहावे और हलवाई हाथी पर बैठकर वैसे ही उस पर पान के बीड़े फेंके। कहानी का निष्कर्ष है—'हिन्दुस्तान में वही राज कायम रह सकता है जो लोगों के साथ न्याय करने में कसर न लगावे।" (वही; पृष्ठ ६६)। 'मुहम्मदशाह का न्याय' मुसलमानी काजी और मुफ्तियों की क्रूरता की कहानी है। इसमें एक हिन्दू राम-जी विलासी जीवन के लिए खुदाबख्श बन जाता है, पर उसकी पत्नी और पुत्री मुसलमान नहीं बनतीं। वे लड़की को कैद में डाल देते हैं। वह जल्लाद के हाथ से नहीं, पत्थर की दीवार से सिर टकराकर मर जाती है और हिन्दू ही रहती है। एक ओर यह कट्टरता, तो दूसरी ओर 'वेतन की वसूली' कहानी में वही मुहम्मदशाह वेतन न मिलने पर चोरी के लिए घर में कूदने वाल सिपाही को माफ कर देता है और इस कृत्य में टूटी हुई उसकी टाँग का इलाज भी करा देता है।

इसी प्रकार 'फीरोजशाह तुगलक की सहानुभूति', 'गेहूँ के साथ भूसा', 'उस प्रेम का पुरस्कार', 'लुटेरे का विवेक' आदि कहानियाँ क्रमशः फीरोजशाह की दूरदर्शिता, अकबर की तर्क-शक्ति, गुलामकादिर के मुगल-सम्राट् शाहआलम की शहजादी के प्रेम में असफल होने, दिल्ली के सुलतान मुहम्मदशाह के पाटन-निवासी वसावुहीर की गजनी की जायदाद को न लूटने आदि का उल्लेख है।

राजपूतों से सम्बन्धित कहानियाँ – इन कहानियों के दो भेद कर सकते हैं—गुजरात के राजपूतों की कहानियाँ और राजस्थान के राजपूतों की कहानियाँ। गुजरात के राजपूतों की कहानियों में 'युद्ध बचाया' और 'सिद्धराज जयसिंह का न्याय' कहानियाँ गुजरात के प्रसिद्ध राजा जयसिंह की महत्ता बताती हैं। पहली में अपनी चतुराई से धार के राजा से युद्ध न होने देना और दूसरी में हिन्दू-मुसलमान दोन को एक दृष्टि से देखने का वर्णन है। सच्ची शुद्धि का सम्बन्ध गुजरात के राजा अजयपाल से है। यह कहानी 'शेरशाह का न्याय' से मिलती-जुलती है, जिसमें राजा अजयपाल के अपनी धोबिन पर आसक्त होने और उसके प्रायश्चित्त-स्वरूप चिता पर चढ़ने का वर्णन है। पण्डित राजा के मन की शुद्धि होने से उसे पापी नहीं मानते, पर वह धोबिन के क्षमा कर देने पर ही चिता से उतरता है। यह है भारतीय राजा का आदर्श। राजपूतों की कहानियों में 'पहले कौन' और 'खजाना किसका' दो कहानियाँ बड़ी सुन्दर हैं। दोनों में पहली राजपूतों की मूर्खता का दिग्दर्शन कराती है। मेवाड़ और जोधपुर की सीमा पर एक टूटे-फूटे गढ़ को लेने के लिए दोनों ओर का प्रयत्न चलता है। एक बार मेवाड़ का आक्रमण असफल हुआ तो रणधीर सिसौदिया और गजराज हाड़ा नामक दो वीरों में होड़ लगती है कि किले के फाटक को तोड़ने का पहले किसे अवसर मिलना है। जब सिसौदिया देखता है कि हाड़ा जीतेगा तो स्वयं अपना शीश काटकर मर जाता

है। 'खजाना किसका' में रणथम्भौर का एक सेठ अपना मकान बेचता है। खरीदने वाला लक्ष्मण सेठ जब मकान को पुन: बनवाता है तो वहाँ सोने-चाँदी के सिक्कों का कलश निकलता है। दोनों उसे स्वीकार नहीं करना चाहते। अन्त में राजा हरि सेठ की लड़की और लक्ष्मण सेठ के लड़के का विवाह कराकर उस कलशे को हरि सेठ से कन्या-दान में दिलवाते हैं। 'पैर छाप कपड़े की कहानी' और 'थोड़ी दूर और' में देशभक्ति का स्वर ऊँचा हुआ है। पहली में कन्नौज का मन्त्री कन्नौज पर आक्रमण करने वाले कनिष्क को ससैन्य रेगिस्तान में भटकाता है, तो दूसरी में महमूद गजनवी को दो राजपूत वैसे ही परेशान करके प्राण-दण्ड पाते हैं।

मराठों, बुन्देलों और सिक्खों से सम्बन्धित कहानियाँ—वर्माजी मराठा इतिहास के विशेषज्ञ हैं और बुन्देलखण्ड उनकी जन्मभूमि है। अत: इन दोनों से सम्बन्धित रचनाएँ पर्याप्त मिलती हैं। जहाँ तक मराठा जीवन की कहानियों का सम्बन्ध है, 'अण्णाजी पन्त', 'रामशास्त्री की निस्पृहता', 'महज़ एक मामूली सवार' और 'सत्ताधारी का तमाचा' उल्लेख्य कहानियाँ हैं। इनमें मराठों की देश-भक्ति, त्याग और सादगी पर प्रकाश पड़ता है। अण्णाजी पन्त जिंजी के किले के प्रहरी से मिलकर बाहर आता है और मुगल छावनियों में साधु-वेश में अपना गाना सुनाकर सैनिकों में विश्वास प्राप्त कर लेता है। अन्त में मूलजी नायक के साथ मिलकर छावनी में अपने नाच का आयोजन करता है और मवाली नाई के रूप में मशालची बनते हैं। कुछ ही देर में सहसा असली रूप में प्रकट होकर छावनी के सैनिकों का सफाया कर देते हैं। 'रामशास्त्री' में एक सरदार माधवजी सिन्धिया की जागीर को केदारजी को दिलाना चाहता है, जबकि वारिस माधवजी है। रामशास्त्री त्यागी, निस्पृह और सम्पत्ति से विरक्त हैं। वे उसके सोने-जवाहरात के प्रलोभन को ठुकरा देते हैं।

मराठा शक्ति का संचालक पेशवा बाजीराव 'महज़ एक मामूली सवार' है। उसका एक चित्र निजामुलमुल्क चाहता है। जिस चित्रकार को वह भेजता है वह बाजीराव का रेखाचित्र देता है—"साधारण घुड़-सवार घोड़े की अगाड़ी-पिछाड़ी के रस्से एक झोले में बाँधे था। कन्धे पर लम्बा भाला टिकाये था। घोड़े की जीन सादी, पोशाक भी सीधी-सादी। केवल साफे पर एक विशेष चिह्न था। बस—और ज्वार के अधपके भुट्टे को दोनों हाथों की हथेली से मींड़कर चबा रहा था।" ('शरणागत', पृष्ठ ७९)। 'सत्ताधारी का तमाचा' में माधवराव पेशवा प्रथम के क्रोधी स्वभाव का चित्र है।

बुन्देलखण्ड के इतिहास से सम्बन्धित कहानियाँ बहुत कम हैं। सम्भवतः इसका कारण यह हो कि वर्माजी का समस्त साहित्य ही वहाँ की जलवायु में पल्लवित-पुष्पित हुआ है, फिर सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के पात्रों में भी बुन्देलखण्ड मुखरित है। फिर भी 'मेंढकी का ब्याह' में 'मुँह न दिखलाना' बुन्देलखण्ड के इतिहास से सम्बन्धित सुन्दर कहानी है। इसमें ओरछा के राजगुरु जगन्नाथ व्यास की चतुराई का दिग्दर्शन है। एक बार राजगुरु के यहाँ किसी भोज में रानियाँ आईं और खाने से पहले उन्होंने पत्तलों पर कुछ गहने भी उतारकर रख दिए। खाकर हाथ धो लिये। घर पहुँचीं तो गहनों की याद आई। राजा ने पुछवाया। व्यासजी ने कहा कि वे महतरों के हो गए। राजाज्ञा हुई—"मुँह न दिखलाना।" एक दिन कोट के एक दरवाजे पर राजा की सवारी जा रही थी तो व्यासजी पीठ करके खड़े हो गए। राजा समझ गया। राखी बाँधने बुलाया। व्यास ने कहा—"राजा मेरे घर आवें।" राजा गये। ऐसे रखते थे पुराने गुरु राजाओं पर अंकुश। जहाँ व्यासजी पीठ करके खड़े हुए थे वहाँ का कोट का फाटक पत्थरों से बन्द करवा दिया गया।

इस प्रकार 'मुँह न दिखलाना' बुन्देलखण्ड से सम्बन्धित एक सुन्दर कहानी है, इसमें ओरछा के राजगुरु के चरित्र की महत्ता बताई

गई है। सिक्खों से सम्बन्धित कहानी एक ही है 'रिहाई तलवार की धार पर'। इसमें वीर बन्दा वैरागी का अनुयायी एक लड़का अपनी माँ के द्वारा मुसलमान अधिकारी को रिश्वत देकर छुड़ाने पर क्रुद्ध हो जाता है और मरना पसन्द करता है।

विदेशियों से सम्बन्धित कहानियों में 'मेरा अपराध' और '१३ तारीख और शुक्रवार का दिन' ली जा सकती हैं। पहली कहानी फ्रांसीसी चित्रकार लुई रस्सेली की बुन्देलखण्ड-यात्रा पर है। उसके बासी भोजन का थैला एक कुत्ता ले जाता है, जिसके लिए कुत्ते के साथ अपराधी मनुष्य का-सा व्यवहार होता है। यह अंग्रेजों के आतंक-वादी रूप की रक्षक पुलिस की मूर्खता पर करारी चोट है। दूसरी कहानी में एक अंग्रेज नाविक १३ तारीख शुक्रवार को ही तुर्की का जहाज नष्ट करके घर लौटता है। इसमें अशुभ दिन पर प्राप्त सफलता से निष्कर्ष निकाला है कि प्रभु का कोई दिन अशुभ नहीं। हमारे यहाँ भी ठीक ही कहा गया है—'दारिद्री और सूरमा जब चालें तब सिद्धि।'

राजनैतिक कहानियाँ

राजनैतिक कहानियों में कुछ कहानियाँ तो सन् १८५७ की क्रांति की हैं, और कुछ सन् '४७ की। पहली कहानियों को 'अम्बरपुर के अमर वीर' नामक छोटी-सी पुस्तक में संग्रहीत किया गया है। यद्यपि ये कहानियाँ ऐतिहासिक भी हैं, पर हम अपने राजनैतिक आन्दोलन का प्रारम्भ सन् '५७ से मानते हैं, इसलिए इन्हें राजनैतिक कहानियों के अन्तर्गत ही रखा है। ये कहानियाँ हैं—'अम्बरपुर के अमर वीर', 'कायदे की बात', 'देशद्रोही का मुँह काला', 'बदले के साथ इंग्लैण्ड का भला', 'ऋण साफ और ईमान नहीं टूटा', 'गुप्त सभा', 'वे दिन लद गये मैम सा'ब', 'घायल सिपाही', 'नाना साहब और कानपुर की वह दुर्घटना', 'इतना सब कहाँ से आया', 'अलीवर्दीखाँ का

वसीयत', 'वैल्लूर का विद्रोह', 'दयावान था?', 'अभी तो मैं जीवित हूँ' और दिल्ली के पतन का एक कारण यह भी हुआ'। इन कहानियों द्वारा वर्माजी ने '५७ की क्रांति को सिपाही-विद्रोह कहने वालों को मुँहतोड़ जवाब दिया है। पहली कहानी, जिस पर इस संग्रह का नाम रक्खा गया है, के चौंतीस वीरों ने अम्बरपुर के किले को बीस हजार अंग्रेज़ों से बड़ी देर तक बचाए रखा और बलिदान हो गये। 'कायदे की बात' में गणेशजू नामक एक ऐसे देशद्रोही के जीवन की झलक है, जो '५७ की क्रांति के समय अंग्रेज़ों को उसकी सूचना देकर अपनी जागीर प्राप्त करने की चेष्टा करता है, पर उसे उसके बदले में निराशा और अपमान सहना पड़ता है। रज्जबअली और इलाहीबख्श भी ऐसे ही देश-द्रोही हैं जो दिल्ली में अंग्रेजों के घेरे से सुरंग द्वारा हुमायूँ के मकबरे में पहुँचे हुए बादशाह बहादुरशाह का पता देकर उसे गिरफ्तार कराते हैं। क्यों ? जागीर के लोभ में। इनके लिए लिखी गई है 'देश-द्रोही का मुँह काला' कहानी। 'बदले के साथ ही इंगलैण्ड का भला' में लार्ड डलहौजी द्वारा अपनी माँ के अपमान का बदला लेने के फलस्वरूप अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने की बात कही गई है। कारण सन् '५७ से ३८ साल पहले लार्ड डलहौजी की माँ को, जो अपने पति जनरल डलहौजी के साथ लखनऊ के तत्कालीन बादशाह गाजी हैदरउद्दीन की एक मजलिस में मौजूद थी, बादशाह ने एक नाचने वाली के बदले में माँगा था। 'ऋण साफ' और 'ईमान नहीं टूटा' में एक एंग्लो-इण्डियन द्वारा सन् '५७ की क्रांति के अपराध में ऐसे सेठ को फाँसी देने का उल्लेख है जो स्वयं उसी सेठ का कर्जदार था। 'गुप्त-सभा' में पटना के एक मुसलमान बुकसेलर 'पीरअली' का चरित्र है, जिसने क्रांति में वहाबी मुखियों और काशी के पंडितों की एक गुप्त सभा का आयोजन किया था और क्रांति का सन्देश कमल के फूल तथा रोटियों द्वारा भिजवाने की व्यवस्था की थी। वह हँसते-हँसते फाँसी पर चढ़ा था। 'वे दिन लद गये मैम सा'ब'

में कानपुर के लोग एक मैम साहब को पंखे से हवा नहीं करते। 'घायल सिपाही' में झाँसी के किले की एक मोरी के पास एक बढ़ई द्वारा, मरणासन्न होते हुए भी, अंग्रेज की बन्दूक से झाँसी के एक आदमी और एक औरत को बचाने का वीरतापूर्ण चित्र है। इसका उल्लेख बुन्देलों की ऐतिहासिक कहानी के रूप में हो चुका है। 'इतना सब कहाँ से आया' में अंग्रेज वकील हैरियट द्वारा रिश्वत में जोड़ी हुई तीन-चार लाख पौण्ड सम्पत्ति और हीरे-जवाहरात का ब्यौरा है। वह इंगलैण्ड के समुद्र-तट पर पहुँचते ही मर गया था। जहाज के कप्तान ने उसके लिए कहा था—"बाहर राष्ट्र-भक्त घर में टैक्स-चोर।" बंगाल के सूबदार अलीवर्दीखाँ ने अपने लड़के को वसीयत की कि अंग्रेजों को किले न बनाने देना, नहीं तो हिन्दुस्तान मे उनके पैर जम जायेंगे। वैल्लूर का १८०६ का विद्रोह प्रसिद्ध ही है, जिसमें अंग्रेजों ने हिन्दुओं को तिलक-छापे लगाकर और मुसलमानों को दाढ़ी रखकर कवायद में आने से मना कर दिया था। 'दयावान था ?' में हमारे उन भारतीय अध्यापकों की बेवकूफी बताई गई है जो अंग्रेजों की चालों को नहीं समझ पाते और उनके गुण गाते हैं। 'अभी तो मैं जीवित हूँ' में वर्माजी के परदादा आनन्दराव की वीरता की झलक है, जिन्होंने रानी की मृत्यु के बाद भी अंग्रेजों से लड़ाई जारी रखी और अन्त में गोली खाकर मरे। दिल्ली के पतन का एक कारण यह भी हुआ कि ३१ मई को होने वाला संग्राम १० मई को आरम्भ हुआ और बिना सोचे-समझे बख्तखाँ को सेनापति न बनाकर शाहजादे मिर्जा मुगल को सेनापति बना दिया। लूट-मार और बदमाशी बढ़ी और रक्षक-भक्षक बन गये। 'अँगूठी का दान' नामक कहानी-संग्रह में लखनऊ की बेग़म हज़रतमहल की भी एक कहानी है, जिसका शीर्षक 'तपस्या के लिए वरदान' है। इसमें अंग्रेजों से लड़ने वाले पुरस्कारार्थी लोगों की कहानी है। कुछ लोग तो अफीम तक की फरमायश करते है। यह तत्कालीन पतन का चित्र है। 'दानों हाथ लड्डू'

में भी ऐसे ही लोगों का चरित्र बताया है जो कालपी में राव साहब की सेना में जागीर न मिलने के कारण भर्ती हुए और भाँग-बूटी पीकर कालपी में लूट-मार करने लग गये थे। आये थे स्वराज्य के लड़ने की प्रतिज्ञा के साथ, पर घर भरने की तैयारी करने लगे।

सन् '४२ की कहानियों में 'कटा-फटा झण्डा' उल्लेखनीय है। इसमें हिन्दू-मुस्लिम दंगे में वल्लभ का बलिदान हो जाता है। तब हमें मिलती है आजादी ! इसलिए झण्डा कटा-फटा है। न तो इस झण्डे का रक्त धुलेगा न भदरंगा होगा, 'चाहे प्रलय-काल का पानी ही क्यों न बरस जाय।' बड़ी ही दर्दभरी कहानी है—छोटी-सी; पर कितनी बड़ी बात को अपने भीतर समाये हुए है। हिन्दू-मुस्लिम-दंगों की पृष्ठभूमि की ही दो कहानियाँ और हैं, जो हमारी राजनीति का खोखलापन दिखाती हैं। एक है 'हमीदा', और दूसरी है 'तोषी'। पहली में पेशावर में हिन्दू स्त्रियों को सताने का बदला पटना के एक गाँव में लिया है। इसमें माधव नाम का एक युवक हमीदा को शुद्ध करके उसको अपनी पत्नी बना लेता है। नाम रखता है शान्ति। उसका मन माधव की ओर नहीं है। माधव यह देखकर उसे उसके घर पहुँचाकर आत्मिक शान्ति प्राप्त करता है। दूसरी 'तोषी' कहानी में लायलपुर के एक गाँव में तोषी मुसलमान गुण्डों के हाथ पड़ती है। बच्चों की खातिर रहीमन बनकर वह एक-दो-तीन—यों कई की वासना-पूर्ति करती है। अन्त में हारकर मरना चाहती है कि दोनों देशों के समझौते के अनुसार ऐसी दुखी स्त्रियों की अदला-बदला होती है। वह बड़े विश्वास के साथ दिल्ली लाई जाती है। जहाँ उसका जेठ और पति उसे अपना लेते हैं; दोनों कहानियों की तुलना करके पता चलेगा कि पाकिस्तान में हिन्दू-स्त्रियों पर अधिक अत्याचार हुए हैं। कहानियाँ दोनों सुन्दर हैं।

सामाजिक कहानियाँ

वर्माजी की सामाजिक कहानियों में कुछ का सम्बन्ध सामाजिक

समस्याओं से है, कुछ का सरकारी अफसरों से; और कुछ का श्रमदान या सहकारी आन्दोलन से। सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित सर्वश्रेष्ठ और लोकप्रिय कहानी 'शरणागत' है। इसमें लेखक ने बुन्देलखण्ड के पानी का परिचय दिया है। कथा है रज्जब नाम का एक कसाई अपनी बीमार पत्नी के साथ जा रहा था कि रात हो गई। पास के एक गाँव के ठाकुर के यहाँ बहुत आरज़ू-मिन्नत करने के बाद जगह मिली। लेकिन सुबह तड़के उठा दिया। वह ठाकुर डकैत था—गाँव वालों से भयभीत भी; क्योंकि लोग उस कसाई की तलाश में थे। बेचारे को तीव्र ज्वरग्रस्त पत्नी को लेकर चलना पड़ता है। गाड़ीवान और रज्जब में कहा-सुनी होती है; क्योंकि गाड़ी नहीं चलती। इसी बीच डाकू घेर लेते हैं। वह ठाकुर ही उनका सरदार है। उसे पता चलता है कि यह कसाई तो उसके यहाँ शरण पा चुका है। गाड़ी पर चढ़ा उसका एक साथी उसे मारना चाहता है तो वह कहता है—"नीचे उतरो, नहीं तो तुम्हारा सिर चूर किये देता हूँ। वह मेरी शरण आया था।" (शरणागत, पृष्ठ ९)। जब वे लोग उसका साथ छोड़ने की धमकी देते हैं तो वह उपेक्षा से कहता है—"न आना। मैं अकेले ही बहुत कर गुज़रता हूँ। परन्तु बुन्देला शरणागत के साथ घात नहीं करता, इस बात को गाँठ बाँध लो! (वही, पृष्ठ ९) और कहानी समाप्त हो जाती है। यह हिन्दी की उच्चकोटि की कहानियों में प्रथम पंक्ति की अधिकारिणी है। दो कहानियाँ राखियों पर हैं। पहली 'तिरंगे वाली राखी' में एक ऐसे क्लर्क का मनोवृत्ति-परिवर्तन है, जो अपने वेतन और अफसरों के अधिक वेतन का अन्तर देखकर कम काम करना चाहता है, पर 'तिरंगे वाली राखी' पाकर उसकी कर्तव्य-बुद्धि जाग्रत हो जाती है। 'राखी' में एक ऐसे छात्र का चित्र है, जिसका ट्यूशन केवल इसलिए छूट जाता है कि वह अपने शिष्यों की बहन से राखी बँधवाना चाहता है जबकि वह उसके प्रति वासना-प्रेरित होकर आकर्षित है। 'उन फूलों को कुचला' में एक लड़की दहेज

के भूखे लड़के के गले में माला न डालकर बरात को लौटाने के लिए विवश करती है और कुछ दिन बाद उपयुक्त वर से अपनी शादी करती है। 'अँगूठी का दान' में एक नन्ही बालिका श्रम-दान में बड़े चाव से बनाई अपनी अँगूठी देकर आदर्श उपस्थित करती है। 'बेटी का स्नेह' में सरपंच की सहकारी आन्दोलन को असफल करने की चाल का भण्डा-फोड़ किया गया है। 'बमफटाका' में एक 'बीमार मजदूर' की पत्नी और बच्चा बरात की भीड़-भाड़ और आतिशबाजी के कारण डाक्टर को बुलाने नहीं जा पाते और मजदूर मर जाता है। 'मेंढकी का ब्याह' में इस अन्ध-विश्वास पर चोट है कि सूखा दूर करने को मेंढकी का ब्याह होना चाहिए। इसके सहायक पुरोहितजी भी हो ही जाते हैं। यह सच्ची घटना पर आधारित है। 'थानेदार की तलाशी' इस बात को लेकर लिखी गई है कि कम वेतन में थानेदारों के ठाट कैसे होते हैं। 'धरती माता तोकों सुमिरौं' में श्रम की महत्ता प्रतिपादित है। अभिप्राय यह कि समाज की अनेक समस्याओं और प्रश्नों पर ये कहानियाँ आधारित हैं। लगभग सबका आधार सत्य घटनाएँ हैं, वर्माजी ने उन्हें कहानी का रूप दिया है।

हास्य-व्यंगपूर्ण कहानियाँ

इनमें कुछ कहानियाँ कवियों और लेखकों से सम्बन्धित हैं, कुछ सरकारी अफसरों और अन्य सामाजिक व्यक्तियों से ; तथा कुछ स्वयं लेखक से। कवियों से सम्बन्धित कहानियों में दो प्रमुख हैं—एक 'झकोला चारपाई' और दूसरी 'मूँग की दाल'। प्रतिपाद्य दोनों का एक ही है—साहित्यकार को अपनी स्थिति से सन्तुष्ट रहकर लिखते जाना चाहिए। 'झकोला चारपाई' का कवि दयाल कल्पना करता है "यदि सरकार लेखकों के आमोद-प्रमोद के लिए किसी वन-वेष्टित, जलमय ऊँचे स्थान पर निवास इत्यादि बनवा दे—जैसे शिमला, नैनीताल, पचमढ़ी, दार्जिलिंग इत्यादि में बनवा रखे हैं तो बड़ा अच्छा हो—और कुछ रुपये का भी प्रबन्ध कर दे।" इस कल्पना

की सूझ पर पत्नी की घर में अनाज न होने की सूचना पर भी ध्यान नहीं देते। कुछ देर में 'झकोला चारपाई' पर ही सो जाते हैं और स्वप्न में रमणीय उद्यान में एक लेखक मित्र के साथ घूमने लगते हैं। कुछ देर में अशर्फियों से लदे पेड़ की ओर दौड़ते हुए ठोकर खाकर गिर पड़े हैं। आँख खुलती है तो झकोला चारपाई पर ही पड़े हैं। आशय यह कि आप कल्पना कीजिये ताकि लोग उससे सुखी हों पर स्वयं सुख की ओर न दौड़िये। ऐसे ही 'मूँग की दाल' का कवि शिवलाल पत्नी के कारण आर्थिक तंगी दूर करने के लिए मन्त्री बन जाता है, पर उस स्थिति में लिख नहीं पाता। न आत्माभिव्यक्ति का संतोष है, और न शान्ति। ऊबकर फिर वही पूर्व जीवन अपना लेता है। 'यही धन्धा मैं भी करता हूँ' और 'नये रंग ढंग' में ऐसे चलते-पुर्जे लोगों का खाका खींचा गया है, जिनका पेशा ही साहित्य को ठगना है—कभी जेब कटने या टिकट खोने का बहाना करके, कभी सब्ज़ बाग दिखलाकर, और अपने को साधन-सम्पन्न लेखक होने का रौब देकर।

'चोर बाजार की गंगोत्री' तथा 'सरकारी कलम-दवात नहीं मिलेगी' दो कहानियाँ समाज के उन लोगों के चरित्र पर प्रकाश डालती हैं जो ऊपर से आदर्शवादी बनते हैं, लेकिन अन्दर से बुराई में गले तक फंसे हैं। पहली कहानी को नायिका श्रीमती धनगरज चोर-बाजारी के खिलाफ भाषण देने में नम्बर एक हैं, पर भाषण देने के लिए साड़ियाँ उनके पतिदेव को चोरबाजार से लानी पड़ती हैं। दूसरी में एक इञ्जीनियर अपने लड़के को सरकारी कलम-दवात नहीं छूने देते, पर सरकारो जंगल की मना चिरोंजियाँ डकार जाते हैं। 'राज-नीति की परिभाषा' में चुनाव के समय किये गए लम्बे वादों को बाद में भूल जाने की वृत्ति पर राजनाति की भी आधुनिकतम परिभाषा मानी गई है—"चुनाव के समय असम्भव वादे करके चुनाव के बाद, जो कुछ सम्भव है, उसे करते रहना।" ('मेंढकी का ब्याह', पृष्ठ ७१)। 'राजनोति या राजनियत' बड़ो सुन्दर कहानी है। इसमें एक

शब्द-कोष के लिए 'राजनीति' शब्द का अर्थ खोजा जाता है। साम, दाम, दण्ड, भेद, सदाचार, कूटनीति, चुनाव में टिकिट ले आना आदि कई अर्थ सोचे जाते हैं। अन्त में राजनीति का अर्थ 'राजनियत' रखने का निश्चय होता है, क्योंकि आजकल सर्वत्र राज करने की नीयत बनी है। 'कागज का हीरा' में दफ़्तरों की लालफीताशाही, 'हार या प्रहार' में अधिकारियों की मूर्खता, 'अखाड़ा या सिनेमाघर' में दफ़्तरों में बेकार बैठे बाबुओं की दिनचर्या, आदि की पोल खोली गई है। 'पत्नी-पूजन-यज्ञ' में ऐसे पतियों का मजाक है, जो निखट्टू हैं और घर का प्रबन्ध नहीं कर पाते। व्यंग कहानियों में एक और कहानी है 'मालिश ! मालिश !!'; यह कहानी कलात्मक दृष्टि से बड़ी ऊँची है। लखनऊ स्टेशन पर नवाबी खानदान के दो मुसलमानों में एक मालिश वाला है, जो बारह आने में दूसरे कनमैलिये की मालिश करता है। वह कान का मैल निकालकर हिसाब बराबर करना चाहता है। 'अपनी बीती' वर्माजी की एक ऐसी मोटर-यात्रा की कहानी है जिसमें वे २५-२६ मील की यात्रा १२ घण्टे में तय कर पाते हैं, वर्माजी के मस्त स्वभाव पर इससे अच्छा प्रकाश पड़ता है। इसका हास्य उच्च कोटि का है।

संकेतात्मक कहानियाँ

इन कहानियों में हम भावात्मक, प्रतीकात्मक अथवा ऐसी कहानियों को ले सकते हैं, जो किसी गहन मानवीय तत्त्व की व्यंजना करती हैं। 'कलाकार का दण्ड', 'खजुराहो की दो मूर्तियाँ', 'इन्द्र का अचूक हथियार' और 'सौन्दर्य-प्रतियोगिता' ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'कलाकार का दण्ड' प्रसाद की श्रेष्ठतम भावात्मक कहानियों की श्रेणी में है—भाव और भाषा दोनों ही दृष्टि से। इसमें भारतीय और यूनानी कला का अन्तर स्पष्ट हुआ है। यूनानी कलाकार अन्तक अपोलो की मूर्ति बनाता है और भारतीय कलाकार शंख चतुर्भुज विष्णु की। यूनानी मूर्ति में मांस-पेशियों के उभार से शरीर प्रमुख

है, भारतीय मूर्ति में नेत्रों की स्वर्गीय आभा और अधरों की मधुर मुसकान से आत्मा की प्रधानता है। दोनों में अपनी-अपनी मूर्ति को सुन्दर बताने का हठ है। अन्तक शंख की मूर्ति को अपने पास रख लेता है, पर वह रखने में टूट जाती है। बहाना है कि अपोलो ने रुष्ट होकर मूर्ति तोड़ दी। शंख अन्तक की मूर्ति को चुरा लेता है। बहाना बनाता है कि विष्णु ने बदला लिया है। बात अधिकारियों तक जाती है। अन्तक विदेशी है, इसलिए उसका अधिक ध्यान रखा जाता है। निर्णय होता है कि अन्तक गुरुकुल में एक साल तक पढ़कर भारतीय दृष्टिकोण को समझे और शंख एक वर्ष तक बाहर रहे। जिस तक्ष युवती के लिए वह ब्राह्मण से तक्ष हुआ था और जिसकी नेत्राभा तथा अधर-स्मिति को विष्णु की मूर्ति में उसने व्यक्त किया था उसे ले जाने का अधिकार उसे नहीं मिलता; क्योंकि वियोग में वह अपनी प्रेयसी की प्रेरणा से विष्णु की वैसी ही मूर्ति बना सकेगा। भारतीय और यवन-कला की बारीकियों को इस कहानी में अत्यन्त सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है। भारत में किसी भी धर्म या सम्प्रदाय का अनुयायी व्यक्ति आत्मा का तिरस्कार नहीं कर सकता; यह सन्देश है, जो बाहर वालों को हम कला या साहित्य से दे सकते हैं। कहानी में अन्त तक एकसूत्रता और कौतूहल की रक्षा हुई है। 'खजुराहो की दो मूर्तियाँ' में मूर्ति-कला के सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। हम मुसलमानों की तरह गृह के चारों ओर क्यों जाली नहीं बनाते, और क्यों अश्लील मूर्तियाँ मन्दिरों के बाहर खुदी हुई हैं; इन दो प्रश्नों का उत्तर प्रमुख रूप से दिया गया है। पहले का उत्तर यह है कि हमारे यहाँ स्त्री-पुरुष की आकृति को पत्थर पर नहीं उतारते श्रद्धा-भक्ति, वासना, लालसा, मोह आदि भावों में लक्षणों के अनुसार सुन्दरता को लचकों में उतारते हैं और दूसरे का उत्तर यह है कि मूर्तियों की अश्लीलता मोहक नहीं, सुडौलता मोहक है। इस कहानी की प्रेरणा लेखक को वृद्ध-वृद्धा की उन दो मूर्तियों से मिली, जो

खजुराहो के मन्दिर-समूह के निकट रखी हैं। निष्कर्ष है—"पसीना ब ाते और हँसते-खेलते हुए यदि क्रम से अस्थि-पंजर भी बन जाओ तो चाहे तांत्रिक कुछ कहें और चाहे श्रमण-श्रावक कुछ, तो बुरा भी क्या है।" कलाकार का दण्ड, पृष्ठ ३४)। यह कहानी भी 'कलाकार का दण्ड' की कोटि की है—शिल्प और भाव-भूमि दोनों की दृष्टि से। 'इन्द्र का अचूक हथियार' और 'सौन्दर्य प्रतियोगिता' दोनों कहानियों में से पहली में प्रतीकात्मक ढंग से यह बताया गया है कि अहंकार पतन का मूल कारण है। इसमें एक तपस्वी को न मेनका डिगा सकती है, न निन्दक। यदि उसे भ्रष्ट करता है तो झूठी प्रशंसा से उत्पन्न अहंकार। दूसरी कहानी में एक ऐसे भिखारी का चित्र है जो शरीर से तगड़ा है और जिसने बहुत पैसा कमाया है। वह सौंदर्य-प्रतियोगिता में सफल होकर लौटने वाली चपला को मोटर के नीचे से निकालता है। यही चपला सौंदर्य-प्रतियोगिता में जाते समय उस भिखारी को बुरा-भला कहती है। यही नहीं मोटर के नीचे से निकाली जाने पर अपने 'मनी बेग' को चुराये जाने का सन्देह भी वह उस पर करती है। जब कोई दूसरा व्यक्ति उसका मनी बेग उसे लाकर देता है तब वह उस भिखारी को इनाम देना चाहती है। वह 'मुझको नहीं चाहिए इनाम !' कहकर जब भीड़ में खो जाता है तो उससे कहानी भी खिल उठती है। उस भिखारी के इन शब्दों ने सम्पन्न और विपन्न के बीच के भेद को सहज ही स्पष्ट कर दिया है। सच तो यह है कि वर्माजी की ये कहानियाँ कला की दृष्टि से उनकी श्रेष्ठ कहानियों की प्रतिनिधि हैं। इनको पढ़कर हमारा यह विश्वास दृढ़ होता है कि वर्माजी ने यदि इस ओर ध्यान दिया होता तो वे हमें और भी सुन्दर कहानियाँ अवश्य देते।

विशेषताएँ

वर्माजी की ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक, हास्य-व्यंगपूर्ण और संकेतात्मक कहानियों को एक साथ लेकर देखें तो हमें उनमें

सबसे पहली बात यह मिलेगी कि अपनी कहानियों के द्वारा वर्माजी मानव-चरित्र की ऐसी विचित्रता को प्रकट करना चाहते हैं, जो उनको अन्य व्यक्तियों से अलग करती है। ऐतिहासिक कहानियों में तो यह बात और भी स्पष्ट है। मुगलों का सनकीपन और मराठों की सादगी, बुन्देलों की वीरता और सिक्खों का बलिदान सब अपनी-अपनी जगह ठीक हैं। मुगलों में अच्छाई और बुराई दोनों एक साथ मिलती हैं। ऐतिहासिक कहानियों की संख्या भी इसीलिए अधिक है कि वर्माजी ऐतिहासिक उपन्यासकार पहले हैं, और कुछ पीछे। उन्होंने इतिहास का गहन अध्ययन किया है और इतिहास-निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका वाले पात्रों के जीवन की विशेषताओं को कहानियों के द्वारा सहज ही रखा जा सका है।

राजनैतिक कहानियों में देश-प्रेम और देश द्रोह एक साथ प्रदर्शित हुए हैं। सन् '५७ की क्रांति से सम्बन्धित कहानियों में 'दोनों हाथ लड्डू' के स्वार्थी भारतीय हैं तो 'घायल सिपाही' के साहसी व्यक्ति भी हैं; अंग्रेजों की चालों का यदि पर्दा फाश हुआ है तो वीरों के प्राणोत्सर्ग का सही रूप भी सामने आया है। सन् '४७ की कहानियों तथा दंगे की पृष्ठ-भूमि की कहानियों में लेखक की खंडित आजादी के प्रति आह-कराह का परिचय मिलता है।

सामाजिक कहानियों में 'शरणागत'-जैसी उच्चकोटि की कहानियों में मनुष्य के मन में दिव्य भाव जगाने की शक्ति है। अन्य कहानियाँ मध्य वर्ग की नारी और श्रमिक-किसानों का स्थिति का अंकन हैं, लेकिन इनमें भी आशावाद का समावेश है। श्रम-दान, सहकारी-समिति आदि को अपने उपयोग में लाने की प्रेरणा भी मिलती है।

हास्य-व्यंगपूर्ण कहानियों में हमारे राजनैतिक-सामाजिक दिवालियेपन पर एक नहीं अनेक नश्तर लगाये गए हैं। उनमें नेता, व्यापारी, अफसर, क्लर्क सभी को लक्ष्य बनाया गया है। स्वयं लेखक ने अपनी बीती को भी मनोरंजक रूप में प्रस्तुत किया है।

संकेतात्मक कहानियों में तो वर्माजी की कला का उत्कृष्ट रूप है ही। उनको तो हम भुला ही नहीं सकते। समग्र रूप से वर्माजी का व्यंगकार कहानियों में विशेष रूप से सजग है, फिर वे कहानियाँ चाहे किसी भी वर्ग की हों।

५. ऐतिहासिक नाटक

वर्माजी के उपन्यासों और कहानियों पर विचार करने के पश्चात् उनके नाटकों पर भी विचार होना आवश्यक है। साहित्य की इस विधा को समृद्ध करने के लिए भी वर्माजी ने २०-२१ नाटकों की रचना की है। इनमें कुछ एकांकी भी हैं। इस अध्याय में हम उनके ऐतिहासिक नाटकों का परिचय प्रस्तुत करेंगे। उनके ऐतिहासिक नाटक हैं—'झाँसी की रानी', 'फूलों की बोली', 'हंस-मयूर', 'पूर्व की ओर', 'बीरबल', 'ललित विक्रम' और 'जहाँदारशाह'।

'झाँसी की रानी' उनका पहला नाटक है। "अनेक स्नेही पाठकों ने लक्ष्मीबाई पर नाटक लिखने का आग्रह किया। 'झाँसी की रानी' नाटक उसी आग्रह का फल है।" (भूमिका में वर्माजी का कथन)। इस नाटक की कथावस्तु, जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के वीरतापूर्ण जीवन पर आधारित है। उपन्यास में जो कथा ५०० पृष्ठों में आई थी उसे नाटक में १२५-३० पृष्ठों में सीमित किया गया है। ऐसा करने में लेखक को कितनी कठिनाई हुई होगी इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। कथावस्तु पाँच अंकों में विभाजित है।

प्रथम अंक में लक्ष्मीबाई का बचपन, विवाह, आनन्दराव (दामोदर राव) को गोद लेने और गंगाधर राव की मृत्यु तक की कथा है। इसमें रानी का बन्दूक चलाना, घुड़सवारी करना, निर्भीकता से रहना, पुराने वीरों और वीरांगनाओं के पद-चिह्नों पर चलने और अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने का निश्चय करना, मुन्दर, सुन्दर, काशी आदि दासियों तथा राधारानी बख्शिन को सहेली के रूप में स्वीकार करना, स्त्रियों की सेना बनाने की चर्चा करना, कुश्ती, मलखम्ब आदि के

लिए उन्हें प्रोत्साहित करना, विवाह होना और उसमें पंडित से वेदी पर ही न खुलने-जैसी गाँठ बाँधने को कहना, महादेव के मन्दिर में गौर-पूजा के उत्सव में सखियों से हास्य-विनोद करना और उनसे शरीर और मन दोनों को स्वस्थ बनाने की प्रतिज्ञा कराना आदि बातों का वर्णन है। राजा गंगाधर राव इस अंक में विवाह के लिए स्वीकृति देते, मोतीबाई और जूही का नृत्य देखकर कचहरी में जनेऊ वाला मुकदमा करते, रानी के पुरुषोचित कार्यों पर नाक-भौं सिकोड़ते, अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने के उसके मनसूबों की दबे-दबे खिल्ली उड़ाते और दामोदर राव को गोद लेकर स्वर्गवासी होते दिखाई देते हैं। इसी अंक में अलीबहादुर और उसके नौकर पीरअली की भी हल्की-सी झलक मिलती है जो अपनी खोई हुई जागीर पाने के लिए देश-द्रोह करने को प्रस्तुत होता है। अंग्रेजों के पोलिटिकल एजेंट इन दो देशद्रोहियों को अपने में मिलाने, हिन्दुस्तान के अभिजात वर्ग की सहायता से अपने आतंक को जमाने की चिन्ता करने और झाँसी को अंग्रेजी राज्य में मिलाने पर विद्रोह मचने की आशंका में डूबे दिखाये गए हैं।

दूसरे अंक में अंग्रेजों द्वारा दामोदरराव को गोद लेने से अस्वीकार करने, रानी द्वारा 'अपनी झाँसी न दूँगी' की प्रतिज्ञा करने, अपने संगी-साथियों की सहायता से अंग्रेजों को झाँसी से निकाल बाहर करने और झाँसी में रानी का राज हो जाने की कथा है। इस अंक में रानी जूही द्वारा अंग्रेज छावनी के हिन्दुस्तानी सिपाहियों में अंग्रेजों के प्रति घृणा के बीज बोए जाते हैं। स्त्री-सेना सजाई जाती है और दीवान जवाहरसिंह, रघुनाथसिंह आदि से प्रजा-पीड़न और बुरे कामों से बचने की शपथ ली जाती है। तात्या और जूही का चरित्र इसमें अलग दिखाई पड़ता है। दोनों देश-प्रेम के लिए मर-मिटने का शुभ संकल्प करते हैं। पीरअली पहले अंक में अपने आका अलीबहादुर के कहने से विदेशियों के हाथ बिक चुका है। इस अंक में वह बाजार से जनता का रुख लेने आता है और भीड़

से सुनता है—"सत्यानाश जाय देश-द्रोहियों का।" अंग्रेजों की छावनी में मार-काट मच जाती है। स्त्री-बच्चे तक नहीं छोड़े जाते। वे झाँस को छोड़कर भाग जाते हैं। सिपाही बाजार तक को लूटना चाहते हैं। अनुशासनहीनता पर रानी खीझती है। जब वे रुपया चाहते हैं तो अपना कण्ठा उतारकर देती है और लूट-मार न करने के लिए हिन्दुओं को गंगा तथा मुसलमानों को कुरान की कसम खिलाती है। इसी अंक में डाकू सागरसिंह का भी परिचय मिलता है, जो झाँसी की जेल से भाग जाता है।

तीसरे अंक में रानी सागरसिंह की लूट-मार से चिन्तित दिखाई देती है—विशेष रूप से सागरसिंह द्वारा मुठभेड़ में खुदाबख्श के घायल होकर बरुआ सागर के किले में पड़े रहने से। राज रानी का है इसलिए लूट-मार असह्य। रानी मुन्दर और रघुनाथसिंह की सहायता से वर्षा में ही सागरसिंह को जा घेरती है। उसको क्षमा-दान करके अपनी सेना में भरती कर लेती है। इस वीरता के साथ रानी की उदारता बताने के लिए एक ब्राह्मण की लड़की के विवाह के लिए पाँच सौ रुपये देने और गरीबों के लिए कम्बलों का प्रबन्ध करने का उल्लेख भी है। रानी के किले का भेद लेने के लिए पीरअली सागरसिंह के साथ हो लेता है। वह अंग्रेजी सेना के जनरल रोज को रानी की एक हजार स्त्रियों की स्त्री-सेना का भेद देता है। अंग्रेज रानी के दीवान रघुनाथसिंह, भाऊ बख्शी, गौसखाँ आदि आठ साथियों का आत्म-समर्पण चाहते हैं, जिसका उत्तर रानी लड़कर देना चाहती है। वर्माजी ने एक दृश्य में मदारी, चूरन बेचने वाले और कुँजड़िन का समावेश भी किया है। कुँजड़िन बड़ी तेज औरत है।

चौथे अंक में झाँसी की लड़ाई का वर्णन है। मोतीबाई-गुलाम गौसखाँ, राधारानी-लालाभाऊ, सुन्दर-दूल्हाजू, झलकारी-पूरन की यथा-स्थान नियुक्ति, कालपी से राव साहब और तात्या को सेना भेजने के लिए काशी तथा जूही का प्रस्थान, गुलाम गौसखाँ और

भाऊ बख्शी की गोलन्दाजी, रानी का रण-कौशल और जवाहरसिंह आदि के रण-कंकण बाँधना, दूल्हाजू का पीरअली के द्वारा अंग्रेजों से मिलना, खुदाबख्श, मोतीबाई, सुन्दर, गौसखाँ, भाऊ बख्शिन आदि का मरना, रानी की निराशा, गुलमुहम्मद पठान का रानी के लिए मर-मिटने का व्रत, भोपटकर का रानी को कर्त्तव्य-ज्ञान कराना और झाँसी छोड़कर फिर अंग्रेजों को घेरना, झलकारी के झाँसी की रानी-जैसा वेश बनाकर जनरल रोज़ की छावनी में जाने आदि का वर्णन है।

पाँचवें अंक में रानी का कालपी पहुँचना, राव साहब, बाँदा नवाब आदि के विलासी जीवन की झलक, राव साहब को सेना-नायक बनाना, कालपी की लड़ाई में हार, गोपालपुर के बाग में इन सबका क़िस्मत को रोना, रानी के समझाने से ग्वालियर को हथियाकर लड़ना, राव साहब का पेशवा के रूप में अभिषेक, नवाबी ठाट, कर्त्तव्य-विस्मरण, खाना पीना और नशा-पत्ता करना, रानी का बराबर लड़ते जाना और अन्त में बाबा गंगादास की कुटिया के पास उसके भस्म हो जाने आदि की कथा है।

पूरा नाटक आरम्भ से अन्त तक गठा हुआ है। कहीं शैथिल्य नहीं है। चरित्रों का विकास धीरे-धीरे होता है। इस नाटक में लक्ष्मीबाई का चरित्र उसकी देश-भक्ति, वीरता, युद्ध-निपुणता, उदारता, साहस, शक्ति आदि का ज्वलन्त उदाहरण है। वह आरम्भ से निस्संकोच है। न तो नाना और राव से बचपन में हार खाई, और न अंग्रेजों से बड़ी होकर। झाँसी की वह सर्वप्रिय निधि बन गई। सामान्य दासियों से मिलकर उसने अंग्रेजी सेना के छक्के छुड़ा दिये। मिट्टी उसके स्पर्श से कंचन हो गई। पीरअली और दूल्हाजू-जैसे देश-द्रोहियों के बावजूद रानी ने अपनी झाँसी का फौलाद बनाए रखा। नाटक में मुन्दर तो उसके साथ अन्त तक रही ही, पर डाकू सागर-सिंह और झलकारी के व्यक्तित्व बड़े आकर्षक हो उठे हैं। और तो

और, नाटक में जरा-सी देर के लिए आई हुई कुँजड़िन तक नारीत्व का प्रचण्ड रूप प्रस्तुत करती है। ग्वालियर में पेशवा के विलासी जीवन पर दो किसानों में से एक कहता है—"इन लोगों का सुराज यही तो है। मौका पाया और बन गए सरदार। पागोटे धर लिये सिर पर, गहने डाल लिये गले में और पहन लिये चमकीले कपड़े, बस लगे पीटने जग भर में ढोल, हमने त्याग किये हैं, हमारे पुरखों ने सिर कटाये हैं।" (पृष्ठों १२०)। आज के गद्दीधारियों पर यह टिप्पणी कैसी जमती है। बाबा गंगादास के शब्दों में "स्वराज्य तब होगा, जब लोग अपनी टीम-टाम और विलासप्रियता को छोड़कर वास्तव में जनता के सेवक बन जायँ।" (पृष्ठ १२५)। वीर और करुण दो रसों का ऐसा सुखद संगम कम ही नाटकों में मिलेगा। कुँजड़िन और झलकारी ने अपनी उपस्थिति से इसे और भी सुन्दर बना दिया है।

दूसरा ऐतिहासिक नाटक **'फूलों की बोली'** है। इसमें स्वर्ण-रसायन द्वारा स्वर्ण प्राप्त करने वालों की मूर्खता पर व्यंग है। वैसे लेखक को इसकी प्रेरणा अलबेरुनी की पुस्तक 'किताबुल हिन्द' (भारत-यात्रा) से मिली, जिसमें उज्जैन के व्याडि और स्वर्ण-रसायन की कहानी है। लेकिन पत्रों में भी ऐसे समाचार पढ़ने को मिलते रहते हैं कि अमुक स्त्री अथवा पुरुष को कोई साधु सोना बनाने या रुपया दुगना करने में ठग ले गया। ऐसे भ्रमित लोगों के लिए यह नाटक पथ-प्रदर्शन का कार्य करेगा।

यह तीन अंकों का नाटक है। इसकी कथा यों है—उज्जैन में दो व्यापारी हैं– एक माधव और दूसरा पुलिन। दोनों कलावन्तियों पर मुग्ध हैं। माधव संगीत-कला-कुशला कामिनी पर और पुलिन नृत्य-कला-विशारदा माया पर। दोनों ने अपार धन-राशि और स्वर्ण अपनी इन कलावन्तियों को दिया है। माधव का नाम व्याडि है, पर वह अब माधव कहलाना ही अधिक पसन्द करता है। वह नगर-सेठ है।

एक दिन दोनों कामिनी के कक्ष में हैं। संगीत के साथ नृत्य में रत दोनों की छटा अपूर्व है। समाप्ति पर माधव हीरों का कण्ठा और मोतियों की करधनी देने की बात कहता है। उसके लिए धन चाहिए। वह धन स्वर्ण-रसायन के प्रयोगों से प्राप्त करना चाहता है। पर्याप्त सम्पत्ति इस प्रयोग पर खो चुका है। जब वे जाने को होते हैं तो एक सिद्ध नाम का ठग वहाँ आ जाता है, जो स्वर्ण-रसायन की विधि जानने का दम भरता है। कामिनी को दूसरे दिन एकान्त में वह विधि बताने का वचन देता है और माधव तथा पुलिन को अपने आश्रम में बुलाता है। वेदी की सुरंग से वह अपने शिष्य बलभद्र को पहले स्त्री-वेश में, फिर स्वर्ण-रसायन-विद्या के आचार्य ऋषि नागार्जुन के वेश में दिखाकर चमत्कृत कर देता है। निश्चित समय पर कामिनी और माया का सारा गहना इकट्ठा करवा लेता है। इतने में निश्चित योजना के अनुसार स्त्री का वेश बनाये बलभद्र आ जाता है। बगल में गहनों की-सी पोटली है। सिद्ध तीनों के गहने एक घड़े में रखवाकर नहा आने को कहता है। कामिनी और माया जब तक बाहर नहीं आ पातीं कि बलभद्र वेश बदलकर निकल आता है और गुरु के साथ चम्पत हो जाता है।

इधर कामिनी और माया परेशान हैं, उधर गुरु-शिष्य में झगड़ा होने पर बलभद्र घायल होकर जंगल में गिर पड़ता है। पुलिन आदि, जो उस सिद्ध की खोज में जाते हैं, बलभद्र को उठाकर माया के घर ले आते हैं। इस समय सिद्ध ने अपने शरीर पर चेचक के-से दाग बना रखे हैं और बलभद्र ने अपना रंग साँवला कर रखा है। बेहोशी में बलभद्र माया का नाम पुकारता है तो वहाँ पर खड़े पुलिन को ईर्ष्या होती है और वह रुष्ट होकर चला जाता है। सिद्ध पकड़ा जाता है—रिक्त हस्त, क्योंकि पकड़े जाने से पहले वह पोटली को गड्ढे में फेंक देता है। माधव अपना सर्वस्व बेचकर फिर कामिनी और माया के लिए स्वर्ण-आभूषण लाता है। पुलिन और नागरिक उसकी निर्धनता

का मजाक उड़ाते हैं। माधव जब माया के घर पहुँचता है तो बलभद्र वही गीत गा रहा होता है, जो पकड़े जाने पर सिद्ध गा रहा था। माधव को सन्देह होता है, पर माया को इससे ठेस लगती है। परन्तु जब स्त्री-रूप में उससे गाने को कहा जाता है तो बलभद्र अपने को छिपा नहीं सकता। वह सब भेद कह देता है।

न्यायालय में सिद्ध को बलभद्र की सहायता से दोषी सिद्ध किया जाता है। उसे हाथ काटने का दण्ड दिया जाता है। जब कामिनी इसे नहीं चाहती, तो अपराध की गुरुता देखकर काला मुँह करके गधे पर घुमाने की बात कही जाती है। माधव अब भी उसे स्वर्ण-रसायन का जानकार मानता है, अतः अपमानित नहीं करना चाहता। अन्त में देश-निकाला दिया जाता है। माया और बलभद्र की शादी हो जाती है। माधव शिप्रा की गोद में शरण लेना चाहता है, पर कामिनी उसे बचाती है। सब गहना देकर व्यापार जमाने को कहती है। स्वयं कला की साधना करती है। माधव अब पसीना—परिश्रम को ही स्वर्ण-रसायन का प्रयोग मानने लगता है।

नाटक का उद्देश्य है—स्वर्ण-रसायन की व्यर्थता सिद्ध करना और श्रम द्वारा धनोपार्जन करना। माधव का तो सर्वस्व ही इस प्रयोग में चला गया, फिर भी कुछ न मिला। सिद्ध-जसे लोग बलभद्र-जैसे किशोरों का कैसा दुरुपयोग करते हैं, यह नाटक से प्रकट है। कामिनी और माया-जैसी चतुर स्त्रियाँ तक ऐसे धूर्तों के जाल में फँस जाती हैं। चरित्र की दृष्टि से माधव का चरित्र उत्कृष्ट है। वह कला का सच्चा पुजारी है। पुलिन ईर्ष्यालु और वासना-लोलुप है। माधव की डायरी में माया को सुन्दरी और श्रेष्ठ नर्तकी कहा गया है, परन्तु छिछली। और पुलिन को संकीर्ण तथा डाह रखने वाला और दोनों को साधारण मनुष्य की श्रेणी वाला। अपने और कामिनी के स्नेह-सम्बन्ध पर लिखते हुए कामिनी के लिए अपने को मिट्टी में मिलाने की बात कही है, भले ही वह उसके साथ विवाह न करे।

उसके संगीत-कला-ज्ञान की भी प्रशंसा की है। नाटक के पात्रों के विषय में यही हमें कहना है ; क्योंकि पुलिन बलभद्र द्वारा बेहोशी में माया का नाम लेते ही भड़क उठता है। सिद्ध की गवाही देता और माधव की बुराई करता है। पुलिन को चन्द्रमा की मधुरता प्रिय है, पर माधव को पुष्पों की गन्ध और रूप। प्रारम्भ में माधव और कामिनी में कला पर जो वार्तालाप हुआ है उसमें भी लेखक अपनी रुचि के अनुसार कला के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता को नहीं भूला। पहले कामिनी विवाह को कला के लिए बन्धन मानती है, पर पीछे स्वयं उसकी अनिवार्यता स्वीकार कर लेती है। नाटक का नाम 'फूलों की बोली' इसलिए पड़ा कि सिद्ध उनके द्वारा सांकेतिक भाषा बोलता है। वह कामिनी को कुमुदिनी, माया को मल्लिका मंजरी, हरसिंगार को प्रेम, अपने को सरसों और ऋषि नागार्जुन के रक्तामल के लिए सेंमल का प्रयोग करता है। स्वर्ण-रसायन के प्रयोगों की भाषा भी ऐसी ही होती है। अन्त में माधव-कामिनी-मिलन को मुचकुन्द और कुमुदिनी का मिलन कहा गया है।

तीसरा ऐतिहासिक नाटक '**हंस मयूर**' है। इसकी कथावस्तु का आधार 'प्रभावक चरित' नामक जैन-ग्रंथ है। वर्माजी ने 'प्रभावक चरित' की कथा में कुछ हेर-फेर करके इस नाटक को लिखा है। वह हेर-फेर इतना ही है कि 'प्रभावक चरित' में धारा के राजकुमार कालकाचार्य की बहन का नाम सरस्वती है, जिसे वर्माजी ने प्रारम्भ में सुनन्दा रखा है। शकारि इन्द्रसेन से जिस शक-कन्या का विवाह होता है उसका नाम तन्वी है और वह तत्कालीन नर्तकी सुतनुका, जिसका नाम नर्मदा कांठे की गुफाओं में लिखा है तथा भेड़ाघाट पर पड़ी दो मूर्तियों, जिनको किसी शक-कन्या द्वारा बनवाने का अनुमान है, का मिश्र रूप है। वकुल नामक यवन, जो कालकाचार्य का शिष्य है, कल्पित पात्र है। 'हंस मयूर' की कथा इस प्रकार है—धारा के राजकुमार कालकाचार्य अपनी बहन सुनन्दा और यवन शिष्य वकुल

के साथ धर्म-प्रचारार्थ उज्जैन जाते हैं। वहाँ कापालिकों से उनकी खट-पट होती है। कापालिक प्रबल हैं। उनके भय से गर्दभिल्ल को तीनों को बन्दी बनाना पड़ता है। लेकिन सुनन्दा को वह बलात् अपने प्रासाद में रखकर कालकाचार्य और वकुल को मुक्त कर देता है। वकुल के उकसाने से वह शकों को मालवा पर आक्रमण के लिए निमन्त्रित करने जाता है। मालवा पर शकों के आक्रमण के समय गर्दभिल्ल सुनन्दा के साथ भाग जाता है। शक क्षत्रप उषवदात उज्जैन का अधिपति हो जाता है। शकों के अत्याचारों से मालव-भूमि काँप उठती है। शक-क्षत्रप भूमक की कन्या तन्वी भी भारत की प्राकृतिक छटा देखने के लिए पिता के साथ आई थी। पिता उत्तर में युद्धों के कारण चला गया और तन्वी वकुल के साथ गुप्तचर का कार्य करने लगी। ध्येय था गर्दभिल्ल और इन्द्रसेन को समाप्त करना। वह नृत्य-संगीत तथा भारतीय भाषा एवं लिपि सीख ही लेती है। कालकाचार्य सौराष्ट्र में धर्म-प्रचार को चला जाता है। तन्वी और वकुल क्रमशः मंजुलिका और श्रीकण्ठ बनकर इन्द्रसेन के समक्ष उदयगिरि की कंदरा में अप्सरा तथा शुकदेव का अभिनय करते हैं। यहाँ तन्वी इन्द्रसेन पर आसक्त होती है और उसे वकुल द्वारा मारे जाने से बचाती है। इन्द्रसेन तेरह वर्ष तक संघर्ष करके शकों को देश से हटाने में सफल होता है। सुनन्दा इन्द्रसेन से आ मिलती है, जिसे वह कालकाचार्य के पास भेज देता है। अब सरस्वती के रूप में वह धर्म-प्रचार करती है। गर्दभिल्ल को जंगलों में सिंह खा जाता है।

इस कथा पर 'हंस मयूर' खड़ा हुआ है। जिस काल का यह नाटक है, वह भारतीय जनता और भारतीय संस्कृति के लिए बड़ा भयानक है। उज्जैन में कापालिकों का आतंक यह बताता है कि ये अनैतिक आचरण करते हुए भी राज्य पर किस प्रकार हावी थे। गर्दभिल्ल चाह कर भी कालकाचार्य, सुनन्दा और वकुल को मुक्त नहीं

करा पाता। फिर वैष्णवों, बौद्धों और जैनों की तो बोलती बन्द रहती थी। गर्दभिल्ल जैन होते हुए भी कामुक और कायर था। शक शैवों और वैष्णवों को किस दृष्टि से देखते थे, इसका पता महाक्षत्रप कुजुल की सभा से चलता है, जहाँ प्रत्येक सदस्य भारतीय जनपदों और उनके राजन्यों के प्रति घृणा प्रकट करता है।

नाटक में प्रमुख पात्र इन्द्रसेन है। यों रामचन्द्र नाग और आंध्र के शातकर्णि का प्रयत्न भी उल्लेख्य है, पर इन्द्रसेन ही समस्त घटनाओं का सूत्रधार है। वह व्यापक दृष्टि-सम्पन्न है। सारे देश में घूमकर वह शकों के विरुद्ध सैन्य-संगठन करता है। रामचन्द्र नाग शैव है और इन्द्रसेन वैष्णव। शिव रुद्र है, विष्णु पालक—एक कठोर, दूसरा कोमल। इन्द्रसेन कहता है—"हमारे लिए अकेला रुद्र पर्याप्त नहीं है। हमको सत्य और सुन्दर भी चाहिए—रुद्र का शिव रूप। नाश करने में समय कम लगता है। सौन्दर्य और कल्याण के सृजन के लिए बहुत समय चाहिए। इसलिए परमात्मा का जो रूप इस कल्याण-कार्य के लिए व्यापक हो सके, उसकी ओर विशेष ध्यान देना ठीक रहेगा।" (पृष्ठ ११५)। भक्ति और पुरुषार्थ का समन्वय आवश्यक मानते हुए 'हंस मयूर' नाम की सार्थकता यों बताई गई है "हंस बुद्धि, विवेक, प्रज्ञा, मेधा, भक्ति और संस्कृति का प्रतीक है, मयूर तेज-बल-पराक्रम का। दोनों का समन्वय ही आर्य संस्कृति है। जीवन और परलोक—दोनों की प्राप्ति का साधन।" (पृष्ठ ११५)। उसकी पताका पर हंस-मयूर दोनों के चिह्न थे। उसकी महत्ता के प्रति नत होकर ही तन्वी उसकी रक्षक हो जाती है। वह वकुल से साफ कह देती है, "मैंने जीवन में ऐसा पुरुष कभी नहीं देखा। मैं उनको प्राणपण से चाहती हूँ।" (पृष्ठ १३५)। कापालिक पुरन्दर तक उसका भक्त होकर 'कृत' की उपाधि देता है। क्षमाशील वह इतना है कि वकुल और उषवदात दोनों को क्षमा कर देता है।

वह नीति और शौर्य के समन्वय तथा प्रचार में जीवन बिताने का व्रत लेता है।

नारी-पात्रों में तन्वी का चरित्र खूब निखरा है। वह भारत-भूमि को प्रेम करने वाली है। वह उसकी कला को आत्मसात् करके यहीं की हो जाती है। इन्द्रसेन के शब्दों में वह 'वैष्णवी –हंस मयूरी' बन जाती है। वह युद्ध-विद्या और शस्त्र-संचालन भी जानती है। इन्द्रसेन की रक्षा के समय वह वकुल को सावधानी से पकड़े रहती है। सच्ची प्रेमिका है इसलिए वकुल और उषवदात तक की कोई परवाह नहीं करती। कला-प्रेमी तो प्रथम श्रेणी की है। वह निश्चय ही इन्द्रसेन को प्रेरक शक्ति होने की क्षमता रखती है। नाटक का उद्देश्य शकों की क्रूरता और भारतीयों में व्याप्त सम्प्रदायवाद के घृणित रूप का दिग्दर्शन कराना तथा स्वाधीनता और उसकी रक्षार्थ कल्याणकारी मार्ग बताना है।

'पूर्व की ओर' चौथा ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक को वर्माजी ने यह दिखलाने के लिए लिखा है कि भारतीयों ने ईसा की तीसरी शताब्दी और उससे पूर्व के काल में भारत के पूर्व के द्वीपों में किस प्रकार भारतीय संस्कृति के तत्त्वों का प्रचार किया। उसके अवशेष जावा-बाली आदि द्वीपों में आज भी मिलते हैं। बौद्धों ने किन किन संकटों के बीच नग्न और पशु-जीवन बिताने वालों का सभ्य मनुष्य बनाया, इसका भी आभास दिया है। कथा केवल इतनी है कि पल्लवेन्द्र महाराज वीर वर्मा का भतीजा अश्वतुङ्ग चोल द्वारा कांची पर आक्रमण की ओट में प्रतिष्ठान के श्रेष्ठी चन्द्रस्वामी को पकड़ मँगाता है, नागार्जुन कोंडा के बौद्ध-विहार में जयस्थविर का अपमान करता है और खेतों को नष्ट-भ्रष्ट करता है। वह राजा की आज्ञा से पकड़ा जाता है। उसे दण्ड दिया जाता है कि उसे चन्द्र-स्वामी के जलयान में किसी अज्ञात द्वीप में छोड़ दिया जाय। उसका कवि मित्र गजमद उसके साथ रहता है।

अवन्तिसेन महानाविक द्वारा चालित चन्द्रस्वामी के जलयान में पूर्वी समुद्र की यात्रा होती है। नागा द्वीप के निकट पहुँचकर जलयान तूफान का शिकार हो जाता है और अश्वतुङ्ग, गजमद तथा चन्द्रस्वामी तीनों नागद्वीप के नर-भक्षी निवासियों द्वारा बन्दी बना लिये जाते हैं। उस द्वीप के एक भाग की शासिका धारा है। धारा के पिता विष्णु को मगध-सम्राट् ने किसी अपराधवश कुछ सहचरों के साथ निष्कासित कर दिया था। तब धारा बहुत छोटी थी। धारा का पिता अश्वतुङ्ग, गजमद और चन्द्रस्वामी के साथ बन्दी हुए महानाविक अवन्तिसेन द्वारा मार डाला जाता है। अवन्तिसेन किसी प्रकार बचकर फिर भारत पहुँच जाता है।

धारा अश्वतुङ्ग पर मुग्ध हो जाती है। चन्द्रस्वामी की सहायता से, जो व्यापारी होने से नागद्वीप की भाषा भी जानता है, उन दोनों को एक-दूसरे के भावों को समझने का अवसर मिलता है। उनके प्रणय से गजमद और चन्द्रस्वामी भी बच जाते हैं। तूम्बी नाम की एक और नागद्वीपी नारी है। अश्वतुङ्ग पर वह भी आसक्त हुई थी, पर धारा विजयी हुई और परस्पर ईर्ष्या ने एक को दूसरी का शत्रु बना दिया। नागद्वीप के धारा वाले भाग में कन्द-मूल थे, तूम्बी वाले में केले आदि फल। अश्वतुङ्ग की सहायता से तूम्बी को पराजित करके धारा इस ओर से भी निश्चिन्त होती है। अश्वतुङ्ग चाहता था कि तूम्बी चन्द्रस्वामी या गजमद से विवाह कर ले तो झगड़ा मिटे, पर झगड़ा लड़कर ही मिटा ; क्योंकि तूम्बी राजी नहीं हुई।

तीन-चार वर्ष के बाद उसी अवन्तिसेन के जलयान में कन्दर्पकेतु, गौतमी और जयस्थविर वारुण द्वीप जाते हुए नागद्वीप में ठहरते हैं, क्योंकि गौतमी की इच्छा द्वीप के नरभक्षियों को देखने की है। नागद्वीप में अश्वतुङ्ग, गजमद और चन्द्रस्वामी से भेंट होती है। अवन्तिसेन तो स्वयं बच निकला था, इसलिए इनको समाप्तप्राय समझता था। कन्दर्पकेतु अब गौतमी का विवाह अश्वतुङ्ग से करना चाहता है,

जिसका मन भिक्षुणी होने से कुछ विरक्त-सा है। धारा और अश्वतुङ्ग का विवाह हो ही चुका है। कन्दपकेतु अश्वतुङ्ग को अपना बनाने के लिए, उसके व्यय का सारा भार अपने ऊपर लेकर, साथियों सहित उसे वारुण द्वीप ले जाता है। नागद्वीप में रह जाती है तूम्बी। वारुण में अश्वतुङ्ग अकाल-पीड़ितों की सहायता करता है, स्वयं भारती और वारुणी दोनों के साथ मिलकर नहर खोदता है और जनता को सुखी तथा समृद्ध बनाता है। चन्द्रस्वामी शैव तथा कन्दर्पकेतु बौद्ध मन्दिर बनवाते हैं। अश्वतुङ्ग भारतीय संस्कृति की एकता का प्रतीक बनकर राज्य करता है।

इस नाटक के पुरुष-पात्रों में चारित्रिक विकास अकेले अश्वतुङ्ग का है, जो विलासी और प्रजापीड़क से आदर्श राजा बन जाता है। ईर्ष्यावश गौतमी जब जय से उसके पुराने अत्याचारी रूप की बात कहती है तो जय कहता है, "न वह अभिमानी है, और न धर्मान्ध।" गौनमी का पिता भी उसे राज्य-लिप्सा-रहित बताता है। वह चाहता तो गौतमी से विवाह करके अपार सम्पत्ति प्राप्त कर सकता था, पर उसने धारा के प्रति कर्तव्य का निर्वाह किया। अपने ही प्रयत्न से खोदी हुई नहरों का नाम वह गंगा और कृष्णा रखता है, क्योंकि भारतीय परम्परा कार्य को अमरत्व देती है, नाम को नहीं। जय-स्थविर, गजमद, चन्द्रस्वामी, कन्दर्पकेतु अपने वर्ग और पद के अनुकूल ही हैं। स्त्री-पात्रों में गौतमी ईर्ष्यालु नारी है और तूम्बी की कोटि की है। अन्तर केवल इतना है कि वह नग्न रहने वाली है, यह वस्त्राभूषणालंकृता। सर्वश्रेष्ठ स्त्री-पात्र धारा ही है, जो निरन्तर विकास करती जाती है। नृत्य, गान और कला का आभास उसमें आकर्षण उत्पन्न करता है। वह आदर्श प्रेमिका और पत्नी है। वह गौतमी के भी सुख की कामना करती है।

नाटक का ध्येय तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक दशा का चित्रण तो है ही, द्वीपों की विचित्र प्रथाओं से परिचित कराना भी

है। देश और विदेश दोनों के लिए वर्तमान युगानुकूल सन्देश देना भी उसका ध्येय है। देश के लिए तो यह कि निस्पृह भाव से शासन चलाया जाय और जनता के लिए शासन-व्यवस्था तथा भोजन के उचित प्रबन्ध के साथ संस्कृति, कला और मनोरंजन के पूरे साधनों का उपयोग किया जाय। विदेश के लिए नाटक के अन्त में 'अश्वतुंग' ये शब्द कहता है —"अपने देश के पूर्व की ओर हम सम्पत्ति-अपहरण या जन-पीड़न के लिए नहीं आये हैं, भारतीय संस्कृति में जो कुछ उत्कृष्ट और सर्वसुन्दर है उसके वितरण के निमित्त आये हैं।"

'बीरबल' पाँचवाँ ऐतिहासिक नाटक है। इतिहास का अध्ययन करने पर लेखक को यह लगा कि अकबर के दरबारी बीरबल को केवल एक मसखरा मान लेना उसके साथ अन्याय है। उसका अकबर को 'अकबर महान्' बनाने में बड़ा हाथ था। अकबर के हृदय के सर्वाधिक निकट रहने वाले इस व्यक्ति ने अपनी हाज़िरजवाबी और बुद्धिमत्ता से अकबर-जैसे महान् सम्राट् को अनेक बुराइयों से बचा कर धर्म-सहिष्णु बनाया। बीरबल के इसी रूप का परिचय प्रस्तुत नाटक में मिलता है।

इसकी कथा थानेश्वर, दिल्ली, फतहपुर सीकरी और गुजरात तक फैली हुई है। बात यह है कि बीरबल सदा अकबर के साथ रहने वाला अन्तरंग व्यक्ति था। नाटक के प्रारम्भ में अकबर, बीरबल, तान्सेन, मुल्ला दोप्याजा, फैजी, जसवन्त आदि के साथ शिकारी वेश में दिखाई देता है। मुल्ला दोप्याजा और बीरबल में विशेष रूप से छेड़-छाड़ होती है, जिसमें बादशाह भी मजा लेता है। तानसेन का संगीत भी जमता है और अकबर गुसाइयों के पुरी तथा गिरि दो दलों की लड़ाई देखने जाते हैं। जसवन्त कहार नामक चित्रकार प्रत्येक अवसर के चित्र लेने को प्रस्तुत है। बीरबल सूर और तुलसी का प्रशंसा करके अकबर को धर्म और ज्ञान-चर्चा की ओर झुकाता है। बीरबल छिपे-छिपे रमजानी और लल्ली द्वारा की गई अकबर

तथा राजकीय पुरुषों की आलोचना सुनता है और उन्हें अकबर के समक्ष लाकर नौकरी दिला देता है। जसवन्त औरत का वेश बनाकर हसीना नामक एक शाहज़ादी का चित्र बनाने दिल्ली की गली में जाता है। यह लड़की मुल्ला दोप्याजा की भतीजी है, और अकबर इसे अपने हरम में रखने के लिए पहले चित्र से सौन्दर्य की उत्कृष्टता का निश्चय कर लेना चाहता है। जसवन्त हसीना का चित्र बनाते-बनाते आँखें उसकी सहेली गोमती का बना देता है, जो बीरबल की भतीजी है। आगे चलकर जब हसीना स्वयं अकबर के सामने उसी के विरुद्ध शिकायत लेकर जाती है तो उसे अकबर माफ कर देता है, पर उसकी आँखें न मिलने पर जसवन्त की भर्त्सना करता है, जिससे जसवन्त आत्म-घात करके मर जाता है। वास्तव मे जसवन्त गोमती पर आसक्त हो गया था और उसकी आँखों का उस पर अमिट प्रभाव था। दूसरे अंक में अकबर के फतहपुर सीकरी के निर्माण, वेश बदल कर प्रजा का अपने सम्बन्ध में अभिमत जानना, उस अभिमत के प्रकाश में जागीरदारी की समाप्ति, मुल्लों के प्रति कठोरता, भारतीय भाषा और संस्कृति के प्रचार का व्रत लेने आदि का उल्लेख है। मुल्ला दोप्याजा का विदूषक रूप भी प्रकट होता है। जसवन्त और गोमती का प्रणय इस अंक में और भी खिलता है। तीसरे अंक में अकबर का हाथियों की लड़ाई देखने का शौक, कृष्ण-भक्ति के प्रति झुकाव, दीन-इलाही का आरम्भ, सुरा-सुन्दरी-सेवन से वैराग्य, बीरबल का काबुल कन्दहार की लड़ाई में मारा जाना, अकबर का रमजानी को अपने बिस्तर के पास सोने के अपराध में बुर्ज से नीचे गिरवा देने और उसके बाद फतहपुर सीकरी को छोड़कर आगरा को स्थायी निवास बना लेने आदि बातों का उल्लेख है।

अकबर के व्यक्तिगत जीवन और मानसिक संघर्ष का परिचय पाने के लिए 'बीरबल' नाटक बड़ा उपयोगी है। इसमें लेखक ने अकबर के उदार रूप को बड़ी सुन्दरता से स्पष्ट किया है। साथ ही

उसकी विलास-वृत्ति और चंचल मन की स्थिति का भी दिग्दर्शन कराया है। मुल्ला दोप्याजा के लाख कोशिश करने पर भी अकबर उदारता को अपनाता है। उसका भारत-प्रेम तब प्रकट होता है, जब उसने एक दरबारी से महाभारत का फारसी में अनुवाद करने को कहा और उस दरबारी ने महाभारत की संस्कृत को कड़ा कहा। अकबर के उस समय के शब्द हैं –"महाभारत की संस्कृत दुश्वार है या तुम्हारा बुग्ज ? याद रखना, मैं कानों से देखता हूँ। हिन्द की संस्कृत से बुग्ज रखने वालों का मैं करारा दुश्मन हूँ। ××× मुसलमान होते हुए भी हिन्द की भाषा को अपनी भाषा, यहाँ की कलाओं को अपनी कला और यहाँ की संस्कृति को अपना अदब मानता हूँ।" (पृष्ठ ७१)। स्वयं वह वृन्दावन में गोविन्द देव का मन्दिर बनवाकर व्रजराज का भक्त ही नहीं होता, पशु-वध को भी बन्द करा देता है। जैन साधु और ईसाई पादरी को समान रूप से धर्म-प्रचार का अवसर देता है। बीरबल से वह एक स्थान पर कहता है—"बीरबल तुमसे बढ़कर मुझको पहचानने वाला और कोई नहीं। मेरा मन बहुत चल-विचल रहता है।" (पृष्ठ ८३)। यह बीरबल के प्रति उसकी आत्मीयता की पराकाष्ठा है। बीरबल की मृत्यु के समाचार के बाद वह अपनी प्यारी राजधानी फतहपुर सीकरी को ही छोड़ देता है।

अकबर के अतिरिक्त बीरबल और जसवन्त दो पुरुष-पात्र हमारा ध्यान और खींचते हैं। बीरबल तो अकबर की मूल प्रेरक शक्ति है। वह अपने व्यंग-बाणों से मुल्ला दोप्याजा को तो सदा परास्त करता ही है, अकबर का सुधार भी करता है। वह अकबर-रूपी मदमत्त हाथी के लिए अंकुश का काम करता है। गाँव में रामलीला और अकबर-दरबार की नकल देखकर अकबर जो सुधार करता है, वह सब बीरबल की सम्मति से। उसकी बातें बड़ी नपी-तुली होती हैं। वह अकबर की प्रशंसा करता है तो ऐसी, जिसमें सत्य तो हो, पर

खुशामद न हो। 'बीरबल' नाटक में बीरबल गंभीर विचारक और ऊँची सूझ-बूझ का व्यक्ति है। जसवन्त चित्रकार प्रेम के उच्चादर्श के लिए बलि होने वाला कलाकार है। भावुक इतना है कि अकबर की तनिक-सी झिड़की पर अपने जीवन को समाप्त कर लेता है। नारी-पात्रों में गोमती ही प्रमुख है। वह हसीना को अकबर के हरम से बचाने की कोशिश करती है और स्वयं भी वैसा ही संकल्प रखती है। जसवन्त की कला ही उसका जीवन-प्राण है।

छठा ऐतिहासिक नाटक **'ललित विक्रम'** है। इसकी कथावस्तु वही है, जो 'भुवन विक्रम' उपन्यास की है। यह नाटक उपन्यास से पहले लिखा गया था, अतः इसके पात्रों और नामों में कुछ अन्तर है। उदाहरण के लिए 'भुवन विक्रम' में जो भुवन है वही 'ललित विक्रम' में ललित है। 'भुवन विक्रम' का नील फणिश 'ललित विक्रम' में केवल नीलपणि है। 'भुवन विक्रम' में आरुणि और वेद के अतिरिक्त धौम्य का तीसरा शिष्य कल्पक है, जो 'ललित विक्रम' में कल्लक नामधारी है। 'ललित विक्रम' में स्त्री-पात्र केवल ललित की माँ ममता है, जब कि 'भुवन-विक्रम' में नील फणिश की कन्या हिमानी और अकाल-पीड़िता गौरी भी, जिसका कि विवाह भुवन से होता है। 'ललित विक्रम' की कथा में दीर्घबाहु और हिमानो तथा भवन और गौरी के प्रणय-सम्बन्धों का समावेश नहीं है, अतः कथा छोटी हो गई है। नाटक के लिए कथा का छोटा होना आवश्यक भी है। वैसे वर्माजी ने 'झाँसी की रानी' नाटक में विस्तृत कथा को भी कुशलता के साथ नाटक के अनुकूल बना लिया है। अस्तु,

'ललित विक्रम' के प्रारम्भ में मेघ और ललित में धनुर्विद्या के प्रसंग में खिचाव होता है। कारण है कपिंजल, जो नीलपणि का दास है। कपिंजल धनुष की प्रत्यंचा को दो अंगुल और खींचने की बात कहता है, जिसे मानने से ललित का लक्ष्य-बेध ठीक हो जाता है।

मेध को यह बुरा लगता है। वह कपिंजल पर भी अपना गुस्सा उतारता है और ललित पर भी। कपिंजल को नीलपणि बुरी तरह पीटता है और वह भागकर नैमिषारण्य में धौम्य का शिष्य हो जाता है। ललित के प्रति रोमक का पक्षपात देखकर मेध रुष्ट हो जाता है और अकाल-पीड़ित प्रजा को रोमक के विरुद्ध भड़काता है और बेचारा रोमक अपना सर्वस्व निछावर करने को तैयार हो जाता है, पर मेध दीर्घबाहु तथा नीलपणि से मिलकर रोमक को अपदस्थ करा देता है। रोमक और ममता दोनों ललित को आचार्य धौम्य के पास भेज देते हैं और स्वयं गाँव गाँव घूमकर जनता को समझाने में लग जाते हैं। उधर कपिंजल को पकड़ने नीलपणि के आदमी जाते हैं, पर वे आश्रम के नियमानुसार सफल नहीं होते। मेध के षड्यन्त्र से जनता में तीन बातें रोमक के विरुद्ध फैलीं शूद्र—तपस्या करते हैं, दासों को मुक्ति मिल गई है, और महापुरुषों का अपमान होता है। अन्त में बारह वर्ष के बाद वर्षा से अकाल दूर होता है और ललित स्नातक बनकर घर आता है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से ललित, रोमक, धौम्य और मेध के चरित्र पुरुष पात्रों में और ममता का स्त्री-पात्रों में अच्छे हैं। ललित सत्यवादी और निर्भीक है। प्रारम्भ में ही कपिंजल का पक्ष लेता हुआ मिलता है। मेध जब शिकायत करने आता है तब भी वह बीच बीच में सच बोलने से नहीं रुकता। यही नहीं, जनपद-समिति में भी वह मेध-जैसे ब्राह्मणों की भर्त्सना के लिए 'मनुस्मृति' को उद्धृत करता है। शिकार में एक हाँको करने वाले के प्रति उसका क्रोध अवश्य दिखाई देता है, पर धौम्य के आश्रम में तो वह आदर्श शिष्य बनकर ही रहता है। रोमक प्रजा-वत्सल, भावुक और अस्थिर-चित्त है। आकाशवाणी के रूप में मेध के छल को वह तब समझता है, जब धौम्य समझाते हैं। वैसे वह त्यागी और निस्पृही है। धौम्य उदार

और युगचेता गुरु हैं और मेध क्रोधी ब्राह्मण। शिष्यों में आरुणि और कपिंजल भी ध्यान खींचते हैं। ममता एक ओर आदर्श माता है तो दूसरी ओर पतिव्रता पत्नी। वह संकट में कभी नहीं घबराती और सदा रोमक को उत्साहित करती है। उद्देश्य वही है, जो 'भुवन-विक्रम' का है—"विवेक के साथ प्राचीन को जानो और समझो, वर्तमान को देखो और उसमें विचरण करो और भविष्य को आशा की प्रबल करो।" (पृष्ठ १२७)।

'जहाँदारशाह' उनका सातवाँ ऐतिहासिक नाटक है। वास्तव में इसका आकार एकांकी-जैसा है। एक प्रकार से एकांकी से छोटा ही है, क्योंकि 'कश्मीर का काँटा' एकांकी इससे बड़ा है। लेकिन एकांकी के लिए देश-काल की एकता अनिवार्य होने से इसे ऐतिहासिक नाटक लिखा गया है। नाटक में जैसे अंक और अंक के अन्तर्गत दृश्य होते हैं, ऐसा इसमें नहीं है। केवल आठ दृश्यों में जहाँदारशाह के जीवन की झलक दे दी है। इसे हम एक नया प्रयोग भी कह सकते हैं। हर दृश्य में स्थान-परिवर्तन और समय-परिवर्तन हुआ है जैसे किसी व्यक्ति के जीवन के 'स्नेप शाट्स' लेकर कोई फोटोग्राफर उसके जीवन की रूपरेखा बता देता है, ऐसे ही वर्माजी ने इस नाटक द्वारा जहाँदरशाह के असली जीवन की झलक दी है। पहले दृश्य में वज़ीर ज़ुलफिक़ार खाँ शाही प्रथानुसार बादशाह की आज्ञाओं पर दुबारा स्वीकृति ले रहा है। इसमें बंगाल के सूबेदार के नौबत-नकारे के साथ निकलने, सरहिन्द के सूबेदार के शाहंशाह की भाँति झरोखे से दर्शन देने और बिहार के हिन्दुओं के पालकी में बैठने की शिकायत पर बादशाह चाहे जैसा निर्णय देता है। इसीमें गायकों को मकान और लालकुँवर को दो करोड़ की जागीर भी देता है। दूसरे दृश्य में झरोखा-दर्शन के समय ज़ुहरा नाम की कुँजड़िन को आस-पास के लोगों के तंग करने की शिकायत पर एक दिन स्वयं तरकारी खरीदने का आश्वासन देता है। फिर हाथियों की लड़ाई में विजयी हाथी का महावत, एक शराब का

दुकानदार, एक मुल्ला और एक चौधरी आते हैं, जो क्रमशः इनाम कम मिलने, दुकान के कोतवाल द्वारा लूटे जाने, जकात के शिक्षा तथा धर्म के अतिरिक्त अन्य कार्यों में खर्च करने की शिकायत करते हैं और जज़िया माफ़ कराना चाहते हैं। इसी प्रकार अनेक विचित्रताओं का आगामी दृश्यों में भी उल्लेख है। जुहरा की दुकान पर लालकुँवर के साथ तरकारी खरीदने और शराब वाले के यहाँ शराब पीने के प्रसंग बड़े मज़ेदार हैं। जुहरा के तरकारी बेचने के समय गालियाँ सुनकर जहाँदाराशाह उसे हाथी पर अपने महल में आने का निमन्त्रण देता और खर्च की जिम्मेदारी स्वयं लेता है। शराब पीकर दोनों वहीं धुत्त हो जाते हैं और गाड़ीवान उठाकर लाता है। अन्त में फर्रुख़सियर द्वारा पकड़े जाकर उसका वध कर दिया जाता है। उसे पकड़वाने में वज़ीर ज़ुलफ़िकार के बाप का हाथ रहता है, जो काफी पैसा लेता है। इतना सनकी होने पर भी वह कोमल स्वभाव का होने से प्रजा को प्यारा था। पूरा नाटक मुसलिम बादशाहों के पतन पर व्यंग है सुरा-सुन्दरी ने उन्हें कहाँ पहुँचा दिया था, इसका पता इस नाटक से लगता है। वज़ीरों और दूसरे हाकिमों को अपना ओहदा प्यारा था—भले ही रोज़ बादशाह बदलें; और बादशाहत करती थीं लालकुँवर-जैसी सुन्दरी वेश्याएँ, जिनके सौन्दर्य पर बादशाह सब-कुछ निछावर करने को तैयार रहते थे।

विशेषताएँ

वर्माजी के इन सात ऐतिहासिक नाटकों में उत्तर-वैदिक काल के 'ललित विक्रम' से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में 'झाँसी की रानी' तक का एक लम्बा समय घेरा गया है। इसके बीच में विक्रम संवत् से १० वर्ष पूर्व से प्रारम्भ के 'पूर्व की ओर', ईसा की तीसरी शताब्दी के अन्त के 'हंस-मयूर', उसके बाद 'फूलों की बोली', सोलहवीं शताब्दी के 'बीरबल' और अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के 'जहाँदार-शाह' आते हैं। निश्चय ही लेखक के इन नाटकों में भारतीय इतिहास

के इतने समय का एक रेखाचित्र मिल जाता है। नाटकों के प्रारम्भिक परिचय से वर्माजी के इतिहास के गहन अध्ययन का पता चलता है। प्रसाद की भाँति उन्होंने भी उपलब्ध स्रोतों की सतर्कता से छान-बीन की है। इनमें 'ललित-विक्रम' उत्तर वैदिक-कालीन समाज की प्रकृति के साथ संघर्ष में विजयी होने और शिक्षा तथा अनुशासन की समस्या को हल करने का पथ बताता है। वह बताता है कि यदि तुम्हारे दाएँ हाथ में पुरुषार्थ हो, हृदय में धर्म हो तो बाएँ हाथ में विजय निश्चित रूप से रहेगी। समस्त संकीर्णताओं से ऊपर उठे बिना समाज का कल्याण सम्भव नहीं है, यही तो सन्देश है, जो 'ललित विक्रम' में है। 'पूर्व की ओर' और 'हंस-मयूर' में क्रमश : भारतीय संस्कृति की उदारता और समन्वयशीलता का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के रूप में अंकन हुआ है। इनके साथ ही 'फूलों की बोली' में पसीना ही स्वर्ण-रसायन का रहस्य है। 'बीरबल' में उपेक्षित या नगण्य समझे जाने वाले 'बीरबल' की महत्ता है, जिसे हिन्दी का पाठक पहली बार अनुभव करता है। 'जहाँदारशाह' यदि मुसलमान शासकों के पतन और गैरजिम्मेदारी का रेखाचित्र है, तो 'झाँसी की रानी' स्वराज्य के लिए अनवरत प्रयत्न का रंगीन चित्र।

कथावस्तु की इस विविधता में भी वर्माजी ने आदर्श शासक और स्वराज्य का सच्ची परिभाषा देने की चेष्टा की है। 'ललित विक्रम' के रोमक, 'पूर्व की ओर' के अश्वतुङ्ग, 'हंस मयूर' के इन्द्रसेन आदि पात्रों में हम इसी भावना को मूर्त्त पाते हैं। अकबर ने अपने को धीरे-धीरे कैसे सुधारा, झाँसी की रानी ने कैसे स्वराज्य के लिए लड़ाई लड़ी, आदि से हमें उच्चादर्शों की प्रेरणा मिलती है। 'फूलों की बोली' के माधव ने पसीने को—श्रम को जो स्वर्ण-रसायन कहा है वह उचित ही है, क्योंकि उसीसे जीवन-रथ राज-मार्ग पर सहज गति से प्रभावित हो सकता है। 'जहाँदारशाह' में एक मूर्ख विलासी की जो सनक है उस पर हम आश्चर्य-सा करते हुए उससे बचने की चेष्टा करते हैं।

उनके उपन्यासों की भाँति नाटक के नायकों में भी विवेक और संयम ही अपेक्षित बताया गया है। स्त्री-पात्रों में त्याग, तपस्या, पातिव्रत और प्रेरणाप्रद प्रेम की प्रधानता रही है। ममता, धारा, तन्वी, झाँसी की रानी, गोमती और लालकुँवर वेश्या तक में ये गुण विद्यमान हैं। ये नारियाँ अपने से सम्बन्धित पुरुषों पर शासन करती हैं—केवल सौन्दर्य के बल पर नहीं, प्रत्युत अपने महान् नारीत्व के बल पर। उपन्यासों की नारियों की भाँति ये भी संगीत तथा नृत्य-कला में कुशल और युद्ध तथा शासन-व्यवस्था करने में सक्षम हैं।

अपने नाटकों में वर्माजी ने संस्कृत-गर्भित भाषा से लेकर अरबी फारसी-मिश्रित और ग्रामीण भाषा तक का प्रयोग सफलता से किया है। व्यग्य और हास्य इनके उपन्यासों की विशेषता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि इनमें से अधिकांश नाटक अभिनेय है, जिनसे लेखक का रंगमञ्चीय अनुभव स्पष्ट होता है। जो कुछ बातें मञ्च पर न दिखाये जाने योग्य हैं उनमें लेखक ने छायाभिनय का सुझाव दिया है। 'बीरबल' में अकबर द्वारा कवियों और 'हंस मयूर' में चित्रपट-तारिकाओं के प्रेम का खोखलापन विशेष रूप से दिखाया है। सब नाटकों को मिलाकर देखें तो राष्ट्रीय एकता, कला, साहित्य और संस्कृति के साथ दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति, मस्तिष्क एवं शरीर की स्वस्थता. गार्हस्थिक जीवन की महत्ता तथा कर्तव्य-युक्त प्रेम का प्रतिपादन ही इन नाटकों का ध्येय है।

६. सामाजिक नाटक

वर्माजी के सामाजिक नाटक ये हैं—१—'धीरे-धीरे', २—'राखी की लाज', ३—'बाँस की फाँस', ४—'पीले हाथ', ५—'सगुन', ६—'नीलकण्ठ', ७—'केवट', ८—'मंगल सूत्र', ९—'खिलौने की खोज', १०—'निस्तार' और ११—'देखा-देखी।

'धीरे-धीरे' पहला नाटक है, जो कांग्रेस सरकार के सन् '३७ के मन्त्रि-मण्डल के समय की राजनीतिक स्थिति से सम्बन्ध रखता है। हमने इसे जान-बूझकर सामाजिक नाटकों के साथ रखा है। कारण, राजनीति और समाज को अलग नहीं किया जा सकता। हमारे देश में तो और भी नहीं, क्योंकि यहाँ साम्प्रदायिक, जातीय और प्रान्तीय तीनों प्रकार के अंधविश्वास लोगों को घेरे हुए हैं। आज की राजनीति तो जातिवाद पर आधारित है ही। दूसरी बात यह है कि इस नाटक में अप्रत्यक्ष रूप से समाज की स्थिति पर प्रकाश भी पड़ता है।

'राखी की लाज' में राखी की सुन्दर प्रथा को हिन्दू-समाज में बनाये रखने की भावना है। वर्माजी ने इस नाटक के विषय में लिखा है—"मैं राखी की सुन्दर प्रथा के चिरकाल तक जीवित रहने का आकांक्षी हूँ। स्त्री को शीघ्र आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी और स्त्री तथा पुरुष बराबरी पर आयेंगे। परन्तु स्त्री को सम्मान की दृष्टि से देखने का यदि यह एक अतिरिक्त साधन—रक्षा-बन्धन—समाज में बना रहे तो क्या कोई हानि होगी।" (परिचय, पृष्ठ ५)।

'बाँस की फाँस' कालिज के लड़कों की प्रेम-सम्बन्धी हल्की मनोवृत्ति की उचित दिशा से सम्बन्धित है। **'पीले हाथ'** में ऊपर से सुधारक और प्रगतिशील दिखने वाले ऐसे लोगों का खाका है, जो बारात में शान-शौकत और पुरानी प्रथाओं को नहीं छोड़ सकते। **'सगुन'** का

सम्बन्ध चोर-बाजार से है। **'नीलकंठ'** में वैज्ञानिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टिकोणों के समन्वय पर बल दिया गया है। **'केवट'** हमारी राजनीतिक दलबन्दी का पर्दाफाश करता है। **'मंगल सूत्र'** में पढ़ी-लिखी लड़की के साथ ऐसे लड़के के विवाह की कहानी है, जो उसके लिये नितान्त अयोग्य है। **'खिलौने की खोज'** में मनोबल को सबल बनाकर अनेक वैयक्तिक और सामाजिक समस्याओं को हल करने का सुझाव है। **'निस्तार'** का सम्बन्ध हरिजन-सुधार से है। **'देखा-देखी'** में दूसरों की देखा-देखी सामाजिक पर्वों या उत्सवों पर अपनी सीमा से अधिक व्यय करने पर व्यंग है।

इन नाटकों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—एक तो राजनीतिक या सामाजिक समस्याओं पर आधारित ऐसे नाटक, जिनमें स्त्री-पुरुष प्रेम को प्रधानता न देकर समाज की अन्य समस्याएँ ली गई हैं, दूसरे स्त्री-पुरुष-प्रेम पर आधारित वे नाटक, जिनमें या तो किसी आदर्श को लेकर चला गया है या मनोवैज्ञानिक गुत्थी को केन्द्र बनाया गया है ; और तीसरे वे नाटक, जिनका सीधा उद्देश्य भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय है। उनमें पहले वर्ग के नाटकों को **राजनैतिक तथा अन्य समस्या-प्रधान नाटक**, दूसरे वर्ग के नाटकों को **स्त्री-पुरुष-प्रेम-समस्या-प्रधान नाटक** और तीसरे वर्ग के नाटकों को **सांस्कृतिक समस्या-प्रधान नाटक** कह सकते हैं।

राजनीतिक तथा अन्य समस्या-प्रधान नाटकों के नाम हैं—'धीरे-धीरे', 'केवट', 'सगुन', 'देखादेखी', 'पीले हाथ' और 'निस्तार'। 'धीरे-धीरे' वर्माजी का पहला नाटक है। नाटक की कथावस्तु का सम्बन्ध सन् '३७ के कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों की पृष्ठभूमि से है। कांग्रेस को राष्ट्रीय संघ—राष्ट्र-संघ के रूप में रखा गया है। पूरे नाटक में तीन अंक हैं और दृश्य-विभाजन नहीं है। पहले अंक में एक जागीरदार की मानसिक स्थिति का चित्र है, जो भविष्य को

अन्धकारमय देखता है। वह एक ओर जमींदार-सभा का संगठन करता है और क्षत्रिय महासभा का कर्ता-धर्ता बनता है, तो दूसरी ओर राष्ट्रीय संघ वालों को भी साधे रहना चाहता है। नाम है राव गुलाबसिंह। इस दूसरे कार्य के लिए वह अपने कारिन्दे चन्दनलाल, दरबान बुद्धा और नौकरानी हीरा को राष्ट्रीय संघ या राष्ट्र-संघ का सदस्य बनने के लिए प्रेरित करता है। उनकी रानी साहिबा भी राष्ट्रीय संघ के साथ सहानुभूति रखती हैं। उतनी ही, जितनी कि उनका आभिजात्य उनको आज्ञा दे। कभी-कभी खद्दर पहन लिया या राष्ट्र-संघ को चन्दा दे दिया। गाँव में राष्ट्र-संघ की ओर से एक छोटा-सा पुस्तकालय खुलने वाला है, जिसके उद्घाटन पर राष्ट्र-संघ के देहाती नेता सगुनचन्द आते हैं। वे राव गुलाबसिंह से भी मिलते हैं। उनके यहाँ बढ़िया भोजन मिलता है, और चन्दे का आश्वासन भी। साथ ही पुस्तकालय के उद्घाटन के अवसर पर सम्मिलित होने का निमन्त्रण भी। दूसरे अंक में जो सभा इस उपलक्ष्य में होती है उसमें जनता अन्य बातों के साथ जंगल काटने का प्रस्ताव पास करती है। जंगल सबका है, पर जमींदार अपना किये हुए है। सभापतित्व सेठ धनीराम करते हैं, जिनकी जागीरदार से कुछ लाग-डाँट है। प्रस्ताव के बाद ही 'शुभस्य शीघ्रम्' के अनुसार जंगल काटना भी आरम्भ होता है। जमींदार के आदमी पहुँचते हैं। पुलिस आती है। पकड़ा-धकड़ी होती है। दोनों ओर से सरकार को तार दिये जाते हैं। तीसरे अंक में नेता सगुनचन्द जब कानून-सभा के एक मन्त्री से मिलने जाते हैं तो धक्के देकर निकाल दिये जाते हैं। दयाराम नामक एक साम्यवादी सदस्य जब जनता के कष्टों को दूर करने के लिए लड़ता है तो उससे कहा जाता है कि सब काम 'धीरे धीरे' होगा। राव साहब भी जाते हैं तो उनका भी मन भर दिया जाता है। हम गद्दी न छोड़ेंगे और स्वराज्य के आदर्श की प्राप्ति 'धीरे-धीरे' होगी, भले ही जनता मर जाय। यह इस नाटक के मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों की इच्छा है।

इस नाटक के सब पात्र अपने वर्ग के प्रतिनिधि हैं। राव साहब गुलाबसिंह जागीरदार हैं और चन्दनलाल कारिन्दा। उन दोनों की बातचीत में जमींदारों-जागीरदारों के कारनामों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। राव साहब स्वयं अपने को 'सुराजी' कहते हैं, लेकिन जमींदारों और जागीरदारों का संगठन करते हैं। समानता के व्यवहार का दावा करते हैं, पर किसानों-मजदूरों और निम्न जातियों से बेगार लेते हैं। वे समझते हैं कि जमींदारी मिटने से दान-प्रथा और ललित-कलाओं का नाश हो जायगा। वे हिन्दुस्तान की आज़ादी की छः बाधाएँ मानते हैं—पहली मुसलमानों की स्वार्थपूर्ण वृत्ति, दूसरी रियासतें, तीसरी हमारी आपसी फूट, चौथी जापान और जर्मनी की नीयत[1], पाँचवीं अंग्रेजों की कूटनीति, और छठी हिन्दुओं की कमज़ोरी। लेकिन उनका विश्वास है "हिन्दुस्तान को आज़ादी हमी दिलवा सकते हैं, परन्तु सब काम होता है धीरे-धीरे ही। सरपट दौड़ने से ठोकर लगती है, माथा फूटता है।" (पृष्ठ १८)। उनकी विचार-धारा का रूप यह है—"साहूकारों का ऋण हल्का हो जाय, सरकारी जंगल, नहर और रेल के अहातों की घास मुफ़्त मिलने लगे, कपड़ा सस्ता हो जाय और अनाज महँगा, सब लोगों को शिक्षा, सफाई इत्यादि के समान अवसर मिल जायँ तो देश को सिवाय पूर्ण स्वतन्त्रता के और किस चीज की कमी रह जाती है।" (पृष्ठ २९)। वे राष्ट्र-संघ के सदस्य नहीं बनते, क्योंकि 'मित्रों और अंग्रेजों के सामने किरकिरी होगी।' लेकिन कारिन्दा चन्दनलाल, दरबान बुद्धा तथा नौकरानी हीरा को उसका सदस्य बनवाना चाहते हैं और स्वयं चुपचाप ज़मींदार-सभा का संगठन करना चाहते हैं। जिससे दोनों पक्ष सध जायें। उसकी दृष्टि

---

१. सन् '३८ में जब यह नाटक लिखा गया था, तब जर्मनी का तानाशाह हिटलर और जापान दोनों संसार में अपना-अपना प्रभुत्व स्थापित करने के स्वप्न देख रहे थे।

में राष्ट्र-संघ और साम्यवाद का अन्तर है—"अंग्रेजों को डराने के लिए राष्ट्र-संघ और देश को डराने के लिए साम्यवाद। साम्यवाद दरिद्रों को रोटी और लीडरों की लीडरी की पुकार है और कोई अन्तर नहीं।" (पृष्ठ ३५)। और उदार दल 'पराजित आकांक्षाओं का श्मशान' तथा कुचले हुए हकों का अरक्षित खण्ड रहा है। चन्दनलाल कारिन्दा-वर्ग का प्रतिनिधि है। मुँह देखकर बात करने वाला। वही गुलाबसिंह को उकसाता है कि जंगल काटने पर पुलिस बुलाई जाय। कोई ऐसा कार्य नहीं जिसमें उसका हाथ न हो। वह राष्ट्र-संघ को चन्दा देने के पक्ष में भी नहीं है। वह गुलाबसिंह को उदार दल में सम्मिलित होने के लिए भी प्रेरित करता है। वह गुलाबसिंह को प्रतिष्ठा-रक्षा का ध्यान दिलाकर अपना भी उल्लू सीधा करता है। पुलिस को जो छः सौ रुपये रिश्वत देने को वह लेता है उसमें से खुद भी बचा लेता है। सगुनचन्द देहाती कार्यकर्ताओं का प्रतिनिधि है। वह जागीरदार के यहाँ खाना खाकर कुछ पिघल जाता है; वैसे वह भुने चने और गुड़ खाकर काम करने वाला है। चन्दा लेने के लिए अनशन तक करने को तयार हो जाता है। गाँव में वह पुलिस और जमींदार से लोहा लेता है। वही जब कानून-सभा से धक्के देकर निकाला जाता है तब राष्ट्र-संघ के सरकारी सदस्य और कार्यकर्ता का अन्तर मालूम होता है। किस प्रकार विधान-सभाओं में मन्त्री लोग सेक्रेटरी के हाथ की कठपुतली होते हैं, यह भी बहुत अच्छी तरह दिखाया है। "मैं न रहूँगा तो कोई और सही। परन्तु हमारे बिना किसी का काम नहीं चल सकता।" (पृ० ७३)। साम्यवादियों और राष्ट्रसंघियों में जो भेद है उसे दयाराम और गोपालजी तथा कन्हैया जी के संवादों में देख सकते हैं। दयाराम उनकी स्वार्थपरता और पूँजीवादी नीति की भर्त्सना यों करता है—"अब हमें जनता से कहना पड़ेगा कि अपने और पुरानी नौकरशाही में कोई अन्तर नहीं। आप पूँजीपतियों के दामनगीर हैं और जनता के शत्रु।" (पृष्ठ ९३)। नगर

के मुसलमान हिन्दुओं से द्रोह रखते हैं, पर गाँव के मुसलमान 'मादरे हिन्द' की इज्जत बनाए रखने के लिए सदा तत्पर हैं। ग्रामीण जनता जब उठती है तो फिर एकदम और कुछ नहीं देखती। जंगल काटने के लिए उद्यत एक ग्रामीण कहता है—"हम लोग लाठी-तलवार से नहीं लड़ते, कुल्हाड़ी से लड़ते हैं, क्योंकि वही हमारा सदा का हथियार है।" "× × हम कहते हैं, मारकर मरना है। आज ही मरेंगे और मारकर मरेंगे, यों ही नहीं मरेंगे।" (पृष्ठ ५१)। जब सगुनचन्द धीरज रखने के लिए कहता है तो एक दूसरा ग्रामीण उसे भी अपनी लपेट में ले लेता है—"ठहरें क्यों? तुम्हारी जलेबी को राजा ने कुछ शीरा पिला दिया हो तो तुम ठहरो!" (पृष्ठ ५३)। इस प्रकार तत्कालीन सत्ता-धारी, जागीरदार-जमींदार, पुलिस और ग्राम्य-जनता की ऐसी तसवीर इस नाटक में खींची गई है जो वर्माजी की राजनीतिक दृष्टि की गहराई को प्रकट करती है।

'केवट' राजनीतिक दलबन्दी के दुष्परिणामों पर प्रकाश डालता है। राजपुर नामक ग्राम में टीलेन्द्र और मेनाक क्रमशः अंग्रेज और अनुज दल के नेता हैं। इन दोनों में अपने-अपने दल को महत्ता देने की हठ है। डाक्टर गोदावरी नामक एक सम्पन्न महिला है, जो सेवा-दल बनाकर कार्य कर रही है। उसने कोढ़ियों की सेवा का भी व्रत लिया है। तुला नामक उसकी एक प्रिय सखी भी है, जो उसके साथ कार्य करती है। समाज-सेवा के लिए गोदावरी ने विवाह न करने का निश्चय कर रखा है। हिमानी नामक एक और महिला है, जो घृणित कार्यों में रत एक ऐसे दल की संचालिका है, जो आदमियों को मारकर उनका धन छीन लेता है। इस दल में एक मज़दूर सुमेर फँस जाता है। कारण, वह अपनी पत्नी के गहने-कपड़े नहीं बनवा पाता है। तो साम्य-वादी विचार-धारा का और अच्छा मूर्तिकार भी, पर वह अपनी पत्नी को सजा-सँवरा देखना चाहता है। रग एण्ड को० नामक एक दुकान इस हत्या की जड़ है, जो सिनेमा-अभिनेत्रियों के फ़ैशन की वस्तुओं के

कारण स्त्रियों के आकर्षण का केन्द्र है। सुमेर हिमानी के दल में फँस जाता है। हिमानी गोदावरी का विश्वास प्राप्त करके उसके सेवा-दल की सदस्या हो चुकी है। सुमेर और उसकी पत्नी खेमा को वह सब्ज बाग दिखा ही चुकी थी। एक दिन अग्रज और अनुज दल में फुलट्टी गली के नामकरण को लेकर झगड़ा होता है। वहाँ गोदावरी भी अपने सेवा-दल को लेकर उपस्थित है। हिमानी इस अवसर से लाभ उठाकर अपने दल के लोगों को लूट-मार के लिए संकेत करती है और तुला के गले का हार लेने का प्रयत्न करती है। तभी पुलिस आ जाती है और तुला पुलिस की गोली का शिकार हो जाती है। गोदावरी को तुला की मृत्यु से जो धक्का लगता है, उससे उसकी स्मृति जाती रहती है—इतनी ही कि उसे अपना नाम और घर आदि का पता नहीं रहता। वह पूर्व योजना के अनुसार खेमा के घर में ले जाकर रखी जाती है, जहाँ उसके द्वारा खेमा का उपचार किया जाता है। हिमानी अपने दल वालों से तुला की लाश को जलवा देती है और तालियाँ अपने कब्जे में करती है। वह तुला की चिता-भस्म पर एक चबूतरा भी बनवा देती है। उस क्षेत्र का किन्नर नामक प्रभावशाली नेता भी उससे प्रभावित हो जाता है। वह सुमेर के घर में उसका खूब स्वागत करती है किसी को उसके ऊपर सन्देह नहीं होता। एक दिन गोदावरी रात को उन्माद-ग्रस्त होकर तुला के चबूतरे पर जा पहुँचती है। उसे लेने के लिए सुमेर हिमानी आदि जाते हैं। वहाँ से गोदावरी को उसके निजी घर पहुँचाने का निश्चय किया जाता है, क्योंकि अब शंका की कोई बात नहीं रही। हिमानी और सुमेर पहले आ जाते हैं और गोदावरी का दराज खोलकर रुपये निकाल लेते हैं। वे तुला की मूर्ति को, जिसे गोदावरी ने सुमेर से बनवाया था, मेज पर रख देते हैं और गांधीजी के चित्र को उलटा कर देते हैं। जब गोदावरी आती है तो मूर्ति को देखकर उसकी लुप्त स्मृति लौट आती है और उसे वस्तुस्थिति का ज्ञान होता है। हिमानी इसे देखकर खिसक जाती है और दल के लोगों के साथ रफू-

चक्कर हो जाती है। तुला के चबूतरे पर गोदावरी की मूर्ति स्थापित करने का आयोजन होता है, जिसमें गोदावरी अपनी ही मूर्ति को खण्डित कर देती है। मूर्ति का उद्घाटन तो नहीं होता, पर एक झाड़ अवश्य किन्नर के झोले से निकलती है, जो दलबन्दी की सफाई के प्रतीक के रूप में है। टीलेन्द्र और मेनाक अब भी एक नहीं होते और सभा-स्थल को छोड़कर चल देते हैं। अन्त में 'सेवक-सेना' के निर्माण के लिए तैयारी की जाती है। किन्नर विधान-सभा से त्याग-पत्र देकर सेवा के कार्य में जुट पड़ते हैं। मुकन्द नामक छात्र-प्रतिनिधि सबसे पहले सुमेर और खेमा का नाम 'सेवक-सेना' की सूची में लिखता है। उसके बारे में गोदावरी कहती है—"यह और इसका वर्ग है हमारी नाव का केवट, यदि वह समझ और सयम से काम ले।"

इसमें राजनीति की वर्तमान घातक स्थिति का चित्र है। देश में टीलेन्द्र और मेनाक-जैसे व्यक्ति नगर-नगर और गाँव-गाँव में हैं, जो केवल नाम के लिए लड़ते हैं। मुकुन्द ने ठीक ही कहा है—"देश में और कोई काम करने के लिए नहीं रह गया, इसलिए नाम पर मिटे जा रहे हैं।" (पृष्ठ ४५)। वे तुला-जैसी समाज-सेविकाओं के बलिदान पर भी अपनी क्षुद्रता नहीं छोड़ते। ऐसे लोगों के कारण हमारी समस्त योजनाएँ असफल हो रही हैं। किन्नर के शब्दों में रोटी-कपड़े की समस्या राजनीति और अर्थ-नीति के ज़रिये हल होगी, जो आपसी झगड़ों के मारे तय नहीं हो पा रही। लेकिन आपसी झगड़ों को हम तब तक तय नहीं कर सकते जब तक कि हम सत्ता और सेवा दोनों को साथ लेकर चलते हैं। गोदावरी का यह कथन कितना सत्य है—"राजनीति और सेवा साथ-साथ नहीं हो सकती।" (पृष्ठ १०३)। इसलिए जब किन्नर देखता है कि दो घोड़ों पर सवार बने रहने से समस्या हल नहीं होती, तो वह अपने पद से त्याग-पत्र दे देता है। और 'सेवक-सेना' बनाता है। उसकी दृष्टि में "समाज में धन-मोह, मद-मोह, वासना-मोह, बहुत फैल गया है, समाज का संतुलन बिगड़ गया है, उसके सँभालने के लिए जरूरी है कि सेवकों की एक सेना बनावें;

उसे नियम, अनुशासन और सेवा का नमूना बनावें —ऐसी सेवा का नमूना कि जिसके बदले में सेवक कुछ न चाहें।" (पृष्ठ १११)। झाड़ू प्रतीक है गन्दगी दूर करने का। न केवल अपनी गन्दगी, बल्कि पड़ोस, गाँव, नगर और देश की गन्दगी। इसीसे हमारा जीवन स्वच्छ हो सकेगा, जो लोग पद-मोह के मारे दलबन्दी किये बैठे हैं उन्हें हमारी झाड़ू लज्जित करेगी।" (पृष्ठ ११६)। दूसरों के काम पर अपनी प्रतिष्ठा की प्रवृत्ति की निन्दा गोदावरी द्वारा की गई है। अपनी मूर्ति को स्वयं तोड़ने का कारण यह है कि "हम मूर्ति खड़ी करके अपनी जिम्मेदारी, अपनी आस्था, सिद्धान्त-निष्ठा और मूर्ति के गुणों के अनुसार बस छुट्टी पा लेते हैं। कुछ दिन मूर्ति की पूजा करके मूर्ति के नाम तक को भूल जाते हैं। यह क्षणिक पूजा कैसी? दलबन्दी की कीचड़ में लथ पथ होकर आप समझते हैं कि हमने गंगा-स्नान कर लिया और सब उस मूर्ति के पूजन के और भी अधिकारी हो गए। पर असल में आप अपनी दलदल को उस मूर्ति का दर्पण-भर बनाते हैं, इसलिए खूब सोच-समझकर मैंने यह मूर्ति तोड़ डाली। यदि मुझमें कुछ है तो मैं तुला के श्मशान में प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं आजन्म सेवा करूँगी।" (पृष्ठ ११८)। छात्र-नेता मुकुन्द में उसका विश्वास उचित ही है। हिमानी को भी वह क्षमा करती है। सुमेर-खेमा उसके अनुयायी होते हैं। दलगत राजनीति के कारण हमारी जो अधोगति हो रही है उसके लिए पद-मोह-त्याग और सेवा इन दो की ही आवश्यकता है। फिर हिमानी जैसी हत्यारिन और टीलेन्द्र और मेनाक-जैसे समाज-द्रोही स्वतः पलायन कर जायँगे। इस नाटक में स्वप्नावस्था में विचरण 'सोम्नेम्ब्यूलिज़्म' और स्मृति लुप्त होने की समस्या से कौतूहल उत्पन्न किया गया है, जो मनोवैज्ञानिकों के काम की वस्तु है। 'अमरबेल' उपन्यास के नायक दिलीपसिंह के साथ भी यही होता है।

'सगुन' कुबेरदास सटोरिये और चोरबाजारिये की कहानी है। कुबेरदास एक बड़ा पूँजीपति है। वह चाहता है कि बड़ी-से-बड़ी

कम्पनियों का मालिक हो जाय। इसलिए वह प्रकाशन-संस्थाओं पर भी कब्जा कर लेना चाहता है। वह चाहता है कि सारा धन उसके पास रहे। इसके लिए वह अपने रिश्तेदारों को ही नौकर रखता है। इनकम-टैक्स देने से बचने का यह सबसे अच्छा बहाना है। वह अपने रिश्ते-दारों के नाम दान या उपहार-स्वरूप चाहे जितना लिख देता है और उनकी रसीद या तो देता नहीं, या झूठी देता है। एक फिल्मतारिका गजरा बी० ए० से शादी करके ५० लाख की सम्पत्ति उसके नाम लिख देता है, ताकि व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में इतने पर इनकम-टैक्स न देना पड़े। इसके लिए वह अपने मुख्य मुनीम चोखेलाल को भी बरबाद करने में नहीं चूकता। वह बेचारा एक दियासलाई के कारखाने में हिस्सेदार बना दिया जाता है, जिसमें लाभ नहीं होता। लेकिन इनकम-टैक्स-आफीसर से वह बच नहीं पाता। टिकैतराय नामक जिस युवक को, उसने अपनी प्रशंसा में लेख लिखने के लिए रखा था, उसने उसका भण्डाफोड़ किया ; क्योंकि उसके नाम सेठजी ने जो दस हजार रुपये अपनी उदारता-स्वरूप देने के लिए लिख रखे थे उसकी रसीद नहीं थी। टिकैतराय ने इनकम-टैक्स आफीसर से भी साफ कह दिया कि मुझे रुपये नहीं मिले। गजरा भी तलाक के बहाने स्त्री-धन के रूप में ५० लाख ले जाती है।

कुबेरदास और उनके वर्ग के अन्य पूँजीपति 'गंगा गए गंगादास और जमुना गए जमुनादास' के सिद्धांत को मानकर हर राष्ट्रीय या धार्मिक विचार-धारा से अपने को मिलाये रखते हैं। नौकरी के लिए बुलाये जाने वाले उम्मीदवारों में से, जो साम्यवादी है, उससे साम्यवाद के साथ अपनी सहानुभूति की बात कहते हैं और जो राष्ट्रवादी है उससे राष्ट्रवादी होने का ढोंग भरते हैं। गजरा के साथ विवाह करने का कारण सौन्दर्य या लावण्य की उपासना के कारण नहीं, बल्कि इसलिए कि उसके सहारे व्यवसाय चमक सकता है। लेकिन ज्योतिष ऐसे लोगों के साथ जन्म से आई है। जब वे गजरा से विवाह की बातचीत के लिये चलते हैं तो पहले बिल्ली रास्ता काटती है। फिर

दायाँ हाथ फड़कता है और पानी-भरा घड़ा मिलता है। एक असगुन है और दो सगुन। फिर भी बेचारे मोटर रोक देते हैं। जब गजरा इनकम-टैक्स के दफ्तर को जाने को होती है तो कहते हैं—"इनकम-टैक्स यहाँ से दक्षिण दिशा में है। दिशाशूल आज पीठ पर है। आप लोग विजय प्राप्त करके लौटेंगे।" (पृष्ठ २४०)। टिकैतराय और चोखेलाल भी सगुन-असगुन का विचार करते हैं। (पृष्ठ ४०)। गजरा-जैसी तितलियाँ ही इनको हाथ लगाती हैं, जो इनका सफाया कर जाती हैं और ये देखते रह जाते हैं।

'देखा-देखी' का आधार यह भावना है कि आजकल आय से व्यय अधिक होने के कारण समाज में भ्रष्टाचार, रिश्वत, बेईमानी और अन्य बुराइयाँ फैल रही हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पाश्चात्य प्रथाओं ने भी हमारे परिवारों में अपना अड्डा जमा लिया है, जिनमें जन्म-दिन मनाने की प्रथा भी है। उस पर बर्थडे केक—मोटे रोट—के साथ अपनी छीतरी[1] का विधान भी चलता है। इस अवसर पर लोग जितना व्यय करते हैं उसमें एक अच्छा विवाह हो सकता है। प्रस्तुत नाटक में चाँदीलाल नामक एक दफ्तर का बड़ा बाबू, जिसे ढाई सौ रुपया वेतन मिलता है, अपने लड़के नरसिंह के जन्म-दिन पर सात सौ-आठ सौ का तो कपड़ा ही खरीद लेता है। पत्नी इन्द्रानी इस अवसर पर सिने-तारिका-जैसी दिपना चाहती है। इस अवसर के लिए एक सोने का हार न हो तो कैसे काम चले। यद्यपि दो सौ रुपये रिश्वत के भी आये हैं, पर और काम भी तो है। हरनारायण नामक अपने मित्र से, जो कंजूस और चादर देखकर काम करने वाला है, सलाह करके चाँदीलाल जर्मन गोल्ड का एक हार मँगाने का प्रबन्ध करता है। नाच-गान, आतिशबाजी, धूम-धड़ाका सब होता है। लेकिन दूसरे दिन सरकार की ओर से जवाब-तलब होता है कि इतना खर्च

१. डलिया। जन्म-दिन के उत्सव पर छीतरी में भी पैर रखाया जाता है। पैदा होने पर तो छीतरी पूजी हो जाती है।

कहाँ से किया ? कर्जदारों के तकाजों का भय भी होता है। घबराकर मकान बेचना पड़ता है। मकान खरीदता है पड़ौस का बढ़ई चिमनलाल। लेकिन दूसरे वर्ष चिमनलाल के लड़के वीरू का जन्म-दिन भी उसी धूम-धाम से मनाया जाता है। चिमनलाल असली सोने का हार बनवाता है, जिस पर वीरू की माँ को गर्व है। चिमनलाल का खर्च भी खूब होता है। वीरू की माँ, जो चाँदीलाल के यहाँ कुर्सी पर नहीं बैठ सकती थी, लिपिस्टिक से शोभित है। सब ठाठ अमीरों के-से हैं। यही देखा-देखी है।

वर्माजी ने हरनारायण नामक पात्र द्वारा दूसरों की देखा-देखी अपनी सीमा से अधिक खर्च करने का मज़ाक उड़वाया है। उसके शब्दों में "यही कहलाता है घर-फूँक तमाशा देखना। बड़ों की देखा-देखी हो रही है यह सब, जन्म-दिवस के तमाशे से लेकर ब्याह-शादी वगैरा की धूम-धाम तक देखा-देखी में चढ़ा-बढ़ी हो रही है। विनाश की ओर चले जा रहे हैं हम लोग। कान फूटे जा रहे हैं इन पटाखों के मारे। समाज की जड़ों में देखा-देखी की सुरंगें लग रही हैं।" (पृष्ठ ५७)।

रिवाजों और फैशन की खिचड़ी, जो सब जगह चल रही है, बड़ी घातक है। जब चिमनलाल अपने हार को असली सोने का बताता है तो वह कहता है—"असल तो वह है जो अखीर तक बना रहे, देखा-देखी में असल हो ही कितना सकता है।" (पृष्ठ ५८)।

'पीले हाथ' में एक ऐसे सुधारवादी की कहानी है, जो अपने लड़के के विवाह में दहेज या लेन-देन की बात नहीं करता, पर जब बरात बेटी वाले के यहाँ है तब वह खातिरदारी के लिए उसके साथ अवांछनीय व्यवहार करता है। वर्माजी के शब्दों में समाज में स्त्री के निम्न पद के कारण ही ऐसी खातिरदारी का समर्थन किया जा सकता है। इस नाटक में गयाप्रसाद बेटे वाला है और वंशीलाल बेटी वाला। लड़के का नाम वीरेन्द्र है और लड़की का निर्मला। लड़की

पढ़ी-लिखी है और लड़के को पसन्द है। लड़की का पिता शिष्टाचार-वश बरात थोड़ी लाने की प्रार्थना करने के लिए आता है। शेष सारे उत्तरदायित्व वंशीलाल लेने को तैयार हैं। विवाह के समय आतिश-बाजी तो बन्द है, पर एक फूल और पटाखे का प्रबन्ध होना अनिवार्य है। वंशीलाल इस पर कहता है—"रीति-रिवाजों के विराट् रूप टूट जाते हैं, परन्तु वे अपना भद्दापन और बेहूदापन एक बहुत छोटे ही रूप में क्यों न हो, चिरकाल के लिए छोड़ जाते हैं।" (पृष्ठ ८)। इस पर गयाप्रसाद का क्रोध देखिए—"ठीक ठहराव नहीं किया, दहेज नहीं लिया, बारात का रेल-किराया ठुकरा दिया, कह दिया कि बरात बहुत थोड़ी लाऊँगा। द्वार-चार के समय के लिए एक फूल और एक पटाखे की रीति-निभाव के लिए कही तो ये सुधारवादी उसमें भद्दापन और बेहूदापन सूँघते हैं।" (पृष्ठ वही)। अपने लड़के के विवाह का निमन्त्रण-पत्र रेशमी रूमाल पर, चटकीली स्याही में भड़कीली कविता के रूप में छपवाते हैं। बेचारा बीमार केदारनाथ लाख मना करता है, पर शान के लिए उसे बरात में ले ही जाते हैं, जो जनवासे ही में चल बसता है। उसे मोटर से पहुँचाने के लिए प्रबन्ध भी गरीब वंशी-लाल को ही करना पड़ता है। नाच-गान का प्रबन्ध जो हुआ उसमें। नृत्यकार था स्त्री-वेशधारी एक मुछ्गड़। झगड़ा इस बात पर होता है कि बरातियों की सुविधा के लिए बेचारे वंशीलाल ने जनवासे में खाने के प्रबन्ध की बात कह दी। यह पुरानी प्रथा के विपरीत थी, जिसे सुधारक गयाप्रसाद कभी नहीं सह सकता था। यही नहीं वे समधिन के हाथ की रसोई खाने की इच्छा प्रकट करते हैं। इससे तो अच्छा था कि सुधारवादी होने का ढोंग भी न रचा जाता।

इस नाटक में वर्माजी ने वीरेन्द्र के मित्र सोहनपाल से वह काम लिया है, जो 'देखा-देखी' में चाँदीलाल के मित्र हरनारायण से लिया है। उसके चुटीले व्यंगों से गयाप्रसाद की प्रगतिशीलता और सुधार-वाद की धज्जियाँ उड़ जाती हैं। स्त्री-वेशधारी मुछंगड़ के नाच पर वह

कहता है—"क्षमा करें मुझे बाबूजी, जिस वेश्या-नृत्य को हम लोगों ने ब्याह-बरातों से निकाल दिया है वह क्या कुछ इसी प्रकार की भावना से नहीं देखा जा सकता था ? उसमें कुछ कला थी ?" (पृष्ठ १६)। अभिनन्दन की प्रथा पर उसकी टिप्पणी है—"अभिनन्दन की प्रथा बहुत अच्छी चल पड़ी है। लड़की वाला छोटा और लड़के वाला बड़ा, यह कल्पना हमारे रक्त के कण-कण के परमाणु-परमाणु में व्याप्त है।" (पृष्ठ २३)। हरनारायण के बारे में वंशीलाल का मत है—"विकट शब्दों का व्यवहार करते हुए भी बात सार की कहते हैं।" (पृष्ठ २८)। और निर्मला कहती है—"उसकी सनक में सार है।" (पृष्ठ ३३)। हरनारायण के बाद निर्मला आती है। वह उच्च शिक्षा प्राप्त होने पर भी जब तक अपने पिता की अनुमति का पता नहीं लगा लेती, वीरेन्द्र के प्रेम-प्रदर्शन पर ध्यान नहीं देती। वह स्त्री की दुर्दशा का कारण उसकी आर्थिक परतन्त्रता को मानती है। उसका विचार है कि यदि स्त्रियों को शिक्षा के साथ शिल्प और उद्योग-धन्धे सिखाए जायँ तथा डाक्टरी की शिक्षा दी जाय तो शायद समस्या सहज हो जाय। अन्त में वह भी शिक्षिका हो जाती है। वंशीलाल विनम्र, संयमी और स्वाभिमानी है। लड़की वाला होने से दबा रहता है, पर उसकी नगर में प्रतिष्ठा है। गयाप्रसाद तो ढोंगी है ही। इस छोटे-से नाटक में वर्माजी ने स्त्रियों की परतन्त्रता के मूल कारण पर सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है।

'निस्तार' का सम्बन्ध हरिजनों की समस्या से है। नाटक की रचना का कारण लेखक ने यों दिया है -"अछूत अपनी ईमानदारी और शूरवीरी के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। ऐसे भी लोग पिछड़े बने रहें—उनकी पूजा केवल धन-राशि बटोरने के लिए की जाय—यह हमारे समाज के लिए महा कलंक की बात है।" (परिचय, पृष्ठ २)। इसमें मुख्य रूप से दो समस्याओं को उठाया गया है—एक तो कुओं से पानी भरने की और दूसरी मन्दिर-प्रवेश की। कथा इस प्रकार है—राजापुर

नामक गाँव में एक कुआँ है, जिससे हरिजनों को पानी मिलता है। पानी के लिए गाँव के सरपंच बरसातीलाल, पण्डित जटाकिंकर आदि ने एक कहार रख दिया है। एक दिन नन्दू हरिजन बालक अपनी माँ चाई के साथ कुए पर खड़ा-खड़ा ऊब उठता है, क्योंकि उसे स्कूल को देर हो रही है। जो कहार नियत किया गया है उसका पता नहीं है। दूसरा कहार आता है, पर वह पानी नहीं देता। इस बीच जटाकिंकर का नौकर चाई को बुरा-भला कह जाता है। नन्दू ऊबकर कुए पर चढ़ता है। पीछे से उसकी माँ भी चढ़ती है। एक घड़ा पानी निकालती है कि लोग आ जाते हैं और उसका घड़ा फोड़ देते हैं। सुधारक उपेन्द्र (जो ब्राह्मण है) और भक्त रामदीन (जो हरिजन है) इस बात पर जटाकिंकर से तन जाते हैं। हड़ताल की नौबत आ जाती है। लीलाधर नामक हरिजन एम० एल० ए० भी इस आन्दोलन में प्रमुख भाग लेता है। बरसातीलाल टाउन एरिया का चेयरमैन है। वह चाहता है कि किसी प्रकार हड़ताल न हो। जटाकिंकर का भी ऐसा ही मत है। ऊपर से सभा में प्रस्ताव और समझौते की भावना द्वारा और अन्दर से जटाकिंकर की छोटी बहन कादम्बिनी द्वारा नैतिक बल का प्रयोग करके समस्या का हल सोचा जाता है। उधर मन्दिर की समस्या भी जोर पकड़ती है। मन्दिर में पुजारी भोलानाथ है, जो हरिजनों को अन्दर नहीं आने देता। रामदीन के भक्ति-भावपूर्ण पदों से सबको रोमांच हो आता है, पर बेचारा ड्योढ़ी के भीतर नहीं जा पाता। जटाकिकार की छोटी बहन कादम्बिनी की सहानुभूति हरिजनों से है। वह बापू के सिद्धान्तों की अनुयायिनी है। नन्दू को घर पर पढ़ाती है और इस सघर्ष में अपने बड़े भाई जटाकिंकर को हरिजनों के प्रति नरम नीति ग्रहण करने की प्रेरणा देती है। लीलाधर की उत्तेजना में आकर कुए पर लड़ाई होने को होती है कि कादम्बिनी बीच में पड़कर हत्या-काण्ड को रोक देती है। जटाकिंकर वाला वह कुआँ, जिस पर झगड़ा हुआ था, अब पण्डित वाला कुआँ न रहकर तरन-तारन हो गया और हरिजन उसका उपयोग करने लगे। उपेन्द्र, कादम्बिनी, सवती

आदि ने अब नालियों की सफाई आदि का कार्य लिया। लीलाधर उग्र है ही। चाहता है कि हरिजन सभी कुओं का समान रूप से उपयोग करें। यह बात चल ही रही है कि मन्दिर में एक दिन जुलूस बनाकर पहुँच जाते हैं। बरसातीलाल और जटाकिंकर प्रतिरोध करते हैं। बरसाती की लाठी से चाई बेहोश हो जाती है। अन्त में बरसातीलाल को क्षमा कर दिया जाता है और उससे कुओं से पानी खींचने-भरने की छुट्टी, मन्दिर-प्रवेश के निषेध का पूर्ण-त्याग और हरिजन-बस्ती के सुधार इत्यादि के लिए आर्थिक सहायता तथा चाई की सेवा का वचन ले लिया जाता है। वह अपने पास से पाँच हजार रुपये की सहायता हरिजन बस्ती के सुधार के लिए देता है। कुछ रुपया पंचायत-कोष से मिलता है। सब मिलकर स्वतन्त्रता-दिवस मनाते हैं।

इस नाटक में उपेन्द्र का चरित्र विशेष महत्त्व का है। वह ब्राह्मण होते हुए भी हरिजन-उद्धार के कार्य में जी-जान से लग जाता है। बापू का सच्चा अनुयायी है। नन्दू को अपने खर्च से उच्च शिक्षा दिलाने का प्रण करता है और सारे गाँव की फिजा बदल देता है। लीलाधर हरिजन एम० ए० ए० और अतिवादी है। वह उपेन्द्र से पूछता है—"हम सब बरसाती और जटाकिंकर सरीखे-धूर्तों तथा ढोंगियों की गालियाँ जन्मभर खाते रहें ? चाँटे का जवाब चाँटे से क्यों न दिया जाय ? क्या कहते हो।" (पृष्ठ ४१)। वह जटाकिंकर के लट्ठधारियों की परवाह न करके कुए पर चढ़ जाता है। वह पत्थर पर हथौड़े की चोट करने वाला है। उसमें प्रतिहिंसा-प्रवृत्ति प्रबल है। बरसाती सचमुच धूर्त है। वह चुनाव-सूची ऐसी बनवाता है, जिसमें हरिजनों के नाम न हों। रामदीन को झोंपड़ी में बन्दूक रखवाकर उसे व्यर्थ पकड़वाना चाहता है। जटाकिंकर समझदार है और समय के अनुसार चलता है। रामदीन भक्त-प्रकृति का है। बच्चों में नन्दू अपनी माँ के कार्य में ही हाथ-बटाता है, अपनी गुरुआनी कादम्बिनी के प्रति भी श्रद्धा रखता है। वह उससे संस्कृति शब्द तक के अर्थ पूछता है। इससे

स्पष्ट है कि यदि सुविधा मिले तो इस पिछड़े वर्ग में भी अच्छे लोग नि-ल सकते हैं। कादम्बिनी स्त्री-पात्रों में आदर्श है। देखा जाय तो अपने कट्टरपंथी बड़े भाई को वही सुधारती है। नन्दू को घर के भीतर बुलाकर पढ़ाती है। साथ सफाई आदि के कार्यों में उपेन्द्र का साथ देती है, लड़ाई के बीच पहुँच जाती है, नगर की स्त्रियों के आक्षेपों से सत्य-पथ नहीं छोड़ती, उसका प्रभाव रामदीन, मोहना आदि हरिजनों पर सबसे अधिक है।

इस नाटक में कानून बन जाने के बाद की स्थिति में हरिजनों के संघर्ष की कहानी है। लेकिन छुआछूत को मिटाने के लिए केवल कुओं पर पानी भरना या मन्दिर-प्रवेश ही पर्याप्त नहीं है। उसके लिए हरि-जनों की आर्थिक कठिनाइयाँ हल हों, रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो, स्वास्थ्य सुधरे, साथ ही टट्टी-सफाई से उनको मुक्ति मिले। इसके लिए वर्माजी न नगर नगर, गाँव-गाँव म शौच-कूपों सैप्टिक टैंक टट्टियों— का निर्माण आवश्यक माना है। एक ओर अस्पृश्यता-निवारण का कार्य जारी रहे और दूसरी ओर ऐसे शौच-कूप भी बनते जायँ तो यह समस्या काफी हद तक हल हो सकती है। लीलाधर की भाँति केवल विधान-सभा में सीट सुरक्षित होने या नौकरियों में जनसंख्या के अनु-पात से पद देने से उतना काम न होगा जितना दीन-दरिद्रों और हरि-जनों की आजीविका के लिए कुटीर-उद्योगों, बड़े कारखानों, खेती की भूमि का उचित प्रबन्ध होने से। क्योंकि यह समस्या काफी उलझी हुई है।

स्त्री-पुरुष-प्रेम-समस्या-प्रधान नाटक इस प्रकार हैं—(१) 'राखी की लाज', (२) 'बाँस की फाँस', (३) 'मंगल सूत्र' और (४) 'खिलौने की खोज'। **'राखी की लाज'** नाटक का कथानक हमारी रक्षा-बन्धन की सांस्कृतिक परम्परा पर आधारित है। इसको कथा बाँसी नामक गाँव की है। मेघराज नामक एक सपेरा है, जो डाकुओं के दल में फँस जाता है। वस ही, जैसे 'केवट' का सुमेर हिमानी के दल में फँस गया था।

डाकू उसको बाँसी गाँव के धनिकों और बन्दूक आदि हथियारों का पता लगाने को नियुक्त करते हैं। वह सपेरा है इसलिए खेल दिखाने के नाते अपनी चतुराई से पता लगा लेता है कि पं० बालाराम का घर सबसे सम्पन्न है और गाँव में पाँच बन्दूकें हैं। डाकुओं का सरदार निश्चय करता है कि कजरियों वाले दिन वह स्वयं सपेरे के वेश में स्थान देख आयगा। कजरियों के मेले में मेघराज सादे वेश में आता है और बालाराम की लड़की चम्पा उसे राखी बाँध देती है। मेघराज कहता है—"आज से बेटी तुम मेरी धर्म की बहन हुईं।" (पृष्ठ २५)।

उसी दिन रात को डाका पड़ता है। उन डाकुओं के साथ मेघराज भी आता है लेकिन जब उसे पता चलता है कि यह चम्पा –उसकी धर्म-बहिन का घर है तो वह डाकुओं के विरुद्ध हो जाता है। इस पर डाकू उसे बाँधकर ले जाते हैं। सरदार उस पर लांछन लगाता है कि तुम एक लड़की के प्रेम में पड़कर भ्रष्ट हो गए। इस पर वह कहता है—"मेरी मौज ने मुझको सपेरा और आवारा बनाया, परन्तु वह मौज बहन को पहचानने और बचाने से न रोक सकी।" (पृष्ठ ३७)। डाकू उसे पेड़ से बाँधकर मारते हैं और गाँव के लोगों का पीछा करने पर मरा हुआ छोड़ जाते हैं। गाँव के लोग उसे लाते हैं और चम्पा के घर रखते हैं। चम्पा उससे कहती है "भैया सावधान! कोई बात मुँह से ऐसी न निकले जिससे पहचान लिए जाओ। मेरे मुँह से कभी कुछ न निकलेगा।" (पृष्ठ ४१)। इसके बाद थानेदार तलाशी के लिए आता है। पूछ-ताछ होती है। थानेदार द्वारा मेघराज और चम्पा के अनुचित सम्बन्ध की बात कही जाती है तो वह निर्भीक वाणी में कहती है - "कोई धमकी मुझको मनचाहा कहलाने के लिए विवश नहीं कर सकती। मैं तैयार हूँ। आप मेरे भाई को सता नहीं सकेंगे। लीजिये मेरा बयान, जहाँ लेना हो।" (पृष्ठ ६७)।

चम्पा सोमेश्वर की ओर झुकी हुई है इसलिये उसने सोमेश्वर को राखी नहीं बाँधी और न कजरियाँ ही दीं। करीमन इस भेद को

जान लेती है। सोमेश्वर और करीमन का भाई चाँदखाँ दोनों हैजे में गाँव की वैसी ही सेवा करते हैं जैसे 'संगम' उपन्यास में प्लेग के समय रामचरण और केशव ने की थी। चम्पा भी करीमन के साथ मिलकर स्त्री-सेवा-दल बनाती है। उसमें अन्य लड़कियाँ भी शामिल हो जाती हैं और हैजे से पीड़ित स्त्रियों की सेवा करती हैं। सोमेश्वर को भी हैजा होता है। चम्पा बड़ी तत्परता से उसकी सुश्रूषा करती है और वह बच जाता है।

चम्पा और सोमेश्वर के प्रेम की चर्चा होने पर बदनामी से बचने के लिए बालाराम उसकी सगाई दूसरे गाँव में कर देता है। सोमेश्वर गरीब है, इसीलिए बालाराम का मन उसकी ओर से हटा हुआ है। वैसे वह चम्पा की जाति का ही है। चम्पा से उसकी बातचीत भी हुई है। अन्त में मेघराज इस कठिन कार्य को हाथ में लेता है। लड़कों का एक जुलूस संगठित होता है; वैसे ही, जैसे 'प्रत्यागत' में मङ्गल के प्रायश्चित्त को लेकर नवलबिहारी शर्मा के मन्दिर में देव-दर्शन के लिए होना है। करीमन भी साथ देती है। इसके परिणामस्वरूप बालाराम झुकते हैं और सोमेश्वर-चम्पा दोनों का विवाह हो जाता है। मेघराज विवाह में ग्यारह रुपये भेंट करता है। अब वह परिश्रम की कमाई खाता है। गाँव में पंचायत-भवन बन जाता है और 'अमर बेल' की भाँति सेवा-दल की कवायद-परेड होने लगती है।

नाटक में मेघराज का चरित्र बहुत ऊँचा है। 'राखी की लाज' रखने के लिए वह जान पर खेल जाता है। सेवा-कार्य तो करना ही है। वह चम्पा से कहता है—"मैं तन और मन का परिश्रम करके अन्य लोगों की तरह पसीने का काम करके तुम्हारा भाई कहलाने योग्य बनना चाहता हूँ।" (पृष्ठ ६०)। वह ऐसा करता भी है। वह लिखने-पढ़ने का काम भी कर सकता है, पर पहले सवेरे-शाम अखाड़े में बालकों को कुश्ती मलखम्ब सिखाने का काम करता है। वह गाँव के सेवा-दल का एक प्रमुख स्तम्भ हो जाता है। अपनी धर्म-बहन के

विवाह के लिए उसका प्रयत्न प्रशंसनीय है। चम्पा का चरित्र भी ऊँचा है। वह सारे संसार को मेघराज से नीचा समझती है, इसीलिए उसकी रक्षा के लिए सब कुछ करती है। सेवा-भावना उसमें कूट-कूटकर भरी है। सोमेश्वर को प्रेम करने के कारण न उसे राखी बाँधती है और न उसको कजरियाँ देती है। यह उसके मन की पवित्रता का परिचायक है।

इस नाटक में हैजे की बीमारी का समावेश केवल इसलिए किया गया है कि गाँव के लोगों का लाल दवा आदि के विषय में अन्ध-विश्वास बताया जा सका। गाँव को सुधारने का हल गाँव-पंचायत और सेवा-दल वर्माजी की अपनी विशेषता है। सोमेश्वर और चाँदखाँ समाज-सेवकों के आदर्श हैं। 'राखी का त्योहार' लोक-संस्कृति का आवश्यक अंग होने से इसमें गीतों का स्थान लोक-गीतों ने विशेष रूप से लिया है, यह इसकी एक और विशेषता है।

'बाँस की फाँस' दो-अंकी नाटक है। इसमें लेखक ने कालिज के लड़कों के दो रूप रखे हैं। एक लड़का तो ऐसा है, जो एक भिखारिन लड़की के रेल-दुर्घटना का शिकार हो जाने पर खून और चमड़ा दोनों देता है और उसकी ओर आकृष्ट होने पर भी अपने प्रेम को बता नहीं सकता। दूसरा लड़का भी एक लड़की को इसी प्रकार खून देता है, पर बड़ा अहसान दिखाता है, जिस पर लड़की उसके प्रेम को ठुकरा देती है। सी बात पर वर्माजी ने लिखा है "लड़की बाँस की ठोकर शायद सह लेती, परन्तु बाँस की फाँस की चुभन को न सह सकी और उसने ब्याह से बिलकुल इन्कार कर दिया।" (परिचय, पृष्ठ २)। कथा ग्वालियर स्टेशन और ग्वालियर अस्पताल तक सीमित है। मन्दाकिनी 'अपटुडेट' लड़की है, जिसकी ओर फूलचन्द और गोकुल दो कालिज के मनचले लड़के आकृष्ट होते हैं, वैसे ही जैसे स्टेशनों पर हुआ करते हे। वहीं पर एक पुनीता भिखारिन आती है। वह गाकर पैसा मांगत है। साथ म उसकी अधी माँ है। गोकुल कुत्सित भाव से

उसकी ओर आँख मार देता है और फिर पैसे देता है। इस पर पुनीता कहती है—"मुझको नहीं चाहिए। रखे रहो अपने पैसे। देना अपनी माँ-बहन को। हम भीख माँगती हैं तो क्या हमारी कोई इज्जत नहीं है? आँख मारता है, गुण्डा।" (पृष्ठ १०)। इसके बाद फूलचन्द मन्दाकिनी का सामान लादकर उसको दूसरे प्लेटफार्म पर गाड़ी में चढ़ा आता है। पुनीता भी अपनी माँ के साथ उसी गाड़ी में चली जाती है। इधर गोकुल से और एक फौज के हवलदार भींडाराम से गोकुल की छेड़-छाड़ हो जाती है, जिस पर वह खीझकर कह उठता है—"ये लड़के हैं। ये जवान हैं। घर-गिरस्ती सँभालने लायक! पर इनने बेहूदे और बदतमीज कि हद नहीं। रास्ता चलने वालों को ये टोकें। हर किसी के साथ छेड़-छाड़ ये करें। औरतों के साथ इशारेबाजी करें, उनको आँख मारें, कभी-कभी उनसे टकरा तक जायँ! खोमचे लूटें! घुसकर और मुफ्त तमाशा देखें।" (पृष्ठ १५)। इन साहब से मारपीट होते-होते बचती है।

गोकुल और फूलचन्द की गाड़ी आने से पहले ही खबर आती है कि अभी-अभी जो गाड़ी ग्वालियर से झाँसी की ओर गई थी वह दुर्घटना का शिकार हो गई है और आगरा की ओर जाने वाली गाड़ियाँ लेट आयँगी। ग्वालियर के अस्पताल में घायलों को दाखिल किया जाता है। घायलों में मन्दाकिनी और पुनीता भी हैं। गोकुल और फूलचन्द को शहीद बनने के लिए अवसर मिलता है और वे भी खून देने जाते हैं। फूलचन्द का खून मन्दाकिनी को दिया जाता है और गोकुल पुनीता को खून और चमड़ा दोनों देता है। पहले मन्दाकिनी अच्छी होती है और फूलचन्द उससे विवाह का प्रस्ताव रख देता है। मन्दाकिनी विवाह के लिए अपने माता पिता की अनुमति आवश्यक मानती है। फूलचन्द जब मन मिलने को ही विवाह के लिए पर्याप्त समझता है और प्लेटफार्म पर एक-दूसरे को देख लेने को ही स्वीकृति-सूचक मान लेता है तो मन्दाकिनी पूछती है कि क्या विद्यार्थियों की

लकड़धों-धों, सिपाहियों का भेड़िया धसान, किसी के इशारे, किसी का आँख मारना ब्याह के लिए ये सब अलग-अलग दावे माने जा सकते हैं ? अन्त में वह धता बताती हुई कहती है—"डिब्बे में बिस्तर रख देने और चार औंस खून दे देने से स्त्रियाँ खरीदी नहीं जा सकतीं। आप अपने घर जाइये, मैं अपने घर जाती हूँ। नमस्ते !" (पृष्ठ ४१)। इसके विपरीत पुनीता और गोकुल का युग्म है। गोकुल ने पुनीता को आंख मारी थी। अब खून और चमड़ा देकर बचाया है। उसे खून और चमड़ा देने का इतना गर्व नहीं जितना उस घृणित इशारे का। वह पुनीता से क्षमा माँगता है और जब तक डाक्टर नहीं बतलाता, पुनीता को इस बात का पता ही नहीं चलता कि गोकुल ने उसके प्राणों की रक्षा की है। अंत में पुनीता की माँ भी आ जाती है और पुनीता और गोकुल का विवाह हो जाता है।

वर्माजी का यह नाटक है तो छोटा, पर बड़ा ही कलापूर्ण और रोचक है। कालिज के विद्यार्थियों का तो इसमें कच्चा चिट्ठा है। भिखारिनों के प्रति सिपाही से लेकर हर छोटे-बड़े की मनोवृत्ति कितनी भद्दी होती है, यह इसमें भली प्रकार दिखाया गया है। हवालदार भींडाराम, कवि तुलसीदास का नाम तक नहीं जानता, यह फौजियों के अज्ञान का सूचक है। पुनीता और मन्दाकिनी दोनों अपने परिवारों की आज्ञा से ही विवाह करना चाहती हैं, जिससे पता चलता है कि लेखक नारी की मर्यादा की सीमा से बाहर जाने का पक्षपाती नहीं है। गोकुल और पुनीता के विवाह ने अमीर-गरीब की खाई पाटी है, युवकों के लिए उचित दिशा-निर्देश किया है।

'मंगल-सूत्र' की कथा में वर्माजी ने मनोवैज्ञानिक तथ्य रखकर इसे समस्यात्मक बना दिया है। पीताम्बर नाम के एक सुधारवादी हैं। ये वैसे ही हैं जैसे 'पीले हाथ' के गयाप्रसाद। अपने लड़के कुन्दनलाल की शादी वह रोहनलाल नामक एक सामान्य दूकानदार की लड़की अलका से कर लेते हैं। चुपचाप पाँच हजार का नकद चक रख

लेते हैं। कुन्दनलाल और अलका दोनों उच्च शिक्षा प्राप्त हैं, लेकिन कुन्दनलाल के सामने सबसे बड़ी समस्या है—"स्त्री पर अधिकार कैसे बनाये रखा जाय।" (पृष्ठ २४)। दुनिया-भर से पूछता फिरता है, टॉनिक भी खाता है, पर वह सफल नहीं होता। दोनों में खींच-तान होती है। एक दिन वह मंगल-सूत्र (गहना-विशेष, जो महाराष्ट्र में सौभाग्य-सूचक चिह्न माना जाता है) लाता है, लेकिन उससे पहले किसी बात पर झगड़ा हो जाता है और मार-पीट भी। अलका का पिता रोहन इसे सुनकर अपनी लड़की को घर लिवाने के लिए आ जाता है। साथ ही वह पीताम्बर को, जो जाति-सभा के प्रधान हैं, डाँट भी पिलाता है। निश्चय होता है कि अलका को बन्द करके रखा जाय। पीताम्बर, कुन्दनलाल और उनका नौकर टीपू बारी-बारी से पहरा देते हैं।

उनके पड़ौस में रहते हैं बुद्धामल शास्त्री, जो समाज-सुधारक हैं और पुनर्विवाह में विश्वास रखते हैं। रोहन का पक्ष लेकर पीताम्बर के पास जाते हैं और फटकार खाकर चले आते हैं। वे अलका को भी चाहते हैं। एक दिन अलका कुन्दन को अपनी बातों में लगाकर यह दिखा देती है कि अब वह मिलकर रहेगी। कुन्दन का पहरा था, विश्वास करके सो गया। अलका पूर्व योजनानुसार घर से निकली। बाहर खड़े रोहन ने उसे बुद्धामलजी के घर पहुँचा दिया।

गोपीनाथ नामक एक कालिज का एम० ए० पास छात्र है, जो बेकार है और मनोविज्ञान का पण्डित है। उसे यह आदत है कि कोई भी घटना हो उसका मनोवैज्ञानिक कारण ढूँढ़ने लग जायगा। कोई लड़की साइकिल से गिरी तो उसके अन्तर्मन की अमुक भावना ने उसे ऐसा करने को विवश किया या किसी ने किसी के 'बटन होल' में फूल टाँका तो उसके मन में अमुक विचार उठा, यही करता रहता है। वह कुन्दन को अलका पर अधिकार करने की समस्या से परेशान देखकर

तलाक देने की सलाह देता है। वह भविष्य-वाणी करता है कि कुन्दन आत्म हत्या का प्रयत्न करेगा और ऐसा होता भी है। बुद्धामल से कह देता है कि आप अलका को छोड़ देंगे, क्योंकि आपके हाथ लम्बे और छाती की चौड़ाई के अनुपात से कन्धे बड़े हैं। लेकिन वह बुद्धामल के घर पैर में झूठ-मूठ पट्टी बाँधे बैठी अलका को देखकर धोखा खा जाता है। वह इस प्रकार कि जो मनुस्मृति अलका को उसके पिता ने दी थी उसे बुद्धामल की दी हुई समझता है और पैर की चोट को समझने में भी धोखा खाता है। अन्त में गोपीनाथ से ही अलका का विवाह हो जाता है।

इस नाटक में वर्माजी ने एक मनोविज्ञान के तथ्य को रखकर यह हल प्रस्तुत किया है कि यदि अशक्त पति अपनी पत्नी के योग्य न हो तो वह किसी भी अन्य समर्थ व्यक्ति से विवाह कर ले, जैसा कि अलका ने गोपीनाथ से किया। साथ ही यह भी बताया है कि अब स्त्री को प्राचीन परम्परा की दुहाई देकर दबाया नहीं जा सकता। एक आचार्यजी, जो रामायण की कथा कह रहे थे, जब 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी' वाली चौपाई की व्याख्या करने लगे तो कथा सुनने वाली सभी स्त्रियों ने उसे पोथी-पत्रा उठाकर भागने को विवश कर दिया। कुन्दनलाल को समझाने के लिए गई हुई कान्ता कहती है– "याद रखना, हम अबलाओं का भी कोई है। हम लोग भी अब स्त्री-समाज बना रही हैं। वह जब खड़ा होगा, तब तुम सरीखों की मरम्मत करके छोड़ेगा।" (पृष्ठ २८)। कथा में पण्डित-पलायन-काण्ड पर एक वय-प्राप्त महिला का मत है—"स्त्री को आर्थिक स्वालम्बन दीजिये तो वह समाज का बहुत अधिक हित कर सकेगी। हिन्दू स्त्री का जीवन अत्यन्त क्षीण हो चुका है, उसको झूठे भुलावों में डालकर बिलकुल नष्ट मत करिये। पुरानी कहानियों पर नये अक्षरों में भ्रमों को अधिक नहीं गाँसा जा सकता।" (पृष्ठ ४१)। गोपीनाथ का मनोवैज्ञानिक अतिवाद भी ग्राह्य नहीं है, इसलिए वह अब जीवन को जीवन की

भाँति ग्रहण करता है। अलका और उसका विवाह जाति-पाँति तोड़कर होता है, जो समाज की प्रगति के लिए आवश्यक है। पीताम्बर के विरुद्ध जुलूस का आयोजन और अलका-गोपीनाथ-परिणय पर समाज की स्वीकृति की मुहर भ ढोंगी सुधारवादियों के मुँह पर एक तमाचा है। अलका को पाकर नास्तिक गोपीनाथ आस्तिक हो जाता है, जो वर्माजी की आस्तिक भावना का ही प्रतिफलन है। कक्षा, खेल या होली के प्रसंगों में कालिज के लड़कों के उच्छृंखल व्यवहार के चित्र भी अपने स्थान पर उपयुक्त हैं।

'खिलौने की खोज' और भी गहरे मनोवैज्ञानिक संघर्ष को लेकर चला है। इसमें दो डाक्टरों की कहानी है। एक का नाम है सलिल और दूसरे का नाम भवन। दोनों तालगाँव नामक एक ऐसे स्थान पर आये हुए हैं जो स्वास्थ्य-सुधार के अनुकूल जलवायु के लिए प्रसिद्ध है। सलिल यक्ष्मा का रोगी है और भवन गठिया का। सलिल अविवाहित है और उसकी परिचर्या के लिए नन्दिनी नाम की एक नर्स है, जो बड़ी लगन से उसकी सुश्रूषा करती है। भवन के साथ उसकी पुत्री नीरा है। जिस गाँव में ये ठहरे हैं उसमें एक संतूचन्द हैं, जिनकी पत्नी का नाम सरूपा और पुत्र का नाम केवल है। संतूचन्द ने ही दोनों के लिए रहने का प्रबन्ध किया है। उसका एक स्वार्थ है और वह यह कि वह अपनी बीमार पत्नी सरूपा का इलाज कराना चाहता है। सलिल और भवन दोनों की बीमारी का कारण मानसिक है। सलिल बचपन में बड़ा नटखट था। वह सरूपा को प्यार करता था। सरूपा सात बहन-भाई थे --पाँच बहनें और दो भाई। सरूपा पाँचवीं बहन थी। उसके बाद ही दो भाई हुए सरूपा को भाइयों के उत्पन्न होने से माता-पिता का प्यार कम मिलने लगा। पिता फिर भी चाहते रहे। उन्होंने सरूपा की एक चाँदी की मूर्ति बनवाई। वह खिलौना था। माता ने सरूपा की शादी एक धनाढ्य लड़के से कर दी। सलिल ने वह खिलौना चुरा लिया और अपने पास रख लिया। वह खिलौने को छिपाकर रखे रहा।

परिताप होने पर लौटाने का विचार किया, परन्तु लोभ के कारण न लौटा सका। फिर चोरी और परिताप की स्मृति का दमन किया। ब्याह नहीं कराया। डाक्टरी पढ़कर प्रैक्टिस की। एक दिन यकायक मन में मर जाने की इच्छा हुई। सेना में भर्ती हो गया। लड़ाई में न मर पाया। सेना से, छँटनी में, छुटकारा मिला तो यक्ष्मा ने दबा लिया। भवन को गठिया होने का कारण भी ऐसा ही है। भवन ने एक बीमार रोगी को मरने से पहले बहुत सान्त्वना दी और खूब कसकर फीस ली। वह मर गया। इससे उसको ठेस लगी। उसके बाद उसकी पत्नी का देहान्त हुआ। यद्यपि वह पहले से बीमार थी, पर उसने उसकी मृत्यु को अपने पापों का परिणाम समझा। उसके फलस्वरूप मन्दाग्नि हुई और मन्दाग्नि का परिणाम गठिया।

सलिल का वह चाँदी का खिलौना सेठ संतूचन्द का लड़का ले जाता है। जान-बूझकर नहीं। सिगरेट के खाली डिब्बों के ढेर में छिपा खिलौना भी चला जाता है। उसकी खोज में सलिल के मन की वे दबी हुई स्मृतियाँ उभर आती हैं, जिन्हें खिलौने की उपस्थिति ने ऊपर नहीं आने दिया था। उससे वह स्वस्थ होने लगता है। साथ ही उसका निराशावाद भी चला जाता है। भवन को स्वस्थ करने की अदम्य भावना भी उसकी बीमारी को हटाने का प्रयत्न करती है। वह जो दिन-भर सिगरेट पीता था उसे नन्दिनी छुड़ा देती है। सलिल का कहना है कि यदि लोग अपने जीवन की घटनाओं के असली कारण को ढूँढ़ें तो रोग का रहस्य समझ में आ जायगा और फिर उसके दूर करने में देर न लगेगी। भवन के मन में, चलने-फिरने में गिरने का जो भय समाया हुआ है, उसे वह बिना सहारे चलाकर दूर कर देता है। वह गिरता भी है, तो प्रयत्न करके स्वयं उठता है। एक दिन अपने कमरे में ही उसे दौड़ाता भी है। यों भवन स्वस्थ हो जाता है। सरूपा की बीमारी के तीन कारण थे—१. मनचाही जगह शादी न होना, २. उसकी यह इच्छा कि सन्तान न हो, और ३. अपने पुत्र को प्यार

न करना। सलिल इन तीनों कारणों की खोज करके सरूपा को अपने पति और पुत्र को प्यार करने की सलाह देता है। साथ ही समाज-सेवा का कार्य करने की सम्मति देता है। न केवल सरूपा, बल्कि स्वयं सलिल और भवन भी सेवा के मार्ग को ही अपनाते हैं। इस प्रकार तीनों रोगी स्वस्थ हो जाते हैं।

वर्माजी ने इस नाटक में रोग के मानसिक कारणों की खोज तक ही यदि अपने नाटक को सीमित रखा होता तो नाटक दो कौड़ी का हो जाता। उन्होंने ऐसे मनोवैज्ञानिकों को, जो रोगी के उस कारण का पता-भर लगाकर छोड़ देते हैं, बेवकूफ ही कहा है। ऐसे लोगों को यदि उस कारण को भुलाने की बात कही जाय तो रोग कभी दूर न होगा। होना यह चाहिए, जैसा कि वर्माजी ने कहा है, सेवा-मार्ग द्वारा उसका परिष्कृत रूप सामने आना चाहिए। सलिल, भवन और सरूपा तीनों ही गाँव की सेवा के लिए प्रयत्न करते हैं। गाँव में चिमटानन्द नाम का एक ढोंगी साधु है जो अपने को नेता भी कहता है। वह पुत्तूलाल महते सयाने से मिलकर गाँव की भोली-भाली जनता को कालीमाई और घटोरिया बाबा के नाम पर गुमराह करता है। उससे ये समाज-सेवी लोहा लेते हैं। स्वावलम्बन के आदर्श से गाँव को स्वर्ग बनाते हैं। अन्त में एक नाटक खेलते हैं, जिसमें इस नाटक के मानसिक रोगों से ग्रसित पात्रों का समाज-सेवा द्वारा स्वस्थ होना दिखाया गया है।

सलिल का ही चरित्र इस नाटक में विकसित हुआ है। वह केन्द्र है समस्त घटनाओं का। सरूपा और भवन को उसीसे बल मिलता है। आशावाद को जीवन का अभिशाप मानने वाला, असाध्य रोगियों को समाज की सेवा के लिए खड़ा कर देता है। वह केवल को अपने पुत्र की भाँति चाहने लगता है। भवन और सरूपा उसका अनुकरण करते हैं। सरूपा तो अभिनय तक में उतरती है। नीरा और नन्दिनी भी। अन्ध-विश्वास और जड़ता को दूर करने का यही मार्ग है। मार्ग वही 'सेवा-दल' का अपनाया गया है। उद्देश्य है अपने और

अपने पड़ोसियों को सुखी करना। इसमें नाटक की उपयोगिता पर वर्माजी सलिल के माध्यम से कहते हैं —"नाटक मनुष्य को उसकी भीतरी वासनाओं और अन्तर्द्वन्द्वों के अभिनय का मौका देता है इस साधन से मनुष्य उन वासनाओं और अन्तर्द्वन्द्वों का साहस के साथ जाने-बूझे सामना कर सकता है। इस क्रिया से उसको अपनी समस्याओं को जानने की सूझ-बूझ मिलेगी – विवेक के साथ हँसते-पुकारते हुए नाटकों के खिलवाने का घोर पक्षपाती हूँ।" (पृष्ठ १००)। कला की दृष्टि से यह नाटक वर्माजी के श्रेष्ठतम नाटकों में है और इसमें मनोबल या इच्छा-शक्ति द्वारा भयंकर व्याधियों से मुक्ति का मार्ग दिखाया है।

सांस्कृतिक समस्या-प्रधान नाटक **'नीलकण्ठ'** है। यों तो वर्माजी ने अपनी सभी रचनाओं में यथास्थान पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों के द्वन्द्व का चित्रण किया है और अध्यात्मवाद तथा भौतिकवाद के समन्वय पर जोर दिया है, परन्तु यह नाटक पूरे-का-पूरा उनकी इसी विचार-धारा पर आधारित है। कथा का घटना-चक्र उज्जैन में चलता है और उनका केन्द्र हरनाथ नामक एक विज्ञान का प्रोफेसर है जो रात दिन अपनी प्रयोगशाला में व्यस्त रहता है और नाना प्रकार की खोजें करता रहता है। वह एक ऐसा यन्त्र बनाना चाहता है, जिससे पृथ्वी के भीतर छिपे हुए रत्न-स्वर्ण इत्यादि का पता चलाया जा सके। ये विज्ञान के पक्षपाती हैं। काशीनाथ नाम का एक दूसरा पात्र है, जो योग का समर्थक है। हरनाथ और काशीनाथ के विवाद ने नाटक को प्रस्तुत रूप दिया है। तीसरा पात्र सेठ मदनमल है। वह चाहता है कि हरनाथ जो पारदर्शक यन्त्र बना रहा है उसमें उसका आधा-साझा हो जाय। वह बड़ा काइयाँ है लेकिन जब हरनाथ उससे दस लाख रुपया प्रयोगशाला के निर्माण के लिए पहले ही माँगता है तो वह कन्नी काट जाता है और किसी प्रकार हरनाथ के पारदर्शक यन्त्र के नुस्खे को उड़ा लेना चाहता है। न केवल हरनाथ वरन् काशीनाथ को भी, जो शिप्रा के उस पार मदनमल की जमीन का कुछ भाग योगशाला

के लिए लेना चाहता है, टाल देता है। कथा को आगे बढ़ाने का कार्य सोंटू और फत्ते नामक दो लफंगे करते हैं। होता यह है कि प्रसिद्ध संगीतज्ञ उस्ताद बदलूखाँ के सम्मानार्थ आयोजित संगीत-सम्मेलन में, जिसकी अध्यक्षता प्रोफेसर हरनाथ करते हैं, गंगा और उर्मिला नामक दो लड़कियों का गायन होता है। सोंटू और फत्ते जुलूस से ही साथ हो लिए थे। सम्मेलन की समाप्ति पर अँधेरी गली में गंगा और उर्मिला के पीछे-पीछे चलते हैं और एक स्थान पर 'साँप-साँप' चिल्लाकर स्त्रियों को भयभीत कर देते हैं। जैसे ही गंगा नीचे झुकती है, सोंटू उसका हार तोड़कर भागता है। फत्ते के साथ सोंटू उस हार को शिप्रा के किनारे गाड़ देता है। इधर सेठ मदनमल सोंटू से प्रोफेसर हरनाथ के कमरे से पारदर्शक यंत्र के कागजात उड़वाने का सौदा तय करता है। पाँच सौ रुपये पेशगी देता है। जब मदनमल देखता है कि असली कागजात नहीं आए तो वह सोंटू को और रुपये न देकर घर से निकाल देता है। सोंटू फत्ते को केवल मदनमल द्वारा दो सौ रुपये देने की बात करता है। हार नकली निकलता है और वह भी धोबियों द्वारा निकाल लिये जाने पर मिलता नहीं। फत्ते और सोंटू में झगड़ा होता है, जिसमें सोंटू घायल होता है, वैसे ही जैसे 'फूलों की बोली' में सिद्ध द्वारा बलभद्र। सोंटू की गिरफ्तारी होती है। गंगा दयावश सोंटू को क्षमा कर देती है। उसका हृदय-परिवर्तन हो जाता है। फत्ते साधु के वेश में पकड़ा जाता है तो पुलिस को मदनमल की साजिश का पता चलता है। मदनमल यह सोच कर कि उन कागजात में कुछ नहीं था, उसके विरुद्ध कोई दावा नहीं करता।

गंगा और उर्मिला में से पहली कहानी-लेखिका है, दूसरी चित्रकर्त्री। गंगा की 'नीलकण्ठ' नामक कहानी को वह चित्रों से सजाती है। कहानी में समुद्र-मंथन के परिणामस्वरूप चौदह के स्थान पर सोलह रत्न निकलने का वर्णन है – जिनमें पन्द्रहवाँ रत्न 'मन पर विजय' और सोलहवाँ 'प्रकृति पर विजय' बताया है। 'हलाहल' क्रोध, ईर्ष्या,

द्वेष, मोह, दम्भ, वासना, कायरता, हिंसा, अहंकार आदि से बना हुआ कहा गया है। तेरह रत्न तो देव-दानव ले गये। 'हलाहल', 'मन पर विजय' और 'प्रकृति पर विजय' वाले तीनों को ग्रहण करने को कोई तैयार न था, तो शकर ने हलाहल लेने को कहा। शेष दो में से शंकर भगवान् ने देवताओं से एक और लेने को कहा तो देवताओं ने 'प्रकृति पर विजय' को ले लिया। अमृत उन पर था ही। भगवान् शंकर को मिले—'हलाहल' और 'मन पर विजय'। 'मन पर विजय' को उन्होंने पहले पी लिया, फिर 'हलाहल' को गले में रख लिया ; क्योंकि नीचे उतारने से सर्व नाश हो जाता। उसके बाद देव-दानवों की लड़ाई हुई देवता घबराकर शंकर के पास आये तो उन्होंने सत्य का अस्त्र प्रयुक्त करने की सलाह दी। देवता कुछ समझे, कुछ न समझे ; इसलिए आज तक लड़ाई जारी है। हरनाथ इस कहानी में संशोधन करता है कि कहानी में 'प्रकृति पर विजय, और 'मन पर विजय' वाले रत्न अलग-अलग घड़ों में निकले होंगे, पर यदि 'प्रकृति पर विजय' वाले घड़े की निचली तह में 'मन पर विजय' वाले घड़े के कुछ तत्व और 'मन पर विजय' वाले घड़े में, ऊपर या नीचे, 'प्रकृति पर विजय' वाले घड़े के कुछ तत्व रख दिये जायँ तो कहानी सुन्दर हो जाय ; क्योंकि इस प्रकार 'प्रकृति पर विजय' और 'मनोविजय' में समझौता हो जायगा।

हरनाथ और काशीनाथ भी इसके बाद एकमत हो जाते हैं, क्योंकि जो हरनाथ पहले योग को शारीरिक सीमा तक ही स्वीकार करता था, वह इस विज्ञानियों की प्रयोगशाला और योगियों की योगशाला की मैत्री में विश्वास रखने वाला बन जाता है। वह प्रकृति की विजय और मन की विजय के सामञ्जस्य एवं समन्वय को व्यावहारिक रूप देने का संकल्प करता है, जिसका साधन है नित्य परसेवा का कोई-न-कोई कार्य करना और बदले में कुछ न चाहना। मनुष्य के विकास में

विश्वास और सन्तुलित जीवन में आस्था ही उसके जीवन का मूल मंत्र हो जाता है।

इस नाटक में हरनाथ के अतिरिक्त काशीनाथ पाठक का ध्यान खींचता है। वह भारत की आध्यात्मिक शक्ति को जगाने का पक्षपाती है। सेठ मदनमल योगशाला के लिए जमीन नहीं देता तो स्वयं नगरपालिका के अध्यक्ष से प्राप्त करता है। मदनमल टिपीकल धूर्त-सेठ है, जो चोरी तक करवाने का पाप कर सकता है, और वह भी एक वैज्ञानिक के घर में। नगरपालिका से कारखानों के लिए ज़मीन लेकर डाले रखता है और जब काशीनाथ उसका उपयोग करता है तो बाधा डालता है। पत्रकार सुन्दरलाल पत्रकारों की अवसरवादिता को प्रकट करता है। गंगा का चरित्र उज्ज्वल है। उसने सोंटू को क्षमा ही नहीं किया, बल्कि कुछ पैसे देकर ईमानदारी का जीवन बिताने की भी सुविधा कर दी। चरित्र से अधिक नाटक का मूल्य उसकी विचारधारा का है। सम्भवतः इसीलिए कथोपकथन लम्बे हो गये हैं - यहाँ तक कि हरनाथ की बात सुनते-सुनते गंगा और उर्मिला जँभाई लेने लगती हैं। स्वयं हरनाथ भी अपने ज्यादा बोलने के स्वभाव के लिए क्षमा माँगता है। नाटक के अनुसार लेखक का जीवन-दर्शन है—"समाज के हलाहल को पीते रहो, उसे पेट में न पहुँचाकर गले में रखे रहो—दूसरों के दृष्टिकोण को समझते रहने की कोशिश करते रहो, निःस्वार्थ परसेवा करो ; विज्ञानियों की तटस्थता और त्यागियों के अहंकार से दूर बने रहो।" (पृष्ठ १०२)।

विशेषताएँ

वर्माजी के सामाजिक नाटकों में उनका विचारक और दार्शनिक रूप व्यक्त हुआ है। ऐतिहासिक नाटकों की अपेक्षा इन नाटकों में उनको सफलता भी अधिक मिली है। उन्होंने इन नाटकों में समाज की बाह्य विकृति और व्यक्ति के अन्तर्मन की गहनता दोनों को लिया है। 'पीले हाथ' और 'मंगल सूत्र'-जैसे नाटकों मे समाज-सुधारकों की

घृणित मनोवृत्ति का पर्दा फाश किया है, 'धीरे-धीरे' और 'केवट' में सत्तारूढ़ नेताओं और उनके कारण उत्पन्न दलबन्दी पर प्रहार है, 'बाँस की फाँस' और 'सगुन' में आज के छात्रों की उच्छृङ्खलता का दिग्दर्शन है, 'निस्तार' में हरिजनों की समस्या है और 'राखी की लाज' में हमारी एक पुरानी सांस्कृतिक परम्परा की रक्षा का समर्थन है, 'खिलौने की खोज' में मनोवैज्ञानिकों के लिए पहेली बन जाने वाले मानसिक रोगों से मुक्ति का उपाय है और 'नीलकण्ठ' में विज्ञान और योग का समन्वय।

इस प्रकार राजनीति, समाज और संस्कृति से सम्बद्ध लगभग सभी समस्याएँ इन नाटकों में आ गई हैं। इन नाटकों में वर्माजी ने हर प्रकार की बुराई का इलाज निःस्वार्थ सेवा को माना है। आप किसी भी नाटक को लीजिये, उसकी मूल भावना यही मिलेगी। शहर और गाँव में वे इस भावना से प्रेरित होकर सेवा-दलों की स्थापना करते हैं। इस सेवा-दल द्वारा उनके पात्र धार्मिक जड़ता और अन्ध-विश्वास से लड़ते हैं तो ऊँच-नीच, जाति-पाँति-जैसे सामाजिक प्रगति के भयंकर शत्रुओं का भी मुकाबला करते हैं। 'केवट', 'निस्तार', 'राखी की लाज', 'मंगल सूत्र' और 'नीलकंठ' में यह सेवा दल मौजूद है। इन नाटकों के सेवा-दल में पुरुष और स्त्री-पात्र कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर आगे बढ़ते हैं। किन्नर और गोदावरी (केवट), सोमेश्वर और चम्पा (राखी की लाज), उपेन्द्र और कादम्बिनी (निस्तार), हरनाथ और गंगा (नीलकंठ) आदि पात्र गाँवों और नगरों में अन्याय तथा अत्याचार को सेवा के द्वारा ही दूर करना चाहते हैं। सेवा-कार्य के द्वारा वे न केवल बेकारी, गरीबी और भुखमरी को ही दूर करने की सोचते हैं, वरन् मानव-मन के अन्तराल में दबी वासनाओं के परिष्कार का भी आयोजन करते हैं; जैसा कि 'खिलौने की खोज' में सलिल, भवन और सरूपा ने किया है।

सामाजिक नाटकों में जो स्त्रियाँ आई हैं वे भारतीय नारी की

मर्यादा को लेकर चली हैं। भिखारिन कन्या पुनीत (बाँस की फाँस) से लेकर मध्यवर्गीय परिवार की उच्च-शिक्षा प्राप्त निर्मला (पीले हाथ) तक सब अपने माँ-बाप की आज्ञा के बिना विवाह नहीं करतीं। जहाँ-कहीं इन नारियों को अपने मनचाहे वर के मिलने में कठिनाई होती है वहाँ समाज-सेवा-दल के कार्य-कर्ता ऐसा वातावरण उत्पन्न करते हैं कि माँ-बाप को आज्ञा देनी पड़े। 'राखी की लाज' में चम्पा का पिता इस दल के सदस्यों के कारण ही सोमेश्वर के साथ उसका विवाह करता है और एक स्थान पर की हुई सगाई छोड़ देता है। 'मंगल सूत्र' की अलका अपने असमर्थ पति को छोड़कर गोपीनाथ से शादी करती है तो भी उसके पिता रोहन की सम्मति से। कान्ता और बुद्धामल-जैसे सुधारक सहायता को यहाँ भी मौजूद हैं। ये नारियाँ जाति-पाँति को तोड़कर चाहे जिसके साथ शादी कर लेती हैं। गोपीनाथ, (मंगल सूत्र) और गोकुल (बाँस की फाँस) दोनों ऐसे ही युवक हैं, जो इस बखेड़े से दूर रहते हैं। लेकिन जाति-पाँति के विरुद्ध खड़े होने वाले ये मर्यादाशील दम्पति कर्तव्य-परायण हैं और समाज में अपने चरित्र के आदर्श से अपना स्थान सुरक्षित करते हैं। वर्माजी ने स्त्री की आर्थिक परतंत्रता को उसकी निम्नस्थिति का मूल कारण माना है। 'मंगल सूत्र' और 'पीले हाथ' में उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया है। 'पीले हाथ' की निर्मला तो इसीलिए नौकरी भी करती है।

पूँजीपति वर्ग के प्रति वर्माजी ने घृणा व्यक्त की है। 'सगुन' के सेठ कुंवरदास और नीलकण्ठ के सेठ मदनमल रुपये के दास है और उसके लिए चाहे जो कुछ कर सकते हैं। इनको वर्माजी ने अपने भाग्य पर ठोकरें खाने के लिए छोड़ दिया है। 'खिलौने की खोज' में सेठ सेंतूचन्द अवश्य सेवा-दल से सम्पर्क रखता दिखाया गया है। राज-नीतिज्ञों को भी उनकी सहानुभूति नहीं मिली। 'धीरे-धीरे' में उनका घृणित रूप चित्रित हुआ है। निम्न वर्ग यहाँ भी उनकी सद्भावना

पा गया है। मेघराज (राखी की लाज), सुमेर (केवट), और सोंदू (नीलकण्ठ) क्रमशः चम्पा, गोदावरी और गंगा के प्रभाव से परिश्रम और ईमानदारी का जीवन बिताते हैं।

वर्माजी के इन सामाजिक नाटकों में विदेशी संस्कृति के तत्वों को अग्राह्य बताया गया है। जैसे कि 'देखा-देखी' में अंग्रेजों की नकल पर जन्म-दिन मनाने का ढंग। भारतीयता का मूल रूप गाँवों में है, अतः अधिकांश नाटक गाँव से सम्बन्ध रखते हैं। गीतों के स्थान पर लोक-गीतों का प्रयोग उनके लोक-सस्कृति के प्रति अनुराग का सूचक है। इन नाटकों का सन्देश यही है कि अपने देश और समाज की परम्परा को पहचानकर विज्ञान और अध्यात्म अथवा भोग या योग का समन्वय करो, पद-मोह और दिखावे को त्यागकर निःस्वार्थ सेवा से पूर्ण जीवन बिताओ। इसीसे समाज का कल्याण होगा, और देश में सुख-समृद्धि की वृद्धि होगी।

७. एकांकी

वर्माजी की एकांकी की तीन पुस्तकें हमारे सामने हैं—'काश्मीर का काँटा', 'कनेर' और 'लो, भाई पंचो ! लो !!' पहली पुस्तक ऐतिहासिक एकांकी है, जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट है। इसका सम्बन्ध पाकिस्तान द्वारा उकसाये गए कबाइलियों द्वारा काश्मीर पर आक्रमण से है। यह सन् '४७ की बात है। मुजफ्फराबाद में कबाइलियों ने डोंडी पीटकर एलान किया कि ईद श्रीनगर में मनाई जायगी। ब्रिगेडियर जनरल राजेन्द्रसिंह ने कबाइलियों की इस चुनौती को स्वीकार किया। लुटेरों ने राजेन्द्रसिंह की छोटी-सी सेना के मुसलमान सिपाहियों को अपनी ओर फोड़ लिया। अब उनके पास केवल १४० योद्धा बचे और सामने नमलापुर के पुल के पार १२ हजार पाकिस्तानी और कबाइली थे। कुछ स्त्री-डाक्टर भी इनके साथ थीं। वे सब २४ अक्तूबर को बलिदान हो गये। वर्माजी के शब्दों में "सम्पूर्ण निस्सहायता की भी परिस्थिति में इन स्त्री-पुरुषों ने जो जौहर दिखलाया वह सूरमाओं के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। वह वीरता अनुपम थी। काश्मीर क्या, भारत-भर उन वीरों का चिरकृतज्ञ रहेगा।" परिचय, पृष्ठ २)।

इस नाटक की कथा ब्रिगेडियर राजेन्द्रसिंह के तम्बू में ही चलती है। फौज से मेजर भीमसिंह सूचना देते हैं कि मुसलमान हथियारों सहित चले गये। ब्रिगेडियर उससे घबराते नहीं, कहते हैं—"परवाह मत करो। और भी दृढ़ हो जाओ !" इसके बाद श्रीनगर से फोन आता है कि वहाँ से भी सेना नहीं आ सकती। अब कुल एक सौ बयालीस सिपाही रह जाते हैं।

डाक्टर गौरी और डाक्टर पार्वती को बुलाकर ब्रिगेडियर कहते हैं

कि अब अस्पताल की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अब घायल होने का अवसर नहीं मिलेगा, अब तो मृत्यु का ही आलिंगन करना होगा। इसलिए अस्पताल का सब सामान लेकर श्रीनगर चले जाना चाहिए। ब्रिगेडियर का दृढ़ संकल्प है—"कबाइली लुटेरे श्रीनगर में ईद नहीं मना सकते।" ब्रिगेडियर के इस कथन पर वे दोनों वीर महिलाएँ श्रीनगर जाने की अपेक्षा युद्ध में मर जाना श्रेयस्कर समझती हैं।

उसके बाद जब ब्रिगेडियर टोली नं० १० की स्थिति देखने चले जाते हैं तब पार्वती तथा गौरी में जो बातचीत होती है, उससे पता चलता है कि महाराज ने समय पर उचित निश्चय नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि पाकिस्तान काश्मीर पर चढ़ बैठा। उद्देश्य थे—(१) काश्मीर को पाकिस्तान में शामिल करना; (२) महाराज को गद्दी से उतारना और (३) पाकिस्तानी भुक्कड़ों तथा सरहदी लुटेरों एवं हत्यारों से काश्मीर और जम्मू की घाटियों को भर देना। पार्वती और गौरी में बहस होती है कि कौन श्रीनगर जाय। गौरी को पार्वती के अकेले रह जाने का भय है, इस पर पार्वती कहती है—"अकेली नहीं हूँ और न रहूँगी। मेरे साथ में सीता, सावित्री, झाँसी की रानी और अनेक देवियाँ होंगी। विश्वास रखो मैं बहुत-से लुटेरों को बन्दूक के घाट उतार दूँगी।" (पृष्ठ १२)। अन्त में गौरी ही जाती है, क्योंकि वह महारानी साहिबा द्वारा महाराज को काश्मीर को भारत के साथ मिलाने के लिए प्रेरित कर सकेगी।

ब्रिगेडियर गौरी के द्वारा शासकों को सन्देश भिजवाते हैं—"काश्मीर या हिन्दुस्तान शान्ति के समय ढीली आदतों से नहीं बचाया जा सकता। तीव्र और प्रबल उपाय काम में लाये बिना किसी की भी कुशल नहीं।" (पृष्ठ १६)।

इसके बाद गुलाम जीलानी नामक एक युवक बन्दी बनाकर तम्बू में उपस्थित किया जाता है, जिससे आजाद काश्मीर द्वारा इस आक्रमण की योजना, पहले काश्मीर से और फिर बाहर से पठानों द्वारा विद्रोह

का उठना, पठानिस्तान के नाम पर पाकिस्तान का उनको बहकाना, ब्रिटेन का पाकिस्तान को उकसाना, जिससे कि वह रूस से दोस्ती न कर सके, कबाइलियों द्वारा हिन्दू-मुसलिम दोनों ही जातियों के बच्चों पर अत्याचार, पाकिस्तान द्वारा घृणित प्रचार के पोस्टरों आदि का पता मिलता है। एक पठान भी पकड़ा जाता है, जो कहता है—"अम आया नहीं, अमको भेजा गया है लूटने और मार डालने और आग लगाने और औरतों को पकड़ ले आने के वास्ते।" (पृष्ठ ३४)। अन्त में पार्वती, आर्दली और ब्रिगेडियर सब युद्ध-रत हो जाते हैं।

ब्रिगेडियर और पार्वती दोनों के चरित्रों का ऐसा अंकन हुआ है कि रोमांच हो उठता है। ऐसा लगता है कि जैसे वर्माजी ने इस नाटक के हर पात्र के अन्तराल में विशेष रूप से प्रविष्ट होकर लिखा हो। इससे काश्मीर की राजनीतिक गुत्थी, हमारी भूल, और पाकिस्तान की पाशविकता आदि सबका सहज ही पता चल जाता है। 'मौत-ब्रिगेड बनाकर लड़ने वाले ब्रिगेडियर जनरल राजेन्द्रसिंह और डाक्टर पार्वती के संवादों में करुणा, रौद्र और वीर रस की त्रिवेणी बहती है। प्रारम्भ में ब्रिगेडियर द्वारा मौत से ब्याह करने की बातों में जो उन्माद-ग्रस्तता व्यक्त हुई है उससे नाटक में और भी कलात्मक सौन्दर्य आ गया है। यह हिन्दी में अपने विषय का सर्वश्रेष्ठ एकांकी कहा जा सकता है।

'कनेर' में तीन एकांकी हैं—'कनेर' (जिसके आधार पर संग्रह का नाम 'कनेर' पड़ा है), 'टंटागुरु' और 'शासन का डण्डा।' 'कनेर' में वर्माजी ने अपने प्रिय विषय योग और विज्ञान के समन्वय को उठाया है जैसा कि 'नीलकण्ठ' में किया है। उसमें खेमराज (एक उच्च पदाधिकारी), हेमनाथ (वकील) और राबर्टमैन विज्ञान-भक्त) आदि तीन पात्रों की बहस होती है, जिनमें हेमनाथ भारतीय दृष्टिकोण का पक्षपाती है और खेमराज तथा राबर्टमैन पाश्चात्य दृष्टिकोण के।

कपिलानन्द नामक एक योगी के आध घण्टे तक एक गड्ढे में बन्द रहने और स्वस्थ चित्त बाहर आने को देखकर योग के बारे में खेमराज और राबर्टमैन का अविश्वास दूर हो जाता है। वे दोनों आस्तिक भी हो जाते हैं। राबर्टमैन यदि 'बाबा जो-कुछ करता है वह भी विज्ञान है' कहकर अपनी हठधर्मी छोड़ता है, तो खेमराज 'मेरी समझ में आ गया—ईश्वर अवश्य है।' कहकर अपनी नास्तिकता छोड़ता है। हेमनाथ प्रमुख पात्र है, क्योंकि अन्त में सब उसके मत के अनुयायी हो जाते हैं। उसके मत से वृत्ति विज्ञान की, उपासना अध्यात्म की, और चरम सीमा संन्यास की हो, क्योंकि विज्ञान और संन्यास का मेल-जोल ही संन्यासी को बचा सकता है।

नाटक में सेठ रतनलाल नामक एक कपड़े का व्यापारी भी है, जो दूने भाव में कपड़ा बेचकर लोगों को ठगता है। जैक्सन नामक एक इञ्जीनियर भी है, जो रिश्वत लेता है ; पर खेमराज द्वारा रिश्वती कहे जाने पर मुकदमा चलाने को तैयार हो जाता है। दो ग्रामीणों का भी समावेश है, जिनमें से एक अपने घर वाली को अच्छा कर देने की आशा से एक ढोंगी साधु को अपनी गरीबी में भी कुछ-न-कुछ देने का आश्वासन देता है। "आशा और भय जीवन के दो बड़े वरदान हैं और निराशा मृत्यु की देन है।" अथवा "किसी भी सन्त या महात्मा की बतलाई पट्टी पचास साल से आगे नहीं चलती।"-जैसी सूक्तियों में विचार प्रकट किये गये हैं, जो विषय की गम्भीरता की दृष्टि से अत्यन्त उपयुक्त हैं।

दूसरा एकांकी **'टंटागुरु'** है। नाटक के पात्र मनोरथ उर्फ टंटागुरु के कारण इसका यह नाम रखा गया है। यह पूरा नाटक समाज के उस वर्ग पर एक सफल व्यंग है, जो सम्पन्नता में शेखचिल्ली के मनसूबे बाँधा करता है और रुपया कमाना ही जिसका ध्येय है। भीमसेन और सागरमल दोनों में से पहला विंध्याचल में हीरे-पन्ने निकालने की योजना बनाता है। सागरमल हड़तालों और शेयर-मार्केट की मन्दी से

परेशान है, इसलिए जब तक एटम शक्ति से सस्ती बिजली प्राप्त नहीं होती तब तक वह हीरे-पन्ने वाली योजना को स्थगित करता है। इतने में अमोलकराम और मनोरथराम उर्फ टंटागुरु आते हैं। ये सब भंगड़ी साथी हैं। भीमसेन ने आज भंग छोड़ देने की प्रतिज्ञा की है, अतः नौकर बंशी से कह दिया कि भंग के निमित्त आने वालों के सामने मैं चाहे जितना कहूँ तू ठण्डाई में भग मत डालना। बंशी वैसा ही करता है। साथ ही वह भीमसेन द्वारा साथियों के लिए रखे गये फलों में से तीन फल भी चुरा लेता है। बिना भंग की ठण्डाई पीकर ये पूँजीवाद और साम्यवाद के सिद्धान्तों पर बहस करते हैं। टंटागुरु साम्यवाद का पक्ष लेते हैं और सागरमल तथा भीमसेन पूँजीवाद का। उस मण्डली पर टंटागुरु छाये रहते हैं। उनके निष्कर्ष बड़े मार्के के हैं। जैसे—

(१) आपका लोकतन्त्र क्या है? पूँजीपतियों द्वारा नियन्त्रित बहुमत के अज्ञान का राज्य। (पृ०६४)।

(२) किसान-मजदूरों को अगर शान्त उपायों से सत्ता न मिली तो वे क्रान्ति करके सत्ता अपने हाथ में ले लेंगे। (पृ० ६५)।

(३) कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य का मालिक होने लायक नहीं। पैसा सबका मालिक है। (पृष्ठ ७५)।

भीमसेन भंग की तरंग में पूरी खान के प्रबन्ध और मुनाफे की रकम से चुनाव में खड़े होकर अपनी सरकार बनाने की सोचता है। सागरमल सत्ताधारियों की नादिरशाहों से तुलना करता है। उसी बहस में आगे हाथापाई तक की नौबत आ जाती है। वे समझते यह हैं कि नशे के कारण ऐसा हुआ है, पर जब नौकर यह कहता है कि ठंडाई में भंग नहीं थो तब सब आश्चर्य-चकित रह जाते हैं। अन्त में भीमसेन का कथन है—"जैसे कोई भी एक देश दूसरे देश को सारी-समूची राजनीति और अर्थनीति नहीं दे सकता, वैसे ही बर्मा या स्याम

देशों से सफेद हाथियों के पालने की योजना सारी-समूची नहीं अपनाई जा सकती। उसी तरह अपने देश में हीरों की खान वाली अमरीकी योजना ज्यों-की-त्यों उधार नहीं ली जा सकती।" अभिप्राय यह है कि रूस या अमरीका की नीतियों पर आपस में मत झगड़ो, अपना मार्ग स्वयं चुनो।

'शासन का डण्डा' इस संग्रह का सबसे छोटा, किन्तु सबसे अधिक सफल और सशक्त एकांकी है। इसकी कथा केवल इतनी है कि एक जागीरदार एक चमार को शिकार में हँकाई के लिए ले जाना चाहता है। चमार अपने खलिहान की सुरक्षा के लिए बाड़ लगाने की बात कहता है ताकि किसीके ढोर न खा जायँ। जागीरदार प्रश्न करता है कि किसके ढोर खा जायँगे तो वह कहता है—"किस-किसके ढोर गिनाऊँ राजा ? आप ही के ढोर तंग कर रहे हैं।" (पृष्ठ ८६)। जब राजा उससे यह पूछता है कि तू क्या करता रहता है तो वह जवाब देता है—"यही सब—कभी आपका काम, कभी बेठ-बेगार, कभी अपना कुछ काम।" (वही पृष्ठ)। इस पर जागीरदार उसको डण्डा दिखाता है। चमार डण्डे को देखकर हाँके में जाने को राज़ी तो होता है, पर कलेवा करके जाना चाहता है। इस पर जमींदार कहता है—"मैंने भी तो कलेवा नहीं किया है। भैंस का थोड़ा-सा दूध ही पी लिया है। जंगल में शिकार खेलेंगे, इतना मन लग जायगा कि कलेवे की याद ही भूल जायगी। कोई-न-कोई जानवर मिलेगा, उसीका कलेवा कर लेना।" (पृष्ठ ८७)। लेकिन चमार जल्दी आने का वचन देकर कलेवा करने चला जाता है। उनका अर्दली जब उन्हीं के खलिहान की अरक्षित दशा की ओर उनका ध्यान खींचता है तो वे आतंक के स्वर में कहते हैं—"अगर किसीका ढोर अपने अनाज के पास आवे तो खाल खिचवाकर भुस भरवा दूँ।" (पृष्ठ ८७)। जब शिकार को जाते हैं तो दिन-भर हँकाई के बाद भी कुछ हाथ नहीं लगता।

जागीरदार साहब थक जाते हैं, इसलिए चमार की पीठ पर लदकर गाँव आते हैं। दूसरे दिन सरकारी योजनाओं के कागजात का गट्ठर रद्दी में बेचने को जाते हैं। उसे लादकर ले जाना पड़ता है उसी चमार को। रास्ते में चमार सहारा लेकर चलने के लिए उनके डण्डे को माँगता है। वे उसे हुकूमत का या शासन का डण्डा बताते हैं। लकिन जब डण्डा भी उनको भारी लगता है तो वे डण्डा भी चमार को दे देते हैं और स्वयं खाली हाथ चलने लगते हैं। अब चमार रद्दी का गट्ठर पटक देता है और अर्दली द्वारा उसे जागीरदार के सिर पर रखवा देता है। अर्दली चमार का हुक्म मानता है। जागीरदार द्वारा यह पूछने पर कि वह उनका हुक्म मानेगा या चमार का, वह कहता है कि न मैं आपका हुक्म मानूँगा, न चमार का; मैं तो हुकूमत के डण्डे का हुक्म मानूँगा। जागीरदार चमार से डण्डा वापस माँगता है। इस पर चमार कहता है - "मिहनत करो नहीं, दूसरों के पसीने की कमाई खाओ और गुलछर्रे उड़ाओ! यह डण्डा उन्हीं के हाथ में रहता है, जो मिहनत करते हैं, बुद्धि-विवेक से काम लेते हैं और परोपकार के लिए तैयार रहते हैं। मुफ्तखोरों, चोरों और उठाईगीरों के हाथ में नहीं रहता यह डण्डा।" (पृष्ठ ९२)। जब चमार स्वयं उस डण्डे को अकड़ के साथ घुमाता है तो आकाशवाणी होती है—'शासन के डण्डे को अकड के साथ घुमाते हुए कभी मत चलो। सिर झुकाकर चलो, भगवान् का नाम याद करके चलो!" और नाटक समाप्त हो जाता है।

छोटे-से नाटक में जागीरदारों की तानाशाही, मेहनतकशों की बेबसी और उनकी अदम्य शक्ति का एक साथ समावेश करके लेखक ने अपनी कला-कुशलता का परिचय दिया है। गाँव की जनता की भावनाओं को इससे अधिक सुन्दर ढंग से व्यक्त करना सम्भव नहीं हो सकता।

'लो, भाई पंचो! लो!!' गाँव की दरिद्र जनता पर पंचायतों द्वारा होने वाले अत्याचारों की कहानी है। पंच और सरपंच किस

प्रकार गाँव के गरीबों को परेशान करते हैं, यह छन्दी की पंचायत में पेशी की घटना से स्पष्ट है। 'धाँधू' और उसका लड़का सबल बेकारी और भूख के मारे पेट भरने के लिए अँधेरी रात में एक खेत काटने को जाते हैं। धाँधू ज्वर-पीड़ित है। सबल गढ़े में पैर पड़ जाने से गिर गया है, जिससे पसलियों में काँटे चुभ गये हैं और घुटना फूट गया है। धाँधू उसे सँभालने दौड़ता है तो हँसिया ही भूल जाता है। हँसिया ही उसका सहारा है, क्योंकि घर में केवल खाट ही बेचने को बची है। उस अँधेरे में छन्दी आता है, जो कुछ पढ़ा-लिखा है और जुए के साथी के रूप में धाँधू से परिचित है। वह भी खेत काटने आया है। वह अपने काटे हुए अनाज में से धाँधू को कुछ देने का वचन देता है और सबल को कन्धे पर बिठाकर तथा धाँधू को हाथ का सहारा देकर उस के घर पहुँचाता है। जिन किसानों का खेत काटा जाता है वे पंचायत में शिकायत करते हैं और सन्देह में पंचायत में पेशी होती है। छन्दी के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, फिर भी पुरानी प्रथानुसार हाथ पर अंगारा रखकर, जलते चूल्हे और कढ़ाई में उबलते तेल में हाथ डलवाकर उसकी परीक्षा की जाती है। वह पहली दोनों परीक्षाओं से तो अपनी चतुराई से सफल हो जाता है, क्योंकि अंगारा रखते समय हाथ में खपरैल का टुकड़ा लेता है और टुकड़े पर अंगारा। तर्क से हाथ में अंगारा लेने की बात कहकर वह पंचों के फन्दे से निकलता है। ऐसा ही चूल्हे में हाथ डालने में करता है। वह हाथ डालते ही निकाल लेता है, क्योंकि चूल्हे में हाथ डालने भर की बात थी, देर तक उसके भीतर रखने की नहीं। जब उबलते तेल की कढ़ाई मे हाथ डालने की बात आती है तो वह चौपाल के पेड़ के पत्ते तोड़कर उन को तेल म डालता है और पंचों पर छिड़कता है, जिससे पंच भागते हैं। छन्दी कहता है—"अरे यह क्या ? भागते क्यों हो ? तुम सब तो हरिश्चन्द्र हो न ? दूध के धुले हुए। धर्म के अवतार !! क्या इस तेल की बूँदें गरम लगीं। क्यों भाइयो, तुम तो कोई चोर नही हो, फिर

तुमको क्यों बँदों ने जला दिया।" (पृष्ठ ३७)। अब पंचों को अकल आती है। धाँधू यह स्वीकार करता है कि मैंने भूख के कारण चोरी की। छन्दी भी कहता है—"परन्तु रात का खेल अकेले धाँधू का न था, यह सही है।" (पृष्ठ ४)।

इस नाटक में छन्दी-जैसे जुआरी और शैतान व्यक्ति के भीतर भी वर्माजी ने मानवता के अंश ढूँढ़ निकाले हैं। उसकी परीक्षा के समय 'धाँधू' का स्वयं चोरी स्वीकार करना उसके चरित्र को भी ऊँचा उठाता है। छन्दी ने कंजर की भैंसों का लालच दिखाकर सरपंचों द्वारा रिश्वत लेने की आदत की ओर इशारा किया है। पंचायत में ककड़ी के चोर को गला काटने का दण्ड देने की प्रवृत्ति पर इस नाटक से अच्छा प्रकाश पड़ता है।

वर्माजी के एकांकी नाटकों में विषय, भाव और भाषा की दृष्टि से वही विशेषताएँ हैं, जो उनकी अन्य रचनाओं में हैं। हाँ, उनकी व्यंग और हास्य की शैली इनमें और भी तीखी हो गई है।

८. अन्य रचनाएँ

वर्माजी की अन्य रचनाओं में 'दबे पाँव', 'हृदय की हिलोर' और 'बुन्देलखण्ड के लोक-गीत' इन तीन का समावेश होता है। पहली पुस्तक में वर्माजी की शिकार-सम्बन्धी आपबीती कहानियाँ संकलित हैं, दूसरी में 'सीकर' उपनाम से वर्माजी के गद्य काव्यों का संग्रह है, और तीसरी में त्योहारों पर गाये जाने वाले बुन्देलखण्डी लोक-गीतों का परिचय है।

जहाँ तक **'दबे पाँव'** का सम्बन्ध है, यह उनकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है। इससे वर्माजी के शिकारी-रूप पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। अपने उपन्यासों, नाटकों और कहानियों में वर्माजी ने शिकार और बन्दूक चलाने का जो वर्णन किया है उसमें और 'दबे पाँव' की कहानियों में काफी समानता है। वर्माजी ने कैसे शिकार खेलना प्रारम्भ किया, कौन-कौन मित्र उनके साथ रहते थे, किस-किस जानवर के शिकार में क्या-क्या अनुभव हुए, कब-कब उनको प्राणों के लेने के देने पड़े, शिकार में रायफल, कारतूस, लाठी और कुल्हाड़ी का कब और कैसे प्रयोग किया जा सकता है, कैसे साथियों की शिकार में आवश्यकता है, आदि बातों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है।

वर्माजी ने शिकार के लिए होली-दिवाली के त्योहार मनाने तक छोड़ दिये थे और रात-रात-भर जंगलों में बैठे रहते थे। कचहरी का काम निबटा और वे बन्दूक उठाकर चल दिए। वे लिखते हैं—"मैं काम करते-करते प्रत्येक शनिवार की संध्या की बाट जोहा करता था, जो-कुछ भी सवारी मिली अपने मित्र श्री अयोध्याप्रसाद शर्मा को लेकर शनिवार की शाम को चल दिया, रविवार जंगल में बिताया और सोमवार को सवेरे काम पर वापिस।"

प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने का अवसर शिकार के बहाने जंगलों में घूमने से हुआ। नदी, उसके झरने, पहाड़ और उस पर खड़े नाना प्रकार के पेड़-पौधों से उनकी आत्मीयता स्थापित हो गई। पशु-पक्षियों के स्वभाव का गहरा अध्ययन उन्होंने यहीं किया। नील-कण्ठ चण्डूल और लाल मुनियाँ चिड़िया का वर्णन करते हुए वर्माजी ने लिखा है—"रात के तीसरे पहर में जब ये पक्षी अपने मिठास-भरे स्वरों का प्रवाह बहाते हैं तब किसी भी बाजे से उनकी मोहकता की तौल नहीं की जा सकती। मैंने तो गड्ढों में बैठे-बैठे इनकी मनोहर तानों को सुनते-सुनते घण्टों बिता दिये। बन्दूक एक तरफ रख दी और इनके सुरीले बोलों पर ध्यान को अटका दिया। जानवर पास से निकल गये, परन्तु मैंने बन्दूक नहीं उठाई। ऐसा जादू पड़ गया कि मैंने कभी-कभी सोचा, खेतों की रखवाली का सारा ठेका क्या मैंने ही ले रखा है।" (पृष्ठ १२७)। चकवा-चकवी के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे रात को नहीं मिलते। वर्माजी ने अपनी आँखों से उनको रात में नदी-तट पर साथ देखकर कवियों के भ्रम को यों दूर किया है—"नदी के पानी के पास चकवा-चकवी बोल रहे थे। वे अलग न थे। रात को भी साथ ही रहते हैं। पुराने कवियों के भ्रम ने ही उनको अलग किया है।" (पृष्ठ ६१)। इसी प्रकार पशुओं और पक्षियों के स्वभाव पर उन्होंने अनेक ऐसी ज्ञातव्य बातें लिखी हैं, जिनसे साहित्यिकों का ज्ञान-वर्द्धन हो सकता है।

अपने उपन्यासों के लिए पात्र और अन्य सामग्री भी इस शिकार यात्रा में उन्हें मिलती रही है। 'गढ़ कुण्डार' और 'कचनार' की प्रेरणा क्रमशः कुण्डार के गढ़ और अमर कंटक यात्रा के फल हैं। 'दबे पाँव' में कदाचित् कचनार के लिए ही उन्होंने लिखा है—"जब पठार पर पहुँचकर नर्मदा के प्रपात को देखने गये, ऊपर की ओर बगल में एक छोटा-सा बँगला देखा। उसमें शायद कोई संन्यासी या प्रवासी रहते थे। संन्यासी का अनुमान इसलिए करता हूँ कि उसमें

से वन-कन्या या देव-कन्या के समान सौन्दर्य वाली एक युवती निकली जो 'गेरुए वस्त्र धारण किये हुए थी और चौड़े मस्तक पर भस्म का त्रिपुण्ड लगाये हुए थी। यदि जीवन रोमान्स है—मुझे तो बहुलता के साथ मिला है—तो उस कुटी में अवश्य था।" (पृष्ठ १४६)।

वर्माजी की शिकारी कहानियों से यह भी पता चलता है कि क्यों वे समाज के निम्न वर्ग और अपदार्थ समझे जाने वालों के जीवन में रस लेने लगे। दुर्जन, कुम्हार, मन्टोले और विन्देश्वरी को उन्होंने अपना अत्यन्त निकटतम मित्र समझा। गाँव वालों के बारे में उनका मत है—"नगरों में रहने वालों का ख्याल है कि गांवों में रहने वाले लोग अपने बाहर के संसार से अनजान रहते हैं, इससे बढ़कर और कोई भूल नहीं हो सकती। गाँव वालों को इतना सताया गया है, उनकी इतनी अवहेलना की गई है कि सिधाई और अज्ञान को उन्होंने अपना आवरण बना लिया है। वे उस आवरण को डाले हुए शत्रु-मित्र दोनों के सामने एक समान भावना से आते हैं। जब वे समझ लेते हैं कि मित्र के रूप में 'बाहर' से आया हुआ मनुष्य उनका वास्तविक मित्र या हितचिन्तक है तब वे उस आवरण को हटा देते हैं। उस समय उनका सच्चा स्वरूप दिखलाई पड़ता है। उनकी ठोस बुद्धि, उनका दृढ़ स्वभाव और उनकी तत्परता उस समय पहचानने में आती है।" (पृष्ठ १७५)। इस प्रकार 'दबे पाँव' की शिकारी कहानियाँ वर्माजी के जीवन, स्वभाव और साहित्य की अनेक बातों पर प्रकाश डालती हैं। बिना इनको पढ़े वर्माजी के साहित्य का पूरा मर्म नहीं समझा जा सकता, इसलिए इनका विशेष महत्त्व है।

'हृदय की हिलोर' में वर्माजी के २६-३० गद्य-काव्य सग्रहीत हैं। इस संग्रह पर वर्माजी का उपनाम 'सीकर' छपा है। इसका समपरण है—"अपने पूज्य देवता के चरण-कमलों में।" इससे पता चलता है कि ये उनके तरुण जीवन के प्रेमोद्गार हैं। ये गद्य-काव्य आचार्य चतुरसेन शास्त्री के 'अन्तस्तल' की कोटि के हैं। इनमें अपने प्रिय के

प्रति समर्पण, अनन्यता, दर्शन-लालसा, अनुनय-विनय, रीझ-बूझ और कसक-वेदना के बहुरंगे चित्र हैं। इनके शीर्षक हैं—'तुम मुस्करा क्यों रहे हो', 'मैं तुम्हारा कौन हूँ', 'तुमको मैंने आज देखा', 'तुम मेरे प्राणधन हो,' 'कसक', 'उपहार', 'उदासीन', 'संयोग' आदि। इनकी शैली दो प्रकार की है वार्तालाप-प्रधान और स्वगत-कथन-प्रधान दोनों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

१—"मैंने उनसे पूछा, 'जब तुमने मुझे पहले-पहल देखा था तब तुमने क्या सोचा?' जवाब दिया, 'क्या यह सोचने की बात थी?' मैंने कहा, 'छिपाओ मत, बतलाओ! नहीं तो मैं तुम्हें हैरान करूँगा।' पूछने लगे, 'किस तरह हैरान करोगे?' मैंने उत्तर दिया, 'अपराध होने से पहले दण्ड देना नीति के विरुद्ध है।' बोले, 'मैं क्या जानूँ?' मैंने कहा, 'मैं तुम्हारी खुशामद करता हूँ, बतलाओ।' कहने लगे, 'भला तुम्हीं बतलाओ, कि मुझको देखकर तुमने क्या सोचा था?' मुझे हँसी आ गई।" (पृष्ठ ६२)।

२—"देवता पर सोलह आना हृदय निछावर कर दिया। इस आशा से नहीं कि देवता भी अपनी सोलह आना कृपा मेरे ऊपर करेगा अपूर्ण हृदय को पूर्णता प्राप्त हुई। चौक पूरना व्यर्थ नहीं हुआ और व्यर्थ नहीं हुआ पाँवड़े का डालना, मण्डप का तानना, सुमन और वायु-स्पर्श, नदी-नद का स्वागत, वीणा-संगीत और मन्त्र का उच्चारण। अब मालूम हुआ कि सोलह आना हृदय का सम्पूर्ण सोलह आना जोड़ सोलह आने हृदय के आ मिलने से होता है। मैंने अभिमानपूर्वक कहा, "इस सम्पत्ति पर मेरा अक्षुण्ण अधिकार है। और मेरे हृदय पर उसका? कहने की आवश्यकता नहीं।" (पृष्ठ १३४)।

इस प्रारम्भिक कृति में वर्माजी के प्रकृति-प्रेम, भावुकता और संवाद-सौष्ठव तीनों का परिचय मिलता है।

'बुन्देलखण्ड के लोक-गीत' में बुन्देलखण्ड के लोक-गीतों की सरस व्याख्या प्रस्तुत की गई है, जो उनकी लोक-संस्कृति के प्रति तीव्र अनुरक्ति की सूचक है।

६. भाषा, शैली और शिल्प

भाषा

वर्माजी द्वारा विशाल परिमाण में रचित साहित्य के अनुपात से ही उनकी भाषा भी सम्पन्न है। लेकिन जैसे अपने समस्त साहित्य में वर्माजी बुन्देलखण्ड की परम्पराओं का विस्मरण नहीं कर सके, वैसे ही बुन्देली भाषा भी उनकी लेखनी की नोंक से कभी अलग नहीं हुई। उनके द्वारा रचित कृति किसी भी वर्ग अथवा किसी भी देश-काल से सम्बन्ध रखने वाली हो, बुन्देली भाषा उसम अपना स्थान सुरक्षित किये बिना नहीं मानती। अतः हम पहले बुन्देली भाषा को ही लेते हैं। विवेचन की सुविधा के लिए हम संज्ञा, विशेषण, क्रिया-पद, मुहावरे, कहावतों आदि के शीर्षकों मे रखकर बुन्देली भाषा पर विचार करेंगे।

संज्ञा शब्द—वर्माजी ने बुन्देली भाषा से जिन प्रचलित संज्ञाओं को लिया है उनमें से कुछ ये हैं—

टौरिया (छोटी पहाड़ी), ढी (नदी का ऊँचा किनारा), पेड़, भरका (नदी का खार), करघई, रेंवजा, अचार (तीनों वृक्ष विशेष), पतोखी (रात में बोलने वाली एक चिड़िया), रमतूला (रणतूर्य या धौंसा), गदेली (हथेली), फुरेरू (फुरफुरी), भरप (पर्दा), झीम (नींद का झोंका), नावता (सयाना, तन्त्रानुयायी), ततूरी (गरम रेत से पैरों का जलना), बन्धिया (खेत की ऊंची मेंड़), छपका (धब्बा), हुलास (संस्कृत उल्लास), उकास (संस्कृत अवकाश), आवरा (संस्कृत आवरण), दुबचर्रा (चपेट), हुरकनी (वेश्या), उसार (घर का काम), अटक (आवश्यकता), सोंझ (साझा), खाँगोरिया (हसली), चुकावरा (भुगतान), बरासो (अँगोठो), रौरा (हल्ला, शोर), उलायत (जल्दो,

तेजी), डिडकार (बड़े पशु की जोर की आवाज), तिपहरी (तीसरा पहर), तिगलिया (तिराहा), रावर (अंत:पुर) आदि ।

कुछ संज्ञा शब्द दो शब्दों से मिलकर भी बने हैं । जैसे—थराई विनती (अनुनय-विनय), किनर-मिनर या हिचर-मिचर (आनाकानी), रीना-झीना (हीन, दरिद्र), अटक-भीर (आवश्यकता या चिन्ता), सोंझ-बाट (हिस्सा-बाँट), इखर-बिखर (फूट, अलगाव), चोट-जरव (हानि) आदि ।

विशेषण शब्द—ये शब्द भाव-व्यंजना की अद्भुत क्षमता रखते हैं । इनमें से कुछ वर्माजी द्वारा स्वयं बनाये जान पड़ते हैं । ऐसे शब्द हैं–धूमरे बादल (धुएँ के-से बादल), मदीली चितवन (मदभरी चितवन), चँदीली लहरें (चाँदी की-सी लहरें), मुछाड़िया (बड़ी मूँछों वाला), उटङ्गड़-पैजामा (ऊँचा पायजामा), करमीले (कर्मठ) ।

क्रिया पद—कोंचना (चुभाना), आँसना (कसकना), सकेलना (इकट्ठा करना), बरकाना (बचाना), समोना (मिलाना), निर्वारना (दिखाई देना), निर्वरना (निश्चय करना), रानना (स्वीकार करना, बताना), ओटना (पेलना), मीसना (मीड़ना), झमा आना (चक्कर आना), पसीने में सरसंक होना (पसीने से नहा जाना), पछियाना (पीछा करना), धकियाना (धक्का देना) आदि ।

कुछ शब्दों को वर्माजी इकार से प्रारम्भ करके लिखने के पक्ष में हैं । जैसे चिनौती, सिपुर्द, जिमीन, किलपना, मुस्किराना आदि । 'लुक-छिप' को 'छप-लुक' और 'खण्डहर' को 'खण्डहल' लिखने तथा 'अधिकांश' के लिए 'बहुतांश' का प्रयोग करने में भी वे बुरा नहीं मानते । कदाचित् भाषा में माधुर्य और आकर्षण लाने के लिए ही ऐसा किया गया है ।

मुहावरे—तली झाड़ना (मन की बात निकलवाना), जीभ लोकना (कुछ कहने को उत्सुक होना), सकारना (समर्थन करना), सुग-सुग चलना (मंत्रणा होना), मन में मथानी-सी फिरना (हलचल या

घबराहट होना), बक न फटना (बोल न निकलना), सिर कोल खाना (माथापच्ची करना), चिमाई साधना (चुप्पो साधना), धप्प ढीलना (चपत लगाना), कुन्दी करना (मरम्मत करना), पंख का परेबा बनना (बात का बतङ्गड़ होना), तोरई छोंकना (बक-बक करना), निराला पाना (एकान्त पाना या फुर्सत पाना), बर्ताव बरसाना (दया दिखाना), खुटाई आना (कमी होना), घण्टा गुजारी करना समय बरबाद करना), चोट ओढ़ना चोट सहना) आदि । कुछ मुहावरे और वाक्य-खण्ड तो ऐसे हैं जो विचित्र अर्थ देते हैं । उनमें से एक है—'उनका पीछा हुए कई बरस हो गए ।' इसका अर्थ है—उनको मरे हुए कई वर्ष हो गए । कहीं-कहीं वर्माजी ने बड़े ही सार्थक मुहावरे स्वयं बनाये हैं । उनमें व्यंजना-शक्ति का अद्भुत चमत्कार है । जैसे 'उठता-बैठता समाचार आया ।' इसका अर्थ उड़ती-उड़ती खबर है, पर इसमें वह चमत्कार नहीं है ।

कहावतें—मोरे घर से आग लाई नाँव धरौ वैसान्दुर (मेरे घर से आग लाई नाम रखा वैश्वानर) गँवार की अक्ल चोटी में होती है, ककड़ी के चोर को गला कतरने का दण्ड देना, पाँसा पड़े सो दाँव, पंच करे सो न्याव, मौसी कहकर कौन काजल लगवावे (सच्ची कहकर कौन बुरा बने), घर की कुरैया से आँख फूटती है (घर का भेदी लंका ढावे), कानी के टेंट पर सिन्दूरी बिन्दी (अरहर की टट्टी गुजराती ताला), कपड़े में लपेटकर दाँत से काट ले तो जूठा नहीं होता आदि ।

वर्मा जी भाषा को सजीव बनाने के लिए ही बुन्देली से मुहावरे और कहावतें लेना विशेष पसन्द करते हैं । वैसे खड़ी बोली के शब्द तो स्वभावतः आते ही हैं । बुन्देली भाषा ने उनकी कुछ कृतियों को तो विशुद्ध रूप से आञ्चलिकता प्रदान कर दी है । बुन्देली भाषा के कारण बुन्देलखण्ड का समस्त वातावरण आँखों के समक्ष नाचने लगता है ।

उनकी भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि वह सर्वत्र सरल है। जैसे गाँव की किसान-कन्या का सौन्दर्य उसके सुगठित शरीर और निश्छल व्यवहार में रहता है वैसे ही वर्माजी की भाषा का सौन्दर्य सभी प्रकार के प्रचलित शब्दों द्वारा अभीष्ट भाव या विचार अथवा व्यक्ति या परिस्थिति का चित्र अंकित करने में रहता है। उनकी भाषा का रूप समझने के लिए एक उदाहरण देकर विवेचन करना उपयुक्त रहेगा। महारानी लक्ष्मीबाई के चारित्रिक गुणों का परिचय देते हुए वर्माजी लिखते हैं—

"उनका **कसरतों का शौक शीघ्र विख्यात हो गया**। अमीरखाँ और वजीरखाँ दो नामी उस्ताद उनको मिले। बालागुरु भी बिठूर से आये और **मल्लविद्या के सूक्ष्मतम दाँव-पेंच** बतलाकर चले गए। नरसिंहराव **टौरिया के नीचे दक्षिणियों** के मुहल्ले में वे एक अखाड़ा जारी कर गये। रानी **कुश्ती का अभ्यास** अपनी सहेलियों के साथ करती थी। तीर, बन्दूक, छुरी, बिछुआ, रैकला इत्यादि चलाने में पहले दर्जे की श्रेष्ठता, उन्होंने अमीरखाँ और वजीरखाँ के निर्देशन से प्राप्त की थी -ऐसी और इतनी कि उनकी कुशाग्र बुद्धि, शक्ति और **हस्त-कुशलता** पर वे तीनों नामी उस्ताद विस्मय में डूब जाते थे। वे जानते थे कि रानी उद्दण्ड प्रकृति की है इसलिए कभी-कभी लगता था कि हथियार न चला दें या परीक्षा के लिए **ललकार न बैठें**। यह उनका भ्रम था। **रानी का बाह्य रूप प्रचण्ड और तेजपूर्ण था, परन्तु अन्तर बहुत कोमल और उदार**।" (झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई पृ० १८१)।

उपर्युक्त उदाहरण में वर्माजी की भाषा की सभी विशेषताएँ आ गई हैं। प्रारम्भ से लीजिये **'कसरतों का शौक'** के साथ **'शीघ्र विख्यात'** लाकर अरबी-फारसी या संस्कृत को एक साथ रख देने में उनको कोई असुविधा नहीं जान पड़ती। **'मल्लविद्या के सूक्ष्मतम दाँवपेंच'**

के स्थान पर वे **मल्लविद्या के सूक्ष्मतम भेद या भेदोपभेद** भी कर सकते थे। अगले वाक्य में **टौरिया बुन्देलखण्डी** शब्द है और **दक्षिणी** जनता द्वारा महाराष्ट्रियों के लिए प्रयुक्त अपनी टकसाल में ढाला हुआ शब्द। 'कुश्ती का अभ्यास' में फारसी और संस्कृत साथ-साथ बैठी हैं। **'हस्त-कुशलता'** का संस्कृत प्रचलित रूप **हस्त-लाघव** है, पर कुशलता सहज ग्राह्य है, अतः वर्माजी ने बोध-गम्यता के लिए **लाघव** न रखकर **'कुशलता'** रख दिया। **'ललकार बैठना'** मुहावरा भी आ गया। अन्तिम वाक्य संस्कृत तत्सम शब्दावली से युक्त है। इस प्रकार वर्माजी की भाषा में किसी संकोच के सभी भाषाओं के शब्द, ग्रामीण प्रयोग और प्रचलित मुहावरे एक साथ मिल जाते हैं। यह उनकी भाषा का सामान्य रूप है।

उनकी भाषा अवसरानुकूल बदलती रहती है। नारी-सौन्दर्य के चित्रण के समय उसका रूप आलंकारिक-सा हो उठता है, तो प्रकृति-चित्रण के समय उसका पूरा चित्र उपस्थित करने का। युद्ध के वर्णन के समय उसमें गति और वेग आ जाता है तो मन्दिर या खण्डहर का वर्णन करते समय मन्थरता; खेत-खलिहान का वर्णन करते समय उसमें किसान, उसकी दशा और प्रकृति के साथ उसका सम्पर्क सब-कुछ लेकर चलने का भाव होता है तो त्योहार और उत्सवों के वर्णन में चुहल एवं हास्य-विनोद का। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण होने पर भाषा की गति कभी अलस और कभी सोल्लासमय दोनों प्रकार की रहती है।

नारी-सौन्दर्य के चित्रण में उनकी भाषा का रूप देखिये— "कुमुद चट्टान पर खड़ी हो गई, **मानो कमलों का समूह उपस्थित हो गया हो—**जैसे **प्रकाश-पुञ्ज खड़ा कर दिया गया हो**। पैरों के पैंजनों पर सूर्य की स्वर्ण-रेखाएँ फिसल रही थीं। **पीली धोती मन्द पवन के धीमे झकोरे से दुर्गा की पताका की तरह धीरे-धीरे लहरा रही थी।**

उन्नत भाल मोतियों की तरह भासमान था। बड़े-बड़े नेत्रों की बरौनियाँ भौंहों के पास पहुँच गई थीं। **आँखों से झरती हुई प्रभा ललाट पर से चढ़ती हुई** उस निर्जन स्थान को आलोकित करने लगी। **आधे खुले हुए सिर पर से स्वर्ण को लजाने वाले बालों की** एक लट गर्दन के पास ज़रा चंचल हो रही थी। उस विस्तृत जङ्गल और नदी की उस ऊँची चट्टान के सिरे पर खड़ी हुई कुमुद को देखकर कुञ्जर का रोम-रोम कुछ कहने के लिए उत्सुक हुआ।" (विराटा की पद्मिनी, पृ० २४५)। इस उद्धरण में एक साथ उत्प्रेक्षा, उपमा और प्रतीप अलंकारों का समावेश हुआ है। 'मानो कमलों का समूह उपस्थित हो गया हो' और 'जैसे प्रकाश-पुञ्ज खड़ा कर दिया गया हो'—दोनों उत्प्रेक्षाएँ एक साथ आकर भाषा के संस्कृत-गर्भित रूप को और भी चमका गई हैं। 'पीली धोती मन्द पवन के धीमे झकोरे से दुर्गा की पताका की तरह फहरा रही थी' और 'उन्नत भाल मोतियों की तरह भासमान था'—दोनों उपमाएँ अछूती हैं। 'आधे खुले हुए सिर पर से स्वर्ण को लजाने वाली बालों की एक लट गर्दन के पास ज़रा चंचल हो गई थी' में प्रतीप का क्या ही सुन्दर समावेश है। आँखों से झरती हुई प्रभा के ललाट पर चढ़ने में सौन्दर्य की अतिशयता की ऐसी व्यञ्जना है कि वह स्थिर होते हुए भी गतिशील जान पड़ता है। टेकरी पर खड़ी है कुमुद, और उत्सुक खड़ा है कुञ्जर ; और वह भी नदी तट पर। क्या कोई चित्रकार इससे सुन्दर पृष्ठभूमि में दो मूक प्रेमियों की कल्पना को आकार दे सकता है ?

नदी का एक दूसरा अलंकृत भाषा का चित्र यों है—"खेत से थोड़ी दूर नदी बह रही थी। उसके सिरे का पानी बहता हुआ दिखलाई पड़ रहा था। चन्द्रमा की रपटती हुई झिलमिल जान पड़ती थी, मानो चाँदी की चादरों के **आवरों पर आवरे** (आवरण पर आवरण) चिल-चिला रहे हों। छोटी-छोटी आड़ी-सीधी लहरें उठ-उठकर इन आवरों

को पहन लेती थीं। सम्पूर्ण लहरों का समूह चाँदी की उन चादरों को ओढ़ लेने की होड़-सी लगा रहा था। पवन के आने-जाने वाले झकोरे इन आवरों को और भी चंचल कर रहे थे। **लहरों की कल-कल झोंकों पर नाचती-खेलती हुई खेतों के पौधों की झूम पर उतर-उतर जाती थी।** चन्द्रिका खेत के हरे पौधों की पकी बालों को अपनी कोमल उँगलियों से खिला-सा रही थी। हरी पत्तियों पर जमे हुए **ओस-कण चमक-चमककर बिखर-बिखर** जा रहे थे।" (मृगनयनी, पृष्ठ १५)। इस उद्धरण में चाँदनी में नदी की लहरों का चित्र ही नहीं खड़ा होता, लहरों की कल-कल के साथ, हरे-भरे खेत के पौधों का दृश्य भी उपस्थित हो जाता है। 'उतर-उतर, चमक-चमक, बिखर-बिखर' की पुनरुक्ति ने भाषा को जड़ाऊ गहने की दमक दे दी है।

वैसे अलंकारों में वर्माजी को उत्प्रेक्षा विशेष प्रिय है। वे उत्प्रेक्षाएँ वर्माजी की भाषा की विशिष्टता कही जा सकती हैं। प्रयोगवादियों को चाहिए कि वे नये उपमान खोजने के लिए मेंढक-छिपकली को पकड़ने से पहले वर्माजी की रचनाएँ ही पढ़ लें। वर्माजी की उत्प्रेक्षाओं के कुछ नमूने देखिये—

(१) जिस समय तारा घाटियों के बीच में से मैदान में निकल पड़ती थी ऐसा जान पड़ता था जैसे हिमालय से गंगा निःसृत हुई हो (गढ़ कुण्डार पृष्ठ ७१)।

(२) नूरबाई हँस पड़ी, जैसे सारंगी की तान पर तबले की मीठी थाप पड़ी हो। (टूटे काँटे, पृष्ठ २०६)।

(३) लाखी के रूखे होठों पर मुस्कान आई जैसे सूखे नाले में पहली छिछली वर्षा की धार हो। (मृगनयनी, पृष्ठ २३४)।

(४) क्षण भर सोचने के बाद मुस्कराहट की एक रेखा मङ्गल के होठों पर दिखलाई दी, जैसे कि सूखे पेड़ की छोटी-सी डाली में थोड़े से हरे पल्लव। (प्रत्यागत पृष्ठ ३३)।

अलंकारों के साथ सूक्तियाँ भी वर्माजी की भाषा को सँवारती-निखारती हैं। ये सूक्तियाँ उनके पात्रों के कथोपकथन में नगीने की तरह जड़ी हैं। जैसे किसी अन्धकारपूर्ण कक्ष में स्विच दबाते ही प्रकाश के प्रसार से उस कक्ष की समस्त वस्तुएँ प्रत्यक्ष हो जाती हैं, वैसे ही सूक्ति-समावेश से पात्र को अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने में सुविधा हो जाती है। उसका कथन पारदर्शक हो उठता है। वर्माजी के नाटकों में जहाँ समाज की जड़ता पर चोट की गई है अथवा सांस्कृतिक प्रश्नों पर विचार किया गया है अथवा विज्ञान और दर्शन की गुत्थियों को सुलझाया गया है, सूक्तियाँ विशेष रूप से आई हैं। वैसे उपन्यासों में उनकी कमी हो, ऐसी बात नहीं। कुछ सूक्तियों के उदाहरण लीजिये—

१. राजनीति में धर्माचार्यों और योगियों की सलाह की जरूरत नहीं है। (गढ़ कुण्डार, पृष्ठ ४२२)।

२. स्त्रियाँ बात काटती हैं, सिर नहीं। (विराटा की पद्मिनी, पृष्ठ १५५)।

३. अशान्ति और कोलाहल भी सदा-सर्वदा एक-से नहीं रहते। (संगम, पृष्ठ ६९)।

४. स्त्रियाँ मनुष्य की अपेक्षा अधिक बुद्धिशाली और चतुर होती हैं। (कचनार, पृष्ठ ३७३)।

५. दरिद्रता और विपत्ति परमात्मा की छैनी और हथौडी हैं, जिनसे वह अपनी सृष्टि के प्रतिभाशाली व्यक्तियों की बुद्धि और विवेक की प्रतिभा को छील-छीलकर कल्याणकारी बनाता है। (भुवन विक्रम पृष्ठ १२७)।

६. विद्या, धन और ऊँची-नीची संस्कृति का उपयोग मनुष्य किस प्रकार करता है, यही ऊँची-नीची संस्कृति का मापदण्ड है। (पूर्व की ओर, पृष्ठ १८२)।

दूसरों के अधिकारों को बटोर-समेटकर अपनी थैली में भरते

रहना, यही तो होती है महत्त्वाकांक्षा। (खिलौने की खोज, पृष्ठ १०८)।

८. रीति-रिवाजों की खिचड़ी सदा से पकती चलती आई है। (देखा देखी, पृष्ठ ३)।

९. जिस मुफ्तखोरी को अमीरी कहते हैं वह असल में भीख माँगने से भी बुरी है। (बाँस की फाँस, पृष्ठ ६०)।

१०. मङ्गल का सूत्र है—जीवन को जीवन समझकर आगे बढ़ना। (मङ्गलसूत्र, पृष्ठ ८१)।

११ हर मनुष्य में ज्योति का एक खण्ड है, जो घने अन्धकार को चीरकर किसी-न-किसी दिशा में छिटकने का प्रयत्न करता रहता है। (नीलकण्ठ, पृष्ठ १०१)।

वर्माजी की भाषा के अलंकृत और सूक्तिमय रूप को हमने देख लिया। अब उसके अत्यन्त सादे रूप की बानगी देखिये—

"सूर्य ऊँचे उठ आया था। धूप में कुछ तेजी आ गई थी। उन दोनों ने अपने अगरखे उतारकर मेंड पर रख लिए और चबैनों को फेंट में बाँधकर कटाई पर जुट पड़े। कटाई के समय मोहन के मांसल भरे हुए रगपट्ठे उभर-उभर पड़ रहे थे। और तोता के छरै नस-नसीले गठीले उछल-से रहे थे। गेहूँ के सूखे तीकुर उड़कर उनके माथे और गर्दन पर चिपक रहे थे। गेहूँ के बीच-बीच में कहीं-कहीं हरे चने के पौधे भी पड़ जाते थे। तोता उनको एक हाथ से उखाड़-उखाड़कर बिना छिली हुई घेंटी समेत खाता-चबाता चला जाता था।" (टूटे काँटे, पृष्ठ ६)। यहाँ यह बात भी स्मरणीय है कि वर्माजी के वाक्यों का गठन लम्बा नहीं होता। वकील होने से वे नपे-तुले शब्दों में ही बात कहने के अभ्यासी हैं, अतः उनके वाक्य छोटे होते हैं। अलंकृत भाषा में भी वे इतने लम्बे नहीं हो पाते कि उनका आशय ही समझ में न आए। जैसे—"अच्छा अब भूख नहीं है, पास बैठ जाओ। तुमको देखता रहूँगा। आजन्म, जन्म-जन्मान्तर। अनन्त काल तक। उसकी

आँखों में कृतज्ञता की तरलता लक्ष हुई। कृतज्ञ नेत्र, सुन्दर, मनोहर और हृदय-हारी। किसने बनाये ? क्यों बनाये ? आत्मा के गवाक्ष। पवित्रता के आकाश। प्रकाश के पुञ्ज। फिर उसके चारों ओर आभा का एक मण्डल-सा खिच गया। जैसे गढ़ के चारों ओर दीवार खिच गई हो।" (गढ़-कुण्डार, पृष्ठ ४९६)। एक बात और, वे पात्रों के वर्ग, जाति और स्वभाव के अनुकूल भाषा रखते हैं।

शैली

वर्माजी की शैली यों तो विविध प्रकार की है, फिर भी सुविधा के लिए उसको इन चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) वर्णन-प्रधान शैली, (२) भावुकता-प्रधान शैली, (३) विचार-प्रधान शैली और (४) हास्य-व्यंग-प्रधान शैली।

वर्णन-प्रधान शैली—वर्माजी मूल रूप से ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। इतिहास में युद्धों और दरबारों के विस्तृत विवरण के साथ तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थिति का भी यथातथ्य वर्णन होता है। इसलिए ऐतिहासिक उपन्यासकार की सफलता उसकी वर्णन-शक्ति में रहती है। स्काट और ड्यूमा अपने वर्णनों के लिए ही प्रसिद्ध हैं। वर्णन-शक्ति से वे शताब्दियों के पर्तों को हटाते हुए अपने अभीष्ट का चित्र खड़ा कर सकते हैं। हर ऐतिहासिक उपन्यासकार को वर्णन की पतवार के सहारे ही अपने उपन्यास की नाव को कला के समुद्र में खेना पड़ता है। इतिहास के प्रति ईमानदार वर्माजी-जैसे उपन्यासकार को तो और भी सचेत रहने की आवश्यकता पड़ती है। अस्तु,

वर्माजी ने न केवल अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में वरन् अपने सामाजिक उपन्यासों में भी यथास्थान वर्णन-शैली का प्रयोग किया है। सच पूछा जाय तो उनमें इस शैली की ही प्रधानता है—विशेष रूप से उपन्यासों में। ऐतिहासिक उपन्यासों में यदि गढ़ों, युद्धों, सेनाओं और दरबारों में नाच-रंग तथा हरमों के वर्णन हैं तो सामा-

जिक उपन्यासों में खेत-खलिहानों, पंचायत-सभाओं और मेले-तमाशों तथा तीज-त्याहारों के वर्णन हैं। जगलों-पहाड़ों, नदी-नालों तथा प्रकृति के अन्य दृश्यों के पृष्ठभूमि में रहने के कारण उनके अनेक कोणों से लिये गये फोटोग्राफ़-जैसे वर्णन हैं। रात के समय सेना के शिविर का यह वर्णन वर्माजी की वर्णन-शैली की विशेषता प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है—"सेना के शोर-गुल और जंगल के कट जाने के कारण हाथी, गेंडे, अरने. कुछ दूर गहरे में हट गये; परन्तु हाथियों की चिंघाड़ हवा के झोंकों के साथ कभी-कभी शिविर में सुनाई पड़ जाती थी। बीच-बीच में नाहर की गरज भी। शिविर के जो सिपाही सिरे पर थे उनको ये आवाजें अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ रही थीं। अलावों में वे लक्कड़-पर-लक्कड़ डालकर प्रज्ज्वलित अग्नि-शिखाओं में वे अपने डर को मिटाने का प्रयत्न कर रहे थे। दूर के पहाड़ घूमरे-धुँधले बादलों की आड़ी-तिरछी रेखाओं में दिख-दिख जाते थे। दूर के पेड़ धोखे की टट्टियों-जैसे, और पास के ऊँचे मोटे पेड़ों के झुरमुट में हवा से हिल जाने वाले पत्ते कुछ धमकी-सी दिखलाने वाले। जब लौ बहुत तेज़ हो जाती तब वे चंचल चमक में लुकते-छिपते-से दिखते। लौ धीमी पड़ती तो उनके टेढ़े-मेढ़े विकृत आकार खड़े मुर्दों के जैसे। फिर लौ तेज़ हुई और तुरन्त मंद तो जैसे मुर्दों के प्रेत बन गये हों। दूर के हाथी की चिंघाड़ या नाहर की गरज सुनाई दी तो सिपाही अलाव के और नज़दीक आ गये और हथियारों पर बार-बार निगाह डालने लगे। इनके सिर पर केवल आकाश का तम्बू था।" (मृगनयनी, पृष्ठ २२८)। भय, कौतूहल और आत्म-रक्षा तीनों भावों का सफल अंकन इस वर्णन में है। वर्माजी के उपन्यासों का यह अंग बहुत पुष्ट है। इस शैली की भाषा भी प्रसंगानुकूल बदलती जाती है।

भावुकता-प्रधान शैली—वर्माजी कोरे शुष्क ऐतिहासिक तथ्यों को लेकर माथापच्ची करने वाले नहीं हैं। वे इतिहास के कंकाल में यौवन और सौंदर्य से प्राण-संचार करने वाले भावुक कलाकार हैं। उनकी यह भावुकता प्रेम के पावन मन्दिर में आराध्य देवता के

श्रीचरणों में समर्पित उनके पात्रों के हृदयों को अखण्ड घृत-दीपक की भाँति जलाती है, जिसके प्रकाश की शीतलता कर्तव्य पर मर मिटने वालों के अमरत्व का पुण्य पथ दिखाती है। ऐसे पात्रों के हृदय के भावावेश को कलम की नोंक पर उतारने में, वर्माजी को उतनी ही सफलता मिली है, जितनी युद्धों की मार-काट और तोपों की धाँय-धाँय का वर्णन करने में, 'गढ़ कुण्डार' से लेकर 'भुवन विक्रम' उपन्यास तक जहाँ-कहीं स्त्री-पुरुषों के भाव-जगत् का वर्णन करने का अवसर वर्माजी को मिला है, वहाँ उनका हृदय ऊँचे पर्वत से झरने वाले निर्झर की भाँति वेग से प्रधावित हुआ है। 'फूलों की बोली', 'हंस मयूर', 'पूर्व की ओर' आदि नाटकों और 'कलाकार का दण्ड'-जैसी कहानियों में भी उनकी यह भावुकता द्रष्टव्य है। वर्माजी के 'हृदय की हिलोर' में संग्रहीत गद्य-काव्यों को पढ़ने पर उनके सबल शरीर और दृढ़ हृदय के अन्तराल में मन्द-मन्थर गति से बहने वाली प्रेम और करुणा की अन्तःसलिला का आभास होता है। उनकी भावुकता-प्रधान शैली के लिए 'विराटा की पद्मिनी' और 'मृगनयनी' से दो उदाहरण दिये जाते हैं—

१—"कुंजरसिंह भाव के प्रवाह में बहता हुआ-सा बोला—'यदि आपने निषेध किया तो मैं आज्ञा का उल्लङ्घन करूँगा, यदि आपने अनुमति न दी तो मैं अपने हठ पर अटल रहूँगा—मैं छाया की तरह फिरूँगा, पक्षियों की तरह मँडराऊँगा। चट्टानों की तली में, पेड़ों के नीचे, खोहों में, पानी पर, किसी-न-किसी प्रकार बना रहूँगा। आपको भ्रकुटि-भंग का अवसर न दूँगा, परन्तु निकट बना रहूँगा। साथ रखूँगा केवल अपना खड्ग। समय आने पर दुर्गा के चरणों में अपना मस्तक अर्पण कर दूँगा।" (विराटा की पद्मिनी, पृष्ठ २४२)।

२—"वह कहता गया—'ऐसे बड़े और छोटे द्वार बनाऊँगा जिनमें होकर आने वाला प्रकाश तुम्हारी हँसी और मुस्कानों को व्यक्त करे। तुम्हारे केश कुन्तल, कपोलों के दोनों ओर छूट-छूट जाने वाली लटें उन द्वारों की बन्दनवारी सजावटों में उतर आयेंगी।

तुम्हारी मुस्कान के पीछे जो मोती-से दमक जाते हैं वे बेल-बूटेदार झझरियों की आभा द्वारा व्यक्त हो जायँगे। ऊपर के खण्ड के आँगन में निकली हुई गोखें,[1] बारजें[2] और उनकी पतली सुहावनी बड़ेरियाँ[3] तुम्हारी चितवन और भौंहों को प्रकट करती रहेंगी। उन सबके ऊपर कँगूरे और कलसे तुम्हारे—" (मृगनयनी, पृष्ठ ३८८)।

विचार-प्रधान शैली—प्रत्येक कलाकार का अपना एक जीवन-दर्शन होता है। व्यष्टि और समष्टि की सुख-शान्ति के लिए वह अपने जीवन-दर्शन को रामबाण औषधि की भाँति देना चाहता है। इसे ही हम उस लेखक का संदेश कह सकते हैं। राजनीति और समाज, कला और साहित्य, संस्कृति और सभ्यता, धर्म और दर्शन आदि विषयों पर वह अपने पात्रों के द्वारा बोलता है, वाद-विवाद करता है और कुछ निष्कर्षों पर पहुँचता है। समाज में व्याप्त विचार-धाराओं के समुद्र को चिन्तन की मथानी से मथकर निष्कर्ष के अमूल्य रत्न निकालने के लिए उसे देव और दानव दोनों का उत्तरदायित्व निभाना पड़ता है। इसके लिए न तो कोरे वर्णन से काम चल सकता है और न भावावेशमय उद्गारों से। इसके लिए तो ठोस विचार के धरातल की आवश्यकता पड़ती है। इस आवश्यकता के कारण ही विचार-प्रधान शैली का जन्म होता है।

वर्माजी ने भी अपनी कृतियों में राजनीति, समाज, धर्म-विज्ञान, अध्यात्म, योग, दर्शन, सस्कृति आदि विभिन्न विषयों पर अपने विचार प्रकट किये हैं। 'झाँसी की रानी', 'माधवजी सिंधिया', 'अचल मेरा कोई', 'भुवन विक्रम', 'धीरे-धीरे' आदि में राजनीति और इतिहास पर उन्होंने विचार किया है। 'मृगनयनी', 'फूलों की बोली', 'अचल मेरा कोई' आदि में कला, संगीत, नृत्य, मूर्ति, चित्र आदि की चर्चाओं और सांस्कृतिक प्रश्नों को उठाया गया है। 'पूर्व की ओर' और 'कलाकार का दण्ड' में पाश्चात्य तथा पौर्वात्य संस्कृतियों की

१—जाली। २—छज्जे। ३—छज्जे में नीचे लगाने वाले तराशे हुए टोडे।

तुलना की गई है और 'अमर बेल' तथा 'नीलकण्ठ' में विज्ञान एवं अध्यात्म के समन्वय पर बल दिया गया है। इन सब पर विचार करने के लिए विचार-प्रधान शैली अपनाई गई है, जिसका रूप यह है—"प्रकृति-विजय और मनोविजय के बीच राजीनामा कर लिया जाय। केवल प्रकृति पर विजय पाने की धुन में देवता न केवल भोग-विलासी बन गये और दानवों से लड़ते-लड़ते आपस में भी भिड़ गए, बल्कि शंकर के बतलाये हुए हथियार—सत्य का उपयोग न कर सके। इधर हमारे संसार के लगभग हरएक मानव की धारणा हो गई है कि जो कुछ उसे सूझ रहा है वही ठीक है। एक-दूसरे को समझने का कोई उपाय ही नहीं करता, मनोवृत्ति ही यह हो गई है।" (नीलकण्ठ, पृष्ठ ८९)।

हास्य-व्यंग-प्रधान शैली—जीवन की एकरसता मृत्यु है। उसमें विविधता होने से ही जीने का आनन्द आता है। कोई व्यक्ति (जिसमें जीवन-तत्त्व ही न हो उनको छोड़कर) न केवल जंगल और पहाड़ों में घूमता हुआ प्रकृति को ही देखता रह सकता है, न हृदय की भावुकता में डूबकर एकान्त सेवन कर सकता है और न मित्रों के बीच वाद-विवाद करके दुनिया-भर की समस्याओं का हल खोजने में ही रत रह सकता है। उसे इन सबके लिए शक्ति-संचय करने के बीच-बीच में हास्य और व्यंग की शरण में जाकर हृदय और मस्तिष्क को विश्राम देना होता है। वर्माजी ने भी अपनी रचनाओं में हास्य और व्यंग का उचित समावेश किया है। हास्य और व्यंग की योजना के लिए वर्माजी ने कई उपाय काम में लाए हैं। कुछ तो पात्र ही ऐसे हैं जिनका व्यक्तित्व ही हास्यास्पद है। ऐसे पात्रों में 'मृगनयनी' का महमूद बघर्रा प्रमुख है। उसके खाने-पीने, उठने-बैठने, चलने-फिरने की बातें ही हँसी हँसाने वाली हैं। एक रात उसके नींद में ही खाते-खाते गिर पड़ने का वर्णन है। (मृगनयनी, पृष्ठ ४३७)। उसके खाने का वर्णन करते हुए शर्माजी ने उत्प्रेक्षाओं के सहारे हास्य की सृष्टि की

है—जैसे—"एक केले के दो कौर करने के बाद बघर्रा ने प्रधान जासूस की ओर मुँह फेरकर 'ऊँह' की। जैसे बादल गरज गया हो।" (मृगनयनी, पृष्ठ ७६)। "पेट पर हाथ फेरकर बघर्रा ने एक लम्बी डकार ली, जैसे बरसात में कोई कच्चा मकान गिरा हो।" (वही, पृष्ठ ७६)। 'सोना' में रूपा का पति अनूपसिंह एक हँसोड़ व्यक्ति है, वह मुखिया और कुम्हार को छकाता है, 'संगम' में संपतलाल पंजाबी के हाथ बिकी हुई स्त्री के रूप में पकड़ा जाता है, 'जहाँदारशाह' में बादशाह कुँजड़िन से गाली खाता है, 'मङ्गल-सूत्र' में एक पण्डित पोथी-पत्रा लेकर भागते हैं, 'बीरबल' नाटक में तो हास्य-व्यंग की भरमार है, 'लो भाई, पंचो ! लो !!' में तो छन्दी द्वारा पंचों पर उबलता तेल डालने की बात पढ़कर हँसी आये बिना नहीं रहती। 'मेंढकी का ब्याह' में हमें 'पत्नी-पूजन-यज्ञ' वाली कहानी तो हँसते-हँसते पेट में बल डाल देती है। समग्रत: एकांकी एवं कहानियों में व्यंग की प्रमुखता है और नाटकों तथा उपन्यासों में हास्य की।

व्यक्ति से उत्पन्न हास्य का रूप महमूद बघर्रा में हमने देखा। अब परिस्थिति से उत्पन्न हास्य का उदाहरण यह है—

"जब पण्डित ने एक रस्म निभा ली, कहा—हाँ भाइयो !"

ये 'भाइयो' उन स्त्रियों के पति थे।

पहले इन्होंने अपनी-अपनी पत्नी के सामने घुटने टेके और जैसे ही माथा टेकने को हुए कि पत्नियाँ पटे छोड़कर उछलकर खड़ी हो गयीं। एकदम चिल्ला पड़ीं—

'तुम्हारा सत्यानाश जाय !'

'तुम्हारी छाती जल जाय !'

'घर में नहीं हैं दाने, अम्मा चली भुनाने।'

'दई जारे हमें बदनाम करना चाहते हैं। हम क्या चुड़ैलें हैं ? क्या हम भूतनियाँ हैं ?'

इतना रौरा मचा कि पण्डित ने भागने में ही कुशल समझी। जब

वह बाहर निकलकर आया तो 'पत्नी-पूजन' की पट्टी अपने साथ लेता आया।" (मेंढकी का ब्याह, पृष्ठ ७८)।

व्यंग का समावेश सामाजिक नाटकों और कहानियों में विशेष रूप से हुआ है। उसमें समाज की विकृति के प्रति घृणा उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। विवाहों में अभिनन्दनपत्र पढ़े जाने की प्रवृत्ति पर चोट देखिये—"मुझको अभिनन्दनपत्र का उत्तर पूरा करना है। जरा धीरज धरिये। आप चौड़ी सड़क हैं, हम केवल एक छोटी-सी पगडण्डी आप बड़े भारी ढोंके हैं, हम एक छोटे-से कंकड़। आप बड़े भारी गेहूँ हैं हम केवल भूसा। आप तूफान हैं, हम महज पंखे की हवा। आप डाकगाड़ी नहीं लम्बी मालगाड़ी हैं, हम केवल छकड़ा। आप शंकर हैं, हम नीम की निबौरी।" ('पीले हाथ', पृष्ठ २४)। हास्य-व्यंग-प्रधान शैली के वर्माजी में अनेक रूप मिलते हैं। कहीं वह गहरी चोट करने वाली है, और कहीं गुदगुदाने वाली, परन्तु है सर्वत्र सोद्देश्य—हमारी त्रुटियों को लक्ष्य बनाकर चलने वाली।

शिल्प

जिस प्रकार कोई शिल्पकार एक कुरूप और बेडौल पत्थर को छैनी-हथौड़े की सहायता से सुरूप और सुडौल बनाता है, वैसे ही एक कलाकार भूत या वर्तमान जीवन की घटनाओं को अपनी प्रतिभा और कल्पना की सहायता से ऐसा स्वरूप दे देता है, जिसमें हम अपने हृदय की भावनाओं का प्रतिबिम्ब देख लेते हैं। कलाकार जितना ही दिव्य-दृष्टि सम्पन्न होगा, उसकी कला-कृति उतनी ही भव्य और आकर्षक होगी। वर्माजी प्रतिभा और कल्पना के सहारे अपने अध्ययन और निरीक्षण में आई घटनाओं और जड़-चेतन वस्तुओं को कलात्मक रूप देने में सिद्धहस्त हैं। विभिन्न विधाओं और तत्सम्बन्धी रचनाओं का विश्लेषण करते समय अत में जो विशेषताएँ दिखाई गई हैं उनमें उनके शिल्प कौशल पर भी विचार हुआ है। अतः यहाँ उन बातों को

पुनरावृत्ति न करके सामान्य रूप से उनके शिल्प पर विचार किया जायगा।

सबसे पहली बात तो विषय-वस्तु के चुनाव और उसके संयोजन की है। इसके लिए वर्माजी इतिहास, दन्तकथाओं और दैनिक जीवन—तीनों स्रोतों से अपने विषयों का चुनाव करते हैं। अपनी प्रत्येक पुस्तक के प्रारम्भ में उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है कि अमुक घटना या पात्र सच्चा है और अमुक काल्पनिक। कई कालों की घटनाओं या एक ही काल की कई घटनाओं का एक कृति में संयोजन करने में भी वे पटु हैं। इस संयोजन के लिए ही वे कल्पना का उपयोग करते हैं, लेकिन कल्पना का ऐसा उपयोग नहीं करते कि किसी पात्र का चरित्र अथवा घटना का रूप असम्भव की सीमा को छू ले।

दूसरी बात नामों की है। वे बहुधा प्रमुख पात्र के नाम पर अपनी रचनाओं के नाम रखते हैं। 'झाँसी की रानी' नाटक और उपन्यास 'माधवजी सिन्धिया', 'विराटा की पद्मिनी', 'मृगनयनी', 'कचनार', 'सोना', 'ललित विक्रम', 'भुवन विक्रम' आदि नाम ऐसे ही हैं। 'गढ़ कुण्डार' भी ऐसा ही नाम है। क्योंकि उसमें कुण्डार का गढ़ प्रमुख है। वह देखने में निर्जीव भले ही हो, पर उपन्यास की समस्त घटनाओं का केन्द्र होने के कारण वह अपना महत्त्व सुरक्षित रखता है। 'कहानी-सग्रह' और 'एकांकी नाटक' किसी एक कहानी या एकांकी पर आधारित होते हैं। 'शरणागत' और 'कनेर' दोनों में कमश: एक कहानी और एकांकी ने उनके नामकरण में सहायता दी है। कुछ का नामकरण कृति में व्यक्त मूल विचार-धारा के आधार पर किया जाता है। 'पूर्व की ओर', 'पीले हाथ', 'टूटे काँटे', 'राखी की लाज', 'लगन', आदि ऐसे ही नाम हैं। कुछ के नामकरण म कहानी या किसी वस्तु-विशेष का हाथ होता है। 'नीलकण्ठ' और 'मङ्गल सूत्र' में से पहले में कहानी और दूसरे में 'मङ्गल सूत्र' गहना-विशेष है। 'खिलौने की खोज' भी ऐसा ही नाम है। वर्माजो या तो पुस्तक के

अन्त में या कहीं बीच में 'नामकरण' के रहस्य का उद्घाटन कर देते हैं—'प्रेम की भेंट', 'कभी-न कभी', 'बाँस की फाँस', 'फूलों की बोली' ऐसे ही नाम हैं।

घटनाओं का संयोजन वर्माजी इस प्रकार करते हैं कि अन्त तक कौतूहल बना रहे और रहस्योद्घाटन अन्त में हो। ऐतिहासिक नाटकों के विवेचन के समय हमने 'झाँसी की रानी' नाटक की कथा-वस्तु का अंकानुसार विवेचन करते हुए यह बताया है कि झाँसी की रानी, नवाब अलीबहादुर और पीरअली तथा अंग्रेज तीनों से सम्बद्ध कथा-सूत्र धीरे-धीरे आगे बढ़ते हैं। उपन्यास या नाटक की सरसता की रक्षा के लिए यह आवश्यक है। वर्माजी थोड़ा-थोड़ा परिचय देते चलते हैं और अन्त में पूरी रचना का मर्म हृदयङ्गम हो जाता है। कहानी, नाटक, उपन्यास सभी में यही क्रम है; अन्तर केवल यह है कि उपन्यास में विस्तार अधिक रहता है, नाटक में कम, और एकांकी तथा कहानी में और भी कम। उपन्यास और नाटक के घटना-संयोजन का आनुपातिक अन्तर देखना हो तो 'झाँसी की रानी' और 'भुवन विक्रम' की कथा पर आधारित 'झाँसी की रानी' और 'ललित विक्रम' नाटक देखे जा सकते हैं। वर्माजी उतने ही पात्र या घटनाएँ रखते हैं, जिनका निर्वाह ठीक से हो सके। यही कारण है कि उनके पात्र आत्म-हत्या कम करते हैं। लेखक द्वारा कथा की गति को न सँभाल पाने का ही एक सरल किन्तु भौंडा उपाय आत्म-हत्या है। वर्माजी के संगम'-जैसे उपन्यास भी, जो अनावश्यक विवरणों से भरे हुए हैं, इस दोष से मुक्त हैं। उनमें भी उन्हीं पात्रों की मृत्यु दिखाई गई है, जिनकी मृत्यु अवश्यम्भावी थी।

वर्माजी अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए उनका रेखा-चित्र देते हैं और दो पात्र एक साथ हों तो उन दोनों की विरोधी रूप-रेखा से स्वभावगत वैषम्य को प्रकट करते हैं। उपन्यासों और कहानियों में वर्णन द्वारा नाटकों तथा एकांकियों में लम्बे रंगमंचीय निर्देशों द्वारा

वे अपने रेखाचित्र-कौशल का परिचय देते हैं। 'गढ़ कुण्डार' और 'विराटा की पद्मिनी' में बाह्य रूपरेखा का परिचय देने वाले लम्बे-लम्बे रेखाचित्र हैं, जिनमें शरीर और वेश-भूषा की एक भी चीज वर्माजी की दृष्टि से नहीं बच पाई। वे पहले रेखाचित्र देकर तब पात्र का नाम-धाम बतलाते हैं। आगे चलकर उनके रेखाचित्रों में संक्षिप्तता आ गई है। 'भुवन विक्रम' में मेघ का यह रेखाचित्र देखिए—'मेघ उतरती अवस्था का दीर्घकाय साँवला पुरुष था। सिर पर जटा-जूट, ठोड़ी के नीचे लहराने वाली खिचड़ी रंग की दाढ़ी, कमर में सफेद सूती परधनी, गले में रुद्राक्ष, पैरों में खड़ाऊँ, शरीर पर ऊनी उत्तरीय आकृति से जान पड़ता था कि वह हठी, क्रोधी और हिंसक प्रकृति का है। आँखें गड्ढे में ऐसी धँसी हुईं कि गड़ाकर देखे तो लगे कि मोम के हृदय को छेदकर पीठ के पार ही दम लेंगी। पर असल में दृष्टि उसकी निर्बल थी, उस प्रकार देखने का उसका अभ्यास स्वभाव में परिवर्तित हो गया था।'' (भुवन विक्रम, पृष्ठ १०) इसमें मेघ के विषय में जो कुछ सूत्र-रूप में कहा गया है उसीका विस्तार उसके कार्य-कलाप में आगे चलकर होता है।

दो पात्रों के एक साथ रेखा-चित्र लगभग सभी उपन्यासों में मिलते हैं। फिर भी 'मृगनयनी' और कचनार' में स्त्रियों के रेखा-चित्र अद्भुत हैं। 'कचनार' में दुलैयाजू अर्थात् दिलीपसिंह की नवविवाहिता पत्नी कलावती और कचनार की तुलना देखिये—''दुलैयाजू को देखते ही मन के भीतर चकाचौंध-सी लग जाती है। कचनार को देखने को जी तो चाहता है, परन्तु देखते ही सहम-सा जाता है। दुलैयाजू का स्वर सारंगी-सा मीठा है, कचनार का मीठा होते हुए भी चिनौती-सा देता है। दुलैयाजू कमल है, कचनार गुलाब। जिस समय दुलैयाजू को हल्दी लगाई गई, मुखड़ा सूरजमुखी-सा लगता था। उनकी आँखों में मद है। कचनार की आँखें ओले-सी सफेद और ठण्डी। उनकी मुस-कान में ओठों पर चाँदनी खिल जाती, कचनार की मुस्कान में ओठ

व्यंग-सा करते हैं। दूलैयाजू की एक गति, एक मरोड़ न जाने कितनी गुदगुदी पैदा कर देती है, कचनार जब चलती है तो ऐसा जान पड़ता है, किसी मठ की योगिन हो। बाल दोनों के बिलकुल काले और रेशम-जैसे चिकने हैं। दोनों से कनक की किरणें-सी फूटती हैं। दोनों के शरीर में सम्मोहन, जादू भरा-सा है। दोनों बहुत सलोनी हैं। दुलैयाजू को देखते और बात करते कभी जी नहीं अघाता। अत्यन्त सलोनी हैं। घूँघट उघड़ते ही ऐसा लगता है जैसे केसर बिखेर दी हो। कचनार को देखने पर ऐसा जान पड़ता है जैसे चौक पूर दिया हो। दूलैयाजू वशीकरण मंत्र है और कचनार टोना उतारने वाला यंत्र······।" ('कचनार', पृष्ठ १५)।

जहाँ कहीं प्रणय-व्यंजना की बात आती है वहाँ वे दो स्त्री-पात्रों को एक रखकर उनकी बात से उसको प्रकट करवाते हैं। 'लगन' में सुभद्रा और रामा, 'प्रेम की भेंट' में उजियारी और सरस्वती, 'अचल मेरा कोई' में कुन्ती और आशा, 'राखी की लाज' में चम्पा और करीमन, 'फूलों की बोली' में कामिनी और माया, 'मृगनयनी' में लाखी और निन्नी (मृगनयनी) की आपस की चुहल और घुल-घुलकर बातों में उनके अन्तर की प्रणय-भावना और प्रेम-पात्र को प्राप्त करने का संकल्प प्रकट होता है। साथ ही पुरुष और स्त्री-पात्रों को संघर्ष में डालकर उनके प्रेम को दृढ़ करना भी उनका स्वभाव है। युद्ध, शिकार अथवा सामाजिक उत्पीड़न परीक्षा के साधन हैं।

वर्माजी कला और कर्तव्य दोनों को साथ-साथ लेकर चलने वाले हैं, अतः वे अपनी कृतियों में विभिन्न पात्रों द्वारा अपनी मान्यताओं और अभिरुचियों का प्रदर्शन करते हैं। ऐतिहासिक नाटकों में आदर्श पात्रों द्वारा वीरता और साहस की वृति का स्पष्टीकरण सहज ही हो जाता है। सामाजिक उपन्यासों और नाटकों में वे समाज एवं राजनीति के सम्बन्ध की अपनी धारणाओं के कल्पित पात्र रख लेते हैं। विदूषक या दो ग्रामीण पात्रों के माध्यम से वे जनता की भावनाओं

को व्यक्त करते हैं। 'पूर्व की ओर' का गजमद, 'झाँसी की रानी' की कुँजड़िन, 'बीरबल' के लल्ला और रमज़ानी, 'अचल मेरा कोई' के पंचम और गिरधारी ऐसे ही पात्र हैं।

कौतूहल और अद्भुत तत्त्व की अवतारणा वे डाकुओं तथा प्रेत-बाधा के तत्त्व से करते हैं। बहुधा ऐसे समय पात्र को या तो परदेश में सेना या किसी दुर्घटना में मरा हुआ समझ लिया जाता है या ऐसा होता है कि वह गोली लगने या किसी के द्वारा बहुत अधिक पीटने से मरा हुआ समझकर छोड़ दिया जाता है। 'टूटे काँटे' का मोहन और 'संगम' का सुखलाल पहले प्रकार के पात्र हैं और 'राखी की लाज' का मेघराज और 'फूलों की बोली' का बलभद्र दूसरे प्रकार के।

वर्माजी ने पाँच, चार, तीन, दो और एक अंक—सभी प्रकार के नाटक लिखे हैं। इन नाटकों में बहुतों में अंकान्तर्गत दृश्य विभाजन नहीं है। 'जहाँदारशाह' और 'पीले हाथ' में अंक-विभाजन नहीं है, केवल दृश्य-विभाजन है, जब कि घटनायें भिन्न स्थानों पर घटित होती हैं। उनके पहले नाटक 'धीरे-धीरे' में अंक-विभाजन तो है, पर दृश्य-विभाजन नहीं है। कनेर' नामक एकांकी में खेमराज का बंगला, नन्दपुर का बगीचा, उसकी सड़क, किसानों-मजदूरों की बस्ती आदि कई स्थानों पर कथा को घटनाओं के घटित होने का वर्णन है, फिर भी वह एकांकी है। ऐसा लगता है कि वर्माजी एकांकी को उसकी देश-काल की एकता की सीमा में नहीं बाँधना चाहते। यह एक नया प्रयोग है। अभिनेयता बनाये रखने के लिए वे मंच पर अभिनीत न हो सकने वाले दृश्यों को छाया-नाटक की कला से उपस्थित करने के पक्षपाती हैं। यह उनकी अपनी सूझ-बूझ है। अपने नाटकों में उन्होंने गीतों और लोक-गीतों का प्रयोग खुलकर किया है, पर वे सब छोटे और परिस्थिति के अनुकूल हैं।

कहानियों में शीघ्र-से-शीघ्र निष्कर्ष पर पहुँचने में विश्वास रखते है। ऐतिहासिक व्यक्तियों पर आधारित कहानियों में तो यह अनिवार्य

है ही, क्योंकि वहाँ सब निश्चित है। पर सामाजिक और संकेतात्मक कहानियों में भी वे संक्षिप्त शैली लेकर चलते है। कला की सोद्दश्यता के कारण यह उनका स्वभाव बन गया है।

पात्रानुकूल भाषा वर्माजी के शिल्प का एक महत्वपूर्ण अंग है। उनके बुन्देलखण्डी पात्र बुन्देली भाषा बोलते हैं, पठान बिगड़ी हुई हिन्दी, मुसलमान हिन्दुस्तानी या अरबी-फारसी मिश्रित कुछ और क्लिष्ट भाषा, अंग्रेज अंग्रेजी बोलते हैं। 'गढ़ कुण्डार' का 'अर्जुन कुम्हार' और 'झाँसी की रानी' की 'सलकारी' अपनी बोली से ही पाठकों के मानस में प्रवेश पा जाते हैं। 'झाँसी की रानी' का गुल मुहम्मद और 'काश्मीर का काँटा' में कैदी पठान बिगड़ी हुई भाषा बोलते हैं। जैसे 'तुमने पूच्छा' 'अमने बतलाया।' अरबी फारसी-मिश्रित भाषा 'बीरबल' नाटक और ऐतिहासिक कहानियों के मुसलमान पात्रों के प्रसंग में प्रयुक्त हुई है। 'बीरबल' नाटक में ही लल्ली पूरबी बोली भी बोलता है। इसके अतिरक्त शिक्षित-अशिक्षित की भाषा का भी भेद दिखाई देता है। 'अचल मेरा कोई' के पंचम और गिरधारी तथा अचल एवं कुन्ती की भाषा या 'कुण्डली चक्र' के अजित और ललित तथा पैलू एवं बुद्धा की भाषा का अन्तर उनकी परिस्थिति और स्वभाव-गत विशेषताओं को स्पष्ट करता है। 'जहाँदरशाह' की कुँजड़िन ज़ुहरा, जो 'जहाँदारशाह' को गालियाँ सुनाती है, उसमें उसके वर्ग का रूप प्रकट हो जाता है। पात्रानुकूल भाषा से एक तो कथोपकथनों में स्वाभाविकता आती है, दूसरे पात्रों की सामाजिक स्थिति विदित होती है और तीसरे चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन होता है।

संवाद-योजना द्वारा भी वर्माजी अपनी रचनाओं को कलात्मक स्वरूप देते हैं, कुछ नाटकों और एकांकियों को छोड़कर शेष में तो उन्होंने उचित संवाद-योजना रखी ही है, पर कुछ उपन्यास ऐसे हैं जिनमें संवादों की सचोटता, संक्षिप्तता और उपयुक्तता ने उनको चमका दिया है। बड़ों में 'मृगनयनी' और 'कचनार' और छोटों में 'लगन' और 'कभी-न-कभी' इस दृष्टि से अत्युत्तम हैं। कहानियों और

एकांकियों के संवाद और भी मार्मिक हैं। वर्माजी के वकालत की जिरह ने विचार-प्रधान संवादों की काया को खूब सँवारा है। सारांश यह है कि घटना-सयोजन, विषय-चुनाव, रेखाचित्रांकन-कला, चारित्रिक विकास, पात्रानुकूल भाषा और संवाद-सौष्ठव से वर्माजी का शिल्प निखरा हुआ है।

१०. वर्माजी की देन

वर्माजी ने एक बार लिखा था—"अच्छे-से-अच्छा लिखता चला जाऊँ, बस यही धुन है।"[१] सत्तर वर्ष के होने पर भी न उनके शरीर में शैथिल्य आया है, न मस्तिष्क में विकार, और न हृदय में निराशा ; वे बराबर लिखते चले जा रहे हैं। आगे वे और भी अच्छी रचनाएँ दे सकते हैं, यह आशा करना अनुचित नहीं है। लेकिन अब तक भी उन्होंने जो-कुछ लिखा है उसके आधार पर वे हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारों की प्रथम पंक्ति में बैठने के अधिकारी हैं।

उपन्यास, नाटक और कहानी तीनों ही क्षेत्रों में उनकी कृतियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। कहानी की दिशा में उन्होंने उतना कार्य नहीं किया जितना उपन्यास और नाटक की दिशा में किया है, फिर भी उनकी कुछ कहानियाँ ऐसी हैं, जो उनके भीतर छिपे उत्कृष्ट कहानीकार की प्रतिभा की परिचायिका हैं। वस्तुतः उपन्यास भी तो एक बड़ी समग्र जीवन या विस्तृत विचार-धारा को लेकर चलने वाली कहानी ही है। फिर उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में अनेक पात्रों से सम्बन्धित घटनाएँ स्वतन्त्र कहानी बन गई हैं। उदाहरण के लिए 'शरणागत' कहानी-संग्रह की 'नैतिक स्तर' शीर्षक कहानी, जो इब्राहीमखाँ गार्दी के देश-प्रेम पर आधारित है, वर्माजी के उपन्यास 'माधवजी सिंधिया' का ५१वाँ प्रकरण है, जिसमें नाम-मात्र का परिवर्तन है। इतिहास और उसके निर्माता व्यक्तियों ने वर्माजी को इतना रसमग्न कर दिया कि वे उन्हीं में सब-कुछ पा गये। जब भी उधर से वे हटे, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक कहानियों में अपनी कला का प्रस्फुटन किया। 'शरणागत' कहानी यदि प्रेमचन्द और सुदर्शन के आदर्शवादी रूप की झाँकी

१. 'साहित्य-सन्देश', जुलाई-अगस्त १९५९

देती है तो 'कलाकार का दण्ड' में प्रसाद की भावुकता का रस मिलता है।

ऐतिहासिक-सामाजिक दोनों प्रकार के नाटकों के क्षेत्र में अभिनेय नाटकों की सृष्टि करना उनकी विशेषता है। 'ललित विक्रम', 'पूर्व की ओर' और 'हंस मयूर' में यदि प्रसादजी की भाँति उन्होंने भारतीय संस्कृति की महत्ता बताई तो 'झाँसी की रानी' और 'बीरबल' में हरिकृष्ण 'प्रेमी' की भाँति मध्यकाल की झलक दी। अन्तर यही है कि 'प्रेमी'जी ने राजस्थान को चुना, वर्माजी ने बुन्देलखण्ड को। मुग़ल-काल में दोनों एक ही स्तर पर हैं। सामाजिक नाटकों में यदि उन्होंने एक ओर 'राखी की लाज जैसे आदर्शवादी नाटक दिए हैं तो दूसरी ओर 'मंगल सूत्र' और 'खिलौने की खोज'-जैसे मनोविश्लेषणात्मक नाटक भी उन्होंने लिखे हैं। 'फूलों की बोली' में प्रतीकात्मक नाटकों की प्रणाली को भी उन्होंने अपनाया है। शेष नाटकों में उन्होंने समाज की अनेक ज्वलन्त समस्याओं को लिया है। उनके एकांकियों में भी सब प्रकार के नमूने मिल जाते हैं। इस प्रकार नाटक के क्षेत्र में भी उनकी देन महत्त्वपूर्ण है और उसमें नाटक की प्रमुख धाराओं की प्रतिनिधि रचनाएँ विद्यमान हैं।

वर्माजी का वास्तविक क्षेत्र उपन्यास है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की मोहिनी ने उनके सामाजिक उपन्यासों की ओर लोगों का ध्यान ही नहीं जाने दिया। लेकिन अपने अध्ययन के आधार पर मेरा यह विश्वास हो गया है कि वर्माजी के सामाजिक उपन्यास उनके उपन्यासों से किसी प्रकार कम नहीं हैं। कुछ उपन्यास तो बेजोड़ हैं। 'लगन' और 'कभी-न-कभी' दोनों को लेकर विचार किया जाय तो एक में प्रेम और दूसरे में मजदूर-समस्या से सम्बन्धित कला की पराकाष्ठा है। अन्य उपन्यासों में उन्होंने लगभग सभी सामाजिक समस्याओं का समावेश किया है।

इतना सब-कुछ होने पर भी उनका सर्वश्रेष्ठ रूप ऐतिहासिक उपन्यासों में ही दिखाई देता है। इस क्षेत्र में किशोरीलाल गोस्वामी से लेकर रांगेय राघव तक जितने उपन्यासकारों ने प्रवेश किया है उनमें वर्माजी सबसे आगे हैं परिणाम और उत्कृष्टता दोनों की दृष्टि से। उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों के बारे में स्वयं लिखा है —"मैं तथ्य का उपासक हूँ, तथ्य को सृजनात्मक ढंग से उपस्थित करना मैं सत्य की पूजा और कला का प्राण समझता हूँ।"[1] जितना परिश्रम उन्होंने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में किया है उतना बहुत कम लोग कर पाते हैं। यही कारण है कि वे जिस देश और काल से सम्बन्ध रखते हैं उसके स्वच्छ दर्पण-से प्रतीत होते हैं। उनमें राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं के सजीव चित्र हैं। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी दृष्टि जनता की ओर रही है। युग की छाप इसीलिए उनकी ऐतिहासिक कृतियों की एक विशेषता बन गई है।

आजकल आंचलिक उपन्यासों की बड़ी धूम है। वर्माजी के बुन्देलखण्ड से सम्बन्धित ऐतिहासिक उपन्यासों में तो यह आंचलिकता दूध-पानी की तरह घुली-मिली है ही, उनके सामाजिक उपन्यासों में भी उसका निखरा हुआ रूप मिलता है। यदि मैं कहूँ कि 'लगन' हिन्दी का प्रथम उपन्यास है तो अत्युक्ति नहीं मानी जानी चाहिए, क्योंकि स्वयं प्रेमचन्दजी ने इस उपन्यास के बारे में एक बार लिखा था—It is not a novel but pastoral poetry." सारांशतः वर्माजी आंचलिक उपन्यासों के जन्मदाता हैं। यह दूसरी बात है कि उस ओर हमारी दृष्टि अभी तक नहीं गई।

प्रेमचन्दजी के बारे में कहा जाता है कि उनकी कृतियों में कांग्रेस की स्वराज्य-प्राप्ति की लड़ाई के समय के भारत का दर्शन होता है।

---

१. **'साहित्य-सन्देश', जुलाई-अगस्त १९५६**

वर्माजी के बारे में मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि उनमें सन् १८५७ और उससे पूर्ववर्ती काल से लेकर स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् के भारत का दर्शन होता है। ग्राम्य जनता के प्रति वर्माजी का प्रेम और ग्राम्य जीवन के चित्रण की उनकी क्षमता प्रेमचन्द से किसी प्रकार भी कम नहीं है। प्रेमचन्द की ही भाँति उनमें प्रगतिशील तत्त्वों के प्रति आग्रह है और प्रेमचन्द की ही भाँति पीड़ित तथा दलित जनता के शुभ भविष्य में विश्वास। वे प्रेमचन्द की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थ-वादी भी हैं। यदि प्रेमचन्द जोवित हाते तो वे भी वर्माजी के विज्ञान और अध्यात्मवाद के समन्वय का तिरस्कार न करते। प्रेम और सौंदर्य के चित्रण की कुशलता में वे प्रेमचन्द से आगे हैं। यों उनमें प्रेमचन्द और प्रसाद दोनों का समन्वय हो गया है। कदाचित् इसीलिए स्वर्गीय पं० अमरनाथ झा ने लिखा था—"प्रसादजी महाकवि थे, प्रेमचन्दजी सफल उपन्यास-लेखक थे, परन्तु श्री वृन्दावनलाल वर्मा उपन्यास और नाटक, दोनों कलाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।" ('हंस मयूर' की भूमिका में)।

वर्माजी ने हिन्दी भाषा को अनेक नये शब्द दिये हैं। उनकी यह देन अमर है। यदि किसी लेखक की उच्चता उसके नवीन शब्द-प्रयोग—जनपदीय और स्वनिर्मित—दोनों पर निर्भर मानी जाय तो वर्माजी को बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त होगा।

इस प्रकार वर्माजी का स्थान हिन्दी-साहित्य को समृद्ध करने वाले कलाकारों में अन्यतम है। श्रम और सेवा के जिन आदर्शों की प्रतिष्ठा उनके द्वारा हुई है उनसे जीवन को जीवन की भाँति जीने की प्ररणा ही नहीं मिलती, प्रत्युत निरन्तर गतिशील रहने की शक्ति भी प्राप्त होत। है।

●